महाकवि कीट्स का काव्य-लोक

जॉन कीट्स

जन्म : १७९५

मृत्यु : १८२१

विश्व-काव्य-माला

महाकवि कीट्स का काव्य-लोक

अँग्रेज़ी के प्रख्यात रोमानी कवि कीट्स का जीवन-वृत्त,
काव्य-साधना और काव्य-लोक

यतेन्द्रकुमार

आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

उस लहर को,

जो मुझे पुकार कर खो गई !

प्रकाशकीय

हिन्दी संसार में दीर्घकाल से इस बात की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी कि हिन्दी में विदेशी महाकवियों की उत्तमोत्तम रचनाओं के प्रामाणिक अनुवाद प्रस्तुत किये जायें, ताकि उनका समुचित आनंद देश के उन लाखों पाठकों को भी उपलब्ध हो, जिनका ज्ञान केवल हिन्दी भाषा तक ही सीमित है। राष्ट्रभाषा में दर्जनों विदेशी उपन्यासों और कथाकृतियों के अनुवाद हो चुके हैं और हो रहे हैं, किन्तु खेद है कि काव्य के क्षेत्र में ऐसा प्रयास लगभग नहीं के बराबर है। जैसे-जैसे अंग्रेजी भाषा का पठन-पाठन कम होता जा रहा है, इस बात की उत्तरोत्तर आवश्यकता अनुभव की जा रही है कि अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं की उत्कृष्ट निधि को रूपान्तर द्वारा हिन्दी में सुरक्षित रखने का कार्य बड़े पैमाने पर हो। हमारे लिये यह ईर्ष्या की बात है कि अंग्रेजी भाषा में हमारी प्राचीन-से-प्राचीन पुस्तकों के अनेकानेक एक से एक बढ़कर अनुवाद उपलब्ध हो सकते हैं। वे काव्यानुवाद को बड़े महत्त्व की दृष्टि से देखते हैं। हिन्दी में अंग्रेजी से काव्यानुवाद का श्रीगणेश पं० श्रीधर पाठक के द्वारा हुआ। उन्होंने गोल्डस्मिथ के 'ऊजड़ग्राम' के काव्यानुवाद से इस दिशा की ओर ध्यान आकर्षित किया। तब खड़ी बोली का आरंभ था। भाषा की दरिद्रता स्पष्ट थी। इसलिये उन अनुवादों को आज की दृष्टि से सफल नहीं कहा जा सकता। काव्यानुवाद कल्पनातीत दुष्कर कार्य है। दो भाषाओं के गंभीर परिचय, मौलिक कवित्व-शक्ति, विपुल शब्द-ज्ञान के अतिरिक्त, अनथक लगन, और अपार साहस की आवश्यकता होती है। यह हमारे लिये बड़े गौरव की बात है कि हिन्दी में इस अत्यंत कठिन कार्य की पूर्ति का समारम्भ श्री यतेन्द्रकुमार द्वारा हो चुका है। उन्होंने अपने तरुण जीवन के अनेक बहुमूल्य वर्षों को इस अभाव की पूर्ति में लगा दिया है। १९५४ में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'शेली' पर, जिसमें उन्होंने रोमांटिक कवि शेली का जीवन वृत्त, काव्य-साधना, और काव्यानुवाद प्रस्तुत किया था—उत्तर-प्रदेश और केन्द्रीय सरकारों से क्रमशः तीन सौ, और दो हजार रु० की नकद धनराशि पुरस्कार में मिल चुकी है। इस पुस्तक की अनुवाद-शैली के विषय में प्रसिद्ध कवि और समालोचक श्री दिनकर ने लिखा था—'अजब नहीं कि यतेन्द्र में शेली की आत्मा हिन्दी में अपना उद्धार खोज रही हो।' हमारा विश्वास है कि श्री यतेन्द्रजी की दूसरी भेंट 'महाकवि कीट्स का काव्य-लोक' पढ़ते समय आप बार-बार इसी बात को दुहरायेंगे। इस पुस्तक की विशेषता केवल कीट्स की कविता का सरस और सहज रूपान्तर प्रस्तुत

करना ही नहीं है, वरन् उसके कवि-व्यक्तित्व को उसके मूल स्रोतों के साथ उभार कर लाना भी है। लेखक के इस प्रयत्न से कीट्स के काव्य का मर्म समझने में सरलता होगी। इसी शृंखला में श्री यतेन्द्रकुमार की 'महाकवि वर्डस्वर्थ का काव्य-लोक' भी मुद्रणांतर्गत है। आगे की पुस्तक जिस पर वे आजकल कार्य कर रहे हैं, 'टेनीसन का काव्य-लोक' है।

आशा है कि लेखक की इन श्रमसाध्य रचनाओं का हिन्दी संसार स्वागत करेगा।

अपनी बात

'शेली' के बाद विश्व-काव्य-माला का दूसरा रत्न 'कीट्स', हिन्दी प्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे अतीव हर्ष है।

इस पुस्तक में मैंने अंग्रेजी काव्य के प्रमुख रोमानी कवि जॉन कीट्स के व्यक्तित्व और कवित्व को विशद रूप में प्रस्तुत करने का दुस्साहस किया है। इसमें 'एण्डिमियन' को छोड़कर उसका लगभग समूचा काव्य संगृहीत है। परिशिष्ट में 'संशोधित हाइपैरियन' को मुक्त पद में रूपांतरित कर जोड़ दिया है, ताकि पाठक कीट्स की काव्यिक धारणा के विकास की दिशा का अनुमान लगा सकें।

कीट्स के पत्र अंग्रेजी साहित्य की अनूठी निधि हैं; और मनन करने के योग्य हैं। काव्य-शास्त्र (Poetics) में उनकी मौलिक देन है। ऐसे सभी प्रतिनिधि पत्रों को जोड़ने की मेरी इच्छा थी, पर स्थानाभाव से कुछ थोड़े से ही संकलित कर पाया हूँ। पर वे सब, मुझे पूर्ण आशा है कि कवि के नवांकुरित दार्शनिक और चिन्तक रूप की तथा उसके वैयक्तिक आंतरिक स्वरूप की सफल पार्श्विका बनेंगे।

कविताओं के अनुवाद के विषय में भी दो शब्द कह दूँ: मैंने यथाशक्ति प्रयत्न किया है कि इसमें कवि की भावना का अधिकाधिक प्रतिनिधित्व हो सके। पर कीट्स का काव्य सर्वत्र एक-सा नहीं है। कहीं है सीमातीत उत्कृष्टता की उड़ान, तो कहीं अतिशय लचरता; और यत्र-तत्र अस्पष्ट दुरूहता के भी दर्शन विरल नहीं हैं। यह सब या तो अनुवादक की अक्षमता का उपहास करते हैं, या अपने शैथिल्य का दुर्बल प्रदर्शन। फिर, कीट्स के संबोधन, उपमाएँ और यूनानी दंत-कथाओं के संदर्भ में कतिपय अभिव्यक्तियाँ अनेक स्थलों में हमारे कानों को बड़ी अजनबी प्रतीत होती हैं। इनसे अनुवाद की सहज प्रवहमानता रुद्ध होती ही है। ऐसी स्थिति में, कहीं-कहीं कथा-क्रम की अनवरतता के हेतु (विशेषकर 'लेमिया' में) मैंने भावांतर को भी प्रश्रय दिया है।

वस्तुत: अनुवादक की स्वाभाविक सीमाओं से परे किसी बात का मेरा दावा नहीं है। मेरा तो यह प्रयत्न—उन सृजनशील, श्रमशील प्रतिभाओं को जिनके अंदर राष्ट्रभाषा को समृद्ध करने की उत्कट कामना है—विनम्र निमंत्रण मात्र है, ताकि यह दिशा भी उनकी मेधा और साधना से फलवती हो और उनके द्वारा निर्माण का पथ प्रशस्त हो, और साहित्य गौरवान्वित हो सके। इसी में मेरे श्रम की सार्थकता निहित है।

अन्त में, प्रस्तुत पुस्तक की रचना में प्रत्यक्षतः और परोक्षतः जिनका योग रहा है, उन सबके प्रति हार्दिक आभार का प्रदर्शन करना मेरा कर्तव्य है। हिन्दी के पाठक कीट्स जैसे महान कवि की इस पुस्तक के द्वारा अंश भर भी सच्ची झलक पा सकें, तो इसका श्रेय मुख्यतः मेरे इन सब आत्मीय बन्धुजनों के बहुमूल्य सहयोग को ही है।

१।६८, श्यामनगर,
अलीगढ़

यतेन्द्रकुमार

क्रमिका

कीट्स के प्रति

कीट्स, तुम्हारी कविता के भास्वर-प्रान्तर से अभी लौटकर
आया हूँ : सकुचाता हूँ, कर पाऊँगा कैसे प्रतिबिम्बित
इस धूमिल दर्पण से, तव आलोक-शिरायें जो हैं दीपित
युग-युग का आवरण छिन्न कर : इन साँसों के स्वर से, कविवर!
गा वह राग अमर, कैसे कर पाऊँगा निज आंगन गुंजित,
जो पश्चिमी कूल से उठकर, करता सकल सृष्टि सम्मोहित!

वही राग, जिससे तुमने बुलबुल का किया विकल आवाहन,
जिसे प्रथम सुन, मेरे सम्मुख सिसक उठा था सजल अँधेरा
निशा-वक्ष पर : नयन-नीड़ में रहा नींद का कहाँ बसेरा?
तब से, प्यासे प्राण तुम्हारे कविता-वन में करते विचरण,
तुम्हें ढूँढने; किस कान्तार-कुंज में बिता रहे पल विह्वल?
करते हैं क्या अधर तुम्हारे, मधुर गीत का अभी मर्मरण?

हे, कविता के पुष्प! भूमि का रस पीकर, जब से अपने दल
तुमने खोले, सहज सुवासित हुआ सरस्वति का है प्रांगण।

१

महाकवि कीट्स

का

जीवन-वृत्त

(Keats : the man)

"यदि वह मधुर गायक कीट्स यह जानता होता कि उसके गीत मनुष्यों के हृदय में सौन्दर्य के, प्रेम के बीज वपन करना कभी न बन्द करेंगे, तो निश्चय ही उसने यह कहा होता—

'लिखना मेरी कब्र पर : यहाँ हैं उसके अवशेष, जिसने लिखा अपना नाम अग्नि के अक्षरों में, स्वर्ग के आनन पर।"

—खलील जिब्रान

मैं जूझा नहीं किसी से, क्योंकि था नहीं कोई जूझने योग्य मुझसे,
प्रकृति को मैंने किया प्यार, और प्रकृति के बाद कला को;
जीवन की अग्नि के समक्ष, सेके मैंने अपने दोनों हाथ,
यह बुझती है, और मैं भी अब चलने को तैयार हूँ।

—डबल्यू० ऐस० लैण्डर

अत्यन्त अल्पायु में ही महाकवि कीट्स का अवसान अंग्रेजी काव्य की महान दुखान्त घटना है।

एक लेखक का कथन है कि मनुष्य को भावी पीढ़ी उसकी छोड़ी गई निधि के आधार पर ही याद करती है।

यदि मात्रा के ही आधार पर कीट्स का मूल्यांकन हो, तो साहित्य में उसका नामोल्लेखन ही कठिनता से हो। है क्या ? तीन चार लम्बी कविताएँ और कुछ छोटी-छोटी प्रशस्तियाँ !

पर यह छोटी-सी सामग्री ही अपनी उत्कृष्टता के कारण अंग्रेज़ी साहित्य के प्रथम कोटि के कवियों में उसका स्थान निश्चित करती है।

पर जो सहृदय साहित्यिक पारखी हैं, वे इस सूक्ष्म सामग्री के कारण नहीं, प्रत्युत, उसमें सन्निहित विकास की अपार संभावनाओं के साथ निरन्तर दीप्त से दीप्ततर होते हुए काव्य वैभव के कारण उसे विश्व के महान कवियों की पाँत में रखकर गौरवान्वित करते हैं।

कविता जीवन के बीच उपजती है, पल्लवित होती है। कवि के जीवन का उसके काव्य से अविच्छिन्न सम्बन्ध है। काव्य कवि-जीवन की अभिव्यंजना है। कवि का जीवन काव्य की टीका है, पुष्ठिका है।

इस महान कवि की अधखिली प्रतिभा-कली का जीवन ही क्या ? अभी केवल पाँखुड़ी खोलने की चेष्टा ही थी, अभी सौरभ-कोष खोला ही था, उसकी मासूम आँखों में अमरत्व की अभिलाषा अभी पंख ही पसार रही थी कि काल के तुषार में वह असमय में ही वृंतहीन हो गई।

उसकी छोटी-सी जीवन-सरिता में उत्ताल हिलोरों का रोर नहीं है, भँवरों का शोर नहीं है; है केवल गहरे अतल को स्पर्श करती हुई व्यथा की आकुलता, बाड़व-सी ज्वाला, भावनाओं का स्पंदन, कूल-मर्यादाओं का तिरस्कार कर अविरत गहरा काटती चलती प्रवाह की तीव्रता...

कीट्स का जीवन है दो भाइयों और एक बहन, कुछ मित्र-बांधवों के प्रगाढ़ स्नेह और प्रेयसि के अनुतप्त प्रेम की दाहभरी छोटी-सी कहानी, पर इसी में उसके सबल व्यक्तित्व की परिपूर्ण झाँकी मिल जाती है। चिन्तना की पैनी धार, गहन

विश्लेषण, और आत्म-ज्ञान की पराकाष्ठा, अपनी शक्ति का नाप नाप कर अन्दाज करती हुई, बढ़ती हुई सक्षम गति, अतृप्त और अदम्य वासना की दाह, और वह आत्म-विश्वास जो समग्र संसार को चुनौती देता हुआ और उसके थपेड़ों को सहकर भी जीता हुआ—वह नैराश्य भी जो जरा-सी चूक होते ही विश्वास के मजबूत दुर्ग की संधि में से फूटकर वह आता है, और उसकी नींव को कमजोर कर देता है।

कहते हैं कि महान व्यक्तियों के निर्माण में उनके वातावरण और घर की परिस्थितियों का बहुत कुछ हाथ होता है। पर कविता या साहित्य के नाम पर कीट्स ने न तो विरासत में ही कुछ पाया, न उसके चारों तरफ के वातावरण में कलात्मक अभिरुचि को प्रेरित करने वाले तत्व थे। एक ऐसे साधारण परिवार में कीट्स ने जन्म लिया था जहाँ न कभी अपोलो की छाया ही गिरी थी, न सरस्वती का कण्ठ-स्वर ही गूंजा था। उसके पिता टॉमस कीट्स किन्हीं मिस्टर जैनिंग के अस्तवल के दारोगा थे। स्वभाव से सरल, शरीर से ठिगने, गठीले और स्फूर्त्तिवान थे। इन्होंने अपने स्वामी की ही पुत्री, कुमारी जैनिंग से विवाह किया था। श्रीमती कीट्स आकृति से लम्बी और सुन्दर थीं। हँसमुख और महत्त्वाकांक्षिणी थीं। दोनों के चार सन्तानें हुईं—तीन लड़के और एक लड़की। सबसे बड़ा था जॉन, उससे छोटा जार्ज और सबसे छोटा टॉम। लड़की का नाम था फेनी। यह टॉम से भी छोटी थी। माँ का सबसे अधिक प्यार था जॉन पर। वह भी उसे सबसे अधिक चाहता। कीट्स के संस्मरणों में उसके बचपन की एक घटना इस दृष्टि से उद्धरणीय है।

एक बार माँ बड़ी बीमार पड़ी। डॉक्टर ने उसकी शान्ति में विघ्न न डालने का आदेश दिया था। तब जॉन था पाँच बरस का। उसने इस आदेश का तत्परता से पालन किया। घर में रखी एक पुरानी तलवार लेकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। माँ के कक्ष में किसी का प्रवेश हो जाय, यह असम्भव था। माँ के रोने, चीखने से जॉन इस कर्तव्य-पालन में विमुख हुआ।

इसके काफी लम्बे अरसे के बाद भी जब बालक जॉन वयस्क हुआ, तब भी माँ के प्रति उसकी यही भावना बनी रही। माँ के अन्तिम काल में उसने उसकी बड़ी सुश्रुषा की। उसकी मृत्यु के पश्चात वह महीनों घोर मानसिक व्यथा से भ्रान्त रहा।

अपने शैशव में ही कीट्स को पितृ-वियोग सहना पड़ा था। एक दिन घोड़े से गिरकर टॉमस कीट्स स्वर्ग सिधार गये।

कीट्स के नाना धनाढ्य व्यक्ति थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनकी विशाल सम्पत्ति-राशि में से कीट्स-परिवार को भी एक अच्छा-खासा अंश मिला। इस प्रकार इस परिवार के जीवन-यापन में किसी प्रकार की असुविधा नहीं हुई।

कीट्स की प्रारम्भिक शिक्षा 'एनफील्ड' में जॉन क्लार्क के पास हुई।

महाकवि कीट्स का जीवन-वृत्त

बालक जॉन कीट्स अपने साथियों में अपने सौन्दर्य, स्वास्थ्य, उद्दण्डता, दयालुता और मुक्त-हास्य के कारण शीघ्र ही विख्यात हो गया। उसमें नेतृत्व का स्वाभाविक गुण था। पर उसकी उज्ज्वल प्रकृति में बचपन ही से किसी अज्ञानी करुणा का रस भी मिला हुआ था, जो यदा-कदा अकस्मात छलक उठता। देखने वाले सहसा अचरज से भर उठते।

इन सबसे अधिक उसका मन रमता था लड़ाई में, मार-पीट में। वह सबसे लड़ता। घर में, बाहर, स्कूल में। साथियों से, भाइयों से। बड़ों से, छोटों से। पर यह मार-पीट का व्यापार चलता थोड़ी ही देर। फिर उसके उन्मुक्त हास्य की वही छटा थोड़ी-सी बदली के बाद की खुली धूप-सी उसके सौम्य सुघड़ आनन पर आ विराजती।

पर चौदहवें वर्ष के लगते-लगते वह मार-पीट की दुनियाँ से सहसा मुड़ गया पुस्तकों के प्रदेश में।

फिर सब पर छा गईं पुस्तकें। खेल-कूद, घूमना-फिरना, मार-पीट, सबका स्थान ले लिया पुस्तकों ने। यात्रा, परियों की कहानियाँ, धार्मिक कथाएँ। कविता, इतिहास, सभी विषयों की पुस्तकें। उसके हाथ हर समय किसी-न-किसी पुस्तक को पकड़े रहते। अब वह अपने स्कूल के साहित्यिक मैदान में बढ़-बढ़कर हाथ मारने लगा। अब वह सभी साहित्यिक पारितोषकों का विजेता था। छिपे-छिपे 'एनियड' का रूपान्तर भी करता। और सामने अल्हड़ कविता की पंक्तियाँ बैठाकर सबका जी खुश करता। तभी उस पर भयंकर विपत्ति टूट पड़ी।

उसकी प्यारी माँ का एक लम्बी बीमारी के बाद देहान्त हो गया। बीमारी क्षय की थी। यह बीजांकुर उसके शरीर में पहले से वर्तमान थे। सब बच्चों को यह रोग अपनी माँ से विरासत में मिला।

उसके संरक्षक ऐबे महाशय ने उसे स्कूल से छुटा लिया। इस समय जॉन पन्द्रह वर्ष का था। उसे किसी व्यावहारिक शिक्षण के लिये चिकित्सक हेमन्ड के यहाँ भरती किया गया। कीट्स की रुचि इस व्यवसाय में नहीं थी। पर उसने इसका तनिक भी विरोध नहीं किया। विरोध भी कैसे करता? अब पहले वाला कीट्स था कहाँ? उसकी लड़ाकू प्रकृति गहरी सोयी उदासीनता में बदल चुकी थी। अब उसके जीवन की दिशा दूसरी थी। चिकित्सा का अध्ययन उसके लिये भार-सा था।

विषाद की घनतर होती हुई परतों के साथ उसकी उदासीनता भी बढ़ती जाती। अब वह शारीरिक स्फूर्ति भी घट रही थी, जो इसका रुख मोड़कर इसे घटाती। चिकित्सा-पुस्तकों के बोझ के नीचे उसका भाव-प्रवण मन व्याकुल रहता।

अध्ययन की टिप्पणियों के हाशिये में कविता की पंक्तियाँ बनतीं। नीरसता से ऊबकर मन का विहग कल्पना के देश में विचरता। अवकाश में उसका 'ऐनियड' का अनुवाद चलता रहता।

इन दिनों का उसका घनिष्ठ मित्र था काँडेन क्लार्क।

वह कीट्स के बचपन के स्कूल के अध्यक्ष पादरी टॉमस क्लार्क का पुत्र था। कीट्स से वय में काफी बड़ा! साहित्यिक रुचि भी थी, और प्रतिभा भी। दोनों साथ-साथ रहते। साहित्यिक चर्चाएँ होतीं। पुस्तकों का आदान-प्रदान होता। दोनों 'स्वर्ण-प्रदेशों में भ्रमण' करने वाले सहयात्री थे। क्लार्क बहुधा कविताएँ सुनाया करता। मंत्रमुग्ध कीट्स सुना करता।

ऐसे ही क्षणों में एक दिन क्लार्क ने कीट्स का परिचय कराया स्पेन्सर के काव्य से।

स्कूल के बगीचे की पेड़ की छाँह के नीचे क्लार्क ने कीट्स को स्पेन्सर की 'ऐपीथेलमियन' सुनाई, और माँगने पर उसे शाम तक पढ़ने के लिये दे दी।

कीट्स ने पढ़ा, और पढ़कर विस्मय-विमुग्ध रह गया। स्पेन्सर के सौन्दर्य-चित्रों ने उस पर अमिट प्रभाव छोड़ा। उसकी मोहकता में वह आत्म-विभोर हो गया। उसके अन्दर का प्रसुप्त महान् कवि जागरित हो उठा। उसके अन्तर में घुमड़ने वाली वेदना को राहबर मिल गया। स्पेन्सर आज से उसका महान् कवि था। उसके बाल-कवि का दीक्षा गुरु था। स्पेन्सर के जगत में वह नितान्त भिन्न पुरुष था। इस कवि ने उसके मानस में ऐसा दिव्य आलोक भर दिया था कि इस किशोर को अज्ञात ज्ञात हो गया, सुप्त चेतन हो गया। उसने जान लिया कि उसकी निष्कृति कविता में ही है। और तबसे अपोलो के इस वरद पुत्र ने काव्य में जीवन और जीवन में काव्य भरने का संकल्प किया।

उसकी अवस्था इस समय उन्नीस बरस की थी। अपने शेष अध्ययन को समाप्त करने के इरादे से वह लंदन चला आया और ढाई बरस तक लगकर इसे ससम्मान उत्तीर्ण किया।

लन्दन का यह प्रवास-काल कवि कीट्स के विकास का काल है। कविता के प्रति उसकी आसक्ति निरन्तर बढ़ती रही। कविता उसके चिकित्सा के अध्ययन में बाधक नहीं थी। पर चिकित्सा अवश्य कविता के मार्ग में थी। वह अपने कार्य का सम्पादन भली-भाँति करता था, पर इसमें उसका मन नहीं रमता था। इस कार्य की व्यावहारिकता उसके मन को उचाट किए रहती। प्रकृति की लीला उसे भरमाये रहती। अन्तर के स्वर उसे कल्पना-लोक में उलझाये रहते।

एक दिन क्लार्क ने पूछा, "तुम्हें यह धन्धा कैसा लगता है?"

उसने तुरन्त उत्तर दिया, "बिलकुल अच्छा नहीं लगता !" फिर कारण बताते हुए कहा—

"उस दिन एक किरन कमरे में आ गई और उसके साथ तैर आया जीवों का पूरा एक दल और मेरा मन उड़ गया परियों के देश में।"

इस काल के एक और मित्र स्टीफेन के शब्दों में—

"वह व्याख्यानों में उपस्थित रहता। सभी असाधारण कार्य करता···काव्य में उसके मस्तिष्क की सभी प्रेरणाओं का चरमोत्कर्ष था। इस भावना के साथ उसके अन्दर एक प्रकार का दम्भ और रहस्य छिपा रहता, और अपने सहपाठियों में ऐसे घूमता और बातें करता, जैसे देवता नश्वरों के बीच में हो। इस प्रकार सभी के लिए वह सुपरिचित था, 'लिटिल कीट्स' के नाम से। कुछ उसके दम्भ को कोसते, कुछ कविता को। यहाँ उसको उसके अस्तबल-रक्षक के पुत्र होने के कारण भी उपेक्षा सहनी पड़ती थी।"

अपने साहित्य-प्रेमी मित्रों के बीच वह साहित्यिक विषयों पर साधिकार बातचीत करता। पोप उसे नापसन्द था। बायरन प्रिय। पर यथार्थ में स्पेन्सर ही उसके लिए मूर्तिमान कवित्व था।

इन दिनों उसने अनेक कविताओं की विशेषकर—सॉनेटों की—रचना की। इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय है उसका 'चैपमैन वाला सॉनेट'।

कीट्स की साहित्य-गोष्ठी में उसके कविता-प्रेमी जीवों की संख्या विस्तार पाती जा रही थी। कवि के अतिरिक्त कीट्स का एक और व्यक्तित्व था—महफिल की वह जान था। उसके उत्फुल्ल हास्य और हाज़िर-जवाबी से गोष्ठी चहकती रहती। क्लार्क ने इन्हीं दिनों उसका परिचय तत्कालीन इंगलैंड के एक प्रसिद्ध तरुण साहित्यकार—ले हण्ट—से कराया।

यह परिचय कवि के लिए आगे चलकर वरदान भी सिद्ध हुआ और अभिशाप भी।

उस समय साहित्य पर प्रतिक्रियावादी और अभिजातीय शक्तियों का प्रभुत्व था। रूढ़ साहित्यिक पण्डे शासक वर्ग की वकालत करते और प्रत्येक नवीन को शंका की दृष्टि से देखते तथा यथासाध्य उसे निर्मूल करने का प्रयत्न करते। इन्हीं के विरोध के कारण विद्रोही शेली को इंगलैण्ड छोड़ना पड़ा। बायरन को आजीवन विदेशों की खाक छाननी पड़ी। ले हण्ट भी इनके प्रबल प्रकोप का पात्र बना। वह नई धारा का समीक्षक था। कवित्व की प्रतिभा थी। स्वाधीनता का उपासक था। साहित्यिक ठेकेदारों से प्रायः मोर्चा लेता रहा। अपने भाई के सहयोग से 'एक्ज़ामिनर' पत्रिका का सम्पादन करता था। प्रिंस रीजेन्ट के विरोध में लिखने

पर उसे तीन मास का कारावास भोगना पड़ा। पत्र भी बन्द हो गया। कीट्स ने उसके कारा में बन्दी होने और मुक्त होने पर दो सॉनेटों की रचना की थी। कविता के क्षेत्र में हण्ट परिश्रम को बड़ा महत्त्व देता। कीट्स में अपनी कविता में निरन्तर परिमार्जन और परिश्रम करने की प्रवृत्ति बहुत कुछ हण्ट से आई। हण्ट के माध्यम से उसका परिचय प्लेटो, तथा अन्य ग्रीक दार्शनिकों के विचारों से भी हुआ। उसकी जानकारी का विस्तार बढ़ा। उसका अन्य विशिष्ट कलाकारों तथा नई पीढ़ी के लेखकों से जिनमें हेडन, रेनाल्ड्स शेली, टेलर, सेवर्न, वायली, आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, परिचय हुआ। इनका परिचय, शेली को छोड़कर, शीघ्र ही प्रगाढ़ मैत्री में बदल गया। कीट्स के कलात्मक विकास में उसकी इस सुहृद-गोष्ठी का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

कीट्स के प्रभावकों में हण्ट के पश्चात् हेडन का नाम विशेष रूप से स्मरणीय है। जब कीट्स से परिचय हुआ, तब उसकी अवस्था तीस वर्ष की थी। वह प्रतिभाशाली चित्रकार था। वर्ड्सवर्थ, सदे, हैज़लिट, हण्ट प्रभृत साहित्यकार उसके घनिष्ठ थे। वह अतिशय महत्त्वाकांक्षी था। तूलिका से भी अधिक लेखनी पर उसका अधिकार था। उसके लिखे गए संस्मरण-पत्र, 'ऐल्गिन मार्बिल्स' पर लिखे गए उसके लेख, इस धारणा के पोषण के लिए पर्याप्त हैं। हेडन कीट्स से बड़ा स्नेह करता था। वह उसे जब तब बड़ी प्रेरणा और उत्साह प्रदान करता था। उसके परामर्शों ने कीट्स के काव्य को परिपक्व बनाने में अच्छी सहायता की। कीट्स ने अपने पत्रों में हेडन की सर्जनात्मक आलोचना को साभार स्वीकार किया है। यूनानी स्थापत्य और चित्रकला के प्रति अपने दृष्टिकोण और सौन्दर्यात्मक बुद्धि के निखार में कीट्स को उससे अपरिमेय सहयोग मिला। कीट्स ने हेडन को सम्बोधित किये गए सॉनेट में अपनी इस भावना को व्यक्त किया है। देश की हेडन की उपेक्षा करने वाली नीति को धिक्कारा है।

हेडन से भी पहले कीट्स हण्ट द्वारा जॉन हैमिल्टन रेनाल्ड्स से परिचित हुआ था। रेनाल्ड्स कीट्स से एक बरस छोटा था। स्वयं कविता और लेखन की प्रतिभा का धनी था। शक्ति और स्वास्थ्य की श्री तो नहीं थी, पर चरित्र की उज्ज्वलता, प्रखर बुद्धि और मौलिक कल्पना से सुसम्पन्न था। उसके प्रबुद्ध और सुनिर्णीत परामर्शों ने कीट्स की अनेक भूलों का जब-तब परिष्कार किया।

रेनाल्ड्स के साथ ही जेम्स राइस भी उल्लेखनीय है। वह साहित्यिक अभिरुचि और अपरिसीम परिहासक प्रवृत्ति में किसी से पीछे नहीं था। चिररुग्ण रहने पर भी उसके मुख पर पवित्र हास्य की दीप्ति रहती।

हण्ट द्वारा कीट्स के परिचित मित्रों में शेली भी याद आता है। शेली कीट्स से तीन बरस बड़ा था। शेली और कीट्स का साथ-साथ स्मरण हृदय में व्यथा की हलकोर-सी उठा देता है। दोनों महान् काव्य की प्रतिभाएँ थीं, जिनका अन्त अल्पायु में हुआ। शेली का व्यक्तित्व दिव्य था, उससे भी दिव्यतर था उसका हृदय। उसके अन्दर मानवीय संवेदना की पराकाष्ठा थी। दोनों का परिचय १८१७ के बसन्त में हण्ट के स्थान पर हुआ। विद्रोही कवि शेली का दुर्भाग्य था कि वह अभिजात वर्ग में पैदा हुआ था। कीट्स प्रत्येक अभिजातीय को घृणा की दृष्टि से देखता था। सम्भवतः इसका प्रमुख कारण था अभिजातीय साहित्यिक पण्डों द्वारा किया गया उसके प्रति दुर्व्यवहार। कुलीन मात्र से उसे घृणा थी। उसे अपने दरिद्र और क्षुद्र होने पर अभिमान था। इसीलिए उसका सिर अपने विश्वास के बल पर सबकी अवहेलना करता रहा। क्षुद्रता के इस दर्प ने उसे वर्ड्सवर्थ के समान सत्ताधारी वर्ग का चारण बन जाने से रोका। पर इसका कीट्स के विकास पर कुप्रभाव भी निश्चय ही पड़ा। अन्ततोगत्वा, ऐसी भावना गहरे हीनत्व की अनुभूति का निदर्शक थी। इसने कीट्स के अन्दर एक विशेष प्रकार की कटुता और असहिष्णुता भर दी, जिसके कारण कभी-कभी उसके हितैषी वन्धु भी उससे अप्रसन्न हो उठते थे। इसी भावना के कारण वह कभी शेली जैसे सरल हृदय मानव का भली-भाँति सम्मान न कर सका, न उससे आजीवन घनिष्ठ ही हो सका। शेली के सम्बन्ध में कीट्स की भूल थी। वह स्वयं अभिजातीय सामन्तीय सत्ता के प्रति विद्रोही था। नए विचारों, स्वरों का गायक था और नूतन प्रतिभाओं के परिपूर्ण विकास का प्रबल समर्थक। बाद में, जब कीट्स के साथ आलोचकों ने दुर्व्यवहार किया, तो उसे मालूम होते ही कीट्स का पक्ष लेकर विरोधियों की उसने निन्दा की। बीमार होने पर जब प्रवास के लिए कीट्स इटली गया, तो शेली ने बार-बार उसे अपने पास रहने को आमन्त्रित किया, जिसे दुर्भाग्य कि स्वाभिमानी कीट्स ने किसी भी दशा में स्वीकार नहीं किया। कीट्स के अवसान पर शेली ने अमर काव्य 'ऐडोनिस' की रचना की। शेली की जब नौका डूबने पर मृत्यु हुई, तो उसकी जेब में कीट्स के अमर काव्य 'हाइपैरियन' की प्रति रक्खी हुई थी, जिसे वह कुछ देर पूर्व नाव का चप्पू चलाते समय पढ़ रहा था।

शेली और कीट्स के दृष्टिकोण में वास्तव में मूलभूत पार्थक्य था। कीट्स की विचारधारा भौतिक थी। वह यथार्थवादी था। वह इसी जीवन का भोक्ता था। सामाजिक विवशता ने उसके अन्दर कुण्ठा भर दी थी। पर उसका सुख-दुख विशुद्ध पार्थिव ही रहा। इसके विपरीत, शेली के स्वरों में आकाशीयता थी, अपार्थिवता

थी। उसके सुख-दुख में धरती की बात कम, पर आकाश की उड़ान बहुत है। उनके इस दृष्टिकोण-वैपर्य्य के कारण भी परस्पर समीपी सौहार्द्र सम्भव नहीं हुआ।

हण्ट द्वारा कीट्स की भेंट तत्कालीन कवि और आलोचक कॉलरिज से, कवि वर्ड्सवर्थ, तथा प्रसिद्ध निबन्धकार हैज़लिट से हुई, जिन्होंने कीट्स की मृत्यु के पश्चात् भले ही उसकी प्रशंसा में कुछ शब्द कहे, पर जीवन-काल में तो उनकी अहमान्यता के आगे वह क्षुद्र बाल-कवि के ही रूप में जाना गया।

इनके अतिरिक्त कीट्स के परिचितों में मिस बायली, जिसका परिणय-सम्बन्ध बाद में कीट्स के भाई जार्ज कीट्स के साथ हुआ, तथा उसका परिवार, एवं एक तरुण हल्लाम और चित्रकार सेवर्न उल्लेखनीय हैं।

अप्रैल के दूसरे सप्ताह में हैडन के परामर्श पर कीट्स ने अपनी काव्य-कला के विकास और साहित्य-चिन्तन एवं स्वास्थ्य-सुधार के हेतु स्थान-परिवर्तन किया। इसके लिए प्रथम उसने 'वाइट' के द्वीप को चुना। वह वहाँ १६ अप्रैल १८१७ को पहुँचा। इसके बाद शैन्कलिन, कैरिसब्रुक, मार्गरेट होता हुआ हैम्पस्टीड पहुँचा। वहाँ इसने अपना दीर्घनिवास बनाया। टॉम बीमार था। स्वयं भी अस्वस्थ था। हैम्पस्टीड की जलवायु अच्छी थी। प्रचुर नैसर्गिक सुषमा थी। उसे यह जगह बहुत रुची। कीट्स की कुटीर के निकट ही रेनाल्ड्स के दो मित्र—चार्ल्स वैन्टवर्थ डिल्क और चार्ल्स आरमिटेज ब्राउन—रहते थे। रेनाल्ड्स के माध्यम से कीट्स का इनसे परिचय हुआ। डिल्क उन्तीस वर्ष का तरुण था। पेशे से क्लर्क और विचारों से गौडविन का अनुयायी। साहित्य में गति थी। दक्ष लेखक था। शीघ्र ही क्लर्की छोड़कर उसने पत्रकारिता में अपना स्थान बना लिया। ब्राउन एक स्कॉच सटोरिए का पुत्र था। विचारों से उग्र था। इसके अन्दर भी साहित्यिक प्रतिभा थी। अभिनय का प्रेमी था। स्वयं नाटक लिखने में भी निपुण था।

एक और रेनाल्ड्स के मित्र से कीट्स को परिचय का सौभाग्य मिला। वह था बेंजामिन बेली। ऑक्सफर्ड का एक अण्डर ग्रेजुएट। वह तब चर्च के पादरी होने के लिए धार्मिक अध्ययन में लगा हुआ था। स्वभाव से अति सरल, सत्यनिष्ठ, उदात्त चरित्र और विकट अध्ययन-कीट था। कीट्स के मन में उसके प्रति बड़ा आदर भाव था।

कीट्स ने इधर कुछ दिनों से 'एण्डिमियन' लिखना शुरू कर दिया था। यहाँ आकर उसने तीसरी पुस्तक लिखी। काव्य के ऊपर गम्भीरता से चिन्तन किया। हण्ट द्वारा परिचायित मित्र, टेलर ने एण्डिमियन का प्रकाशक होना स्वीकार कर लिया। एण्डिमियन के विषय में हण्ट की राय अच्छी न थी। शेली भी इसके प्रकाशन के विषय में शीघ्रता न करने का पक्षपाती था। स्वयं कीट्स ने इसे अपना

'शिशु-सुलभ प्रयास' कहा। पर पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें स्थल-स्थल पर कवि कीट्स की प्रतिभा के मुक्ता बिखरे हुए हैं। हाँ, उनका सूत्र अवश्य निर्बल और कच्चा है। यह पुस्तक उसने हण्ट को समर्पित की। इसकी प्रतिक्रिया अभिजातीय साहित्यिकों पर अच्छी नहीं हुई। वे हण्ट से चिढ़े बैठे थे। इस पुस्तक की तत्कालीन दो प्रमुख पत्र—'ब्लेकवुड' और 'क्वार्टर' में कठोर आलोचना हुई। इसमें आलोचक ने कवि पर व्यक्तिगत आक्षेप ही अधिक किये। कविता को कीट्स के वश के बाहर की बात बताते हुए, उसे अपनी दवाओं और बोतलों की ओर लौटने का उपदेश दिया।

निस्सन्देह आलोचना अधिकांशतः सारहीन थी। इस बात की अंशतः सचाई से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कविता की कहानी बड़ी कमज़ोर और नीरस थी, पर जैसा कि शेली ने कीट्स के विरोधियों को लताड़ते हुए कहा कि इसमें उच्च कोटि का सौन्दर्य भी प्रचुरता से है, जिसको अदृष्ट करना और दोष-ही-दोष ढूँढना संकीर्ण बुद्धि और संकीर्ण हृदय का परिचायक है।

इस आलोचना का पाठक-समाज पर बुरा प्रभाव पड़ा। इधर कीट्स का स्वास्थ्य भी क्षीण से क्षीणतर होता जा रहा था। कीट्स के शुभचिन्तक और मित्रों ने 'रिव्यू' के प्रभाव को इस गिरावट का कारण समझा। फलतः ऐसे शुभचिन्तकों और कला-पारखियों की पाँत भी सामने आई, जिन्होंने कीट्स का पक्ष लिया। अनेक प्रशंसात्मक आलोचनाएँ—जो यथार्थ में कीट्स का प्राप्य था—प्रकाशित हुईं। इनमें रेनाल्ड्स और शेली उल्लेखनीय हैं। कुछ पाठकों के उत्साह-वर्द्धक पत्र भी मिले। एक साहित्य प्रेमी पाठक ने कीट्स को एक पत्र लिखा, जिसके साथ २५ पौ० का एक नोट और एक सॉनेट था—

हे, ऊँची प्रतिभा के तारे! तेरा मृदुल और प्यारा
यह प्रकाश इस अँधियारे के लिए नहीं है।'' इत्यादि

पर यह बात यहाँ स्मरणीय है कि स्वयं कीट्स पर इस 'रिव्यू' का प्रभाव अति अस्थायी था। वह अपनी रचनाओं का बड़ा प्रखर और तटस्थ समालोचक था। अपनी शक्ति और कमजोरी का उसे औरों से अधिक ज्ञान था। उसने स्वयं इस पुस्तक की भूमिका में इसे स्पष्ट करते हुए लिखा था कि यह अभी नौसिखिये का प्रयास है, जिसका अन्त हो जाना स्वाभाविक है।

इन आलोचनाओं और प्रत्यालोचनाओं के गुबार में तरुण कवि का हृदय कुछ दूसरी चिन्ता से मथा जा रहा था। एक ओर स्कॉटलैण्ड की यात्रा ने उसके अन्दर क्षय के कीटाणुओं को प्रबल कर दिया था, और वे थके कमजोर शरीर को अपनी खुराक बना रहे थे। दूसरी ओर, उसका भाई टॉम शय्या पर अपने लघु जीवन की घड़ियाँ गिन रहा था। उसकी दशा अत्यन्त चिन्ताजनक थी। जाड़ा

प्रारम्भ होते-होते चिन्ता बढ़ती ही गई। कीट्स ने सुश्रुषा में कोई कसर नहीं रक्खी। २६ अक्टूबर को कीट्स ने अपने भाई को लिखा, "तुम दुखदतम समाचार सुनने को तैयार रहो।" दिसम्बर के अन्त तक वह सारे समय शैया पर रहता। अन्त में वह दुःखद घड़ी आ पहुँची। "एक दिन बड़े सवेरे," ब्राउन लिखता है, "किसी हाथ के दबाव से मैं जग पड़ा। वह कीट्स था जो मुझे बताने आया था कि उसका भाई अब इस लोक में नहीं रहा। मैंने कुछ नहीं कहा। दोनों कुछ देर तक खामोश बैठे रहे। मेरा हाथ उसके हाथ में जकड़ा था। अन्त में मेरे विचार मृतक से जीवित की ओर लौटे। मैं बोला, 'अब उस जगह से क्या लेना-देना और अकेले रहकर ? मेरे साथ क्यों न रहो ?' वह रुका। आवेश से उसने मेरा हाथ दबाया, और बोला, 'मैं भी सोचता हूँ यही ठीक रहेगा।'···उसी क्षण से वह मेरा सहवासी था।"

जैसे-जैसे वेदना का भार हल्का हो गया, वह पुनः साहित्य-सर्जना में संलग्न हो गया। उसने 'हाइपैरियन' काव्य को पूरा करना आरम्भ किया। टॉम की रोग-शैया के किनारे कीट्स ने इस काव्य को आरम्भ किया था। ओड टु नाइटिंगल (बुलबुल के प्रति), ईव ऑफ सेन्ट एग्निस (देवि एग्निस की सन्ध्या) तथा कुछ सॉनेट इस काल की रचनाएँ हैं। एक काव्य 'ईव ऑफ सेन्ट मार्क' का भी आरम्भ किया।

कविता ही नहीं, प्रत्युत, जीवन की दृष्टि से भी यह काल विशेष महत्त्व का है।

कीट्स के मित्र ब्राउन के घर में किरायेदार के रूप में एक विधवा श्रीमती ब्राउन का भी परिवार था। उनके दो छोटे बच्चे और एक तरुणी रूपसी कन्या—फेनी ब्राउन थी। शीघ्र कीट्स की इस तरुण कुमारी के साथ घनिष्ठता हो गई और एक दिन वह आया जब कवि के लिए इस अनुतप्त प्यार के बिना जिन्दा रहना कठिन हो गया।

परिपूर्ण यौवनरस से छलकती फेनी का प्यार भावुक और दरिद्र कीट्स के लिए वरदान और अभिशाप दोनों सिद्ध हुआ।

कीट्स का रोगी शरीर प्रेम की इस ज्वाला में तेजी से जलने लगा और अदम्य वासना की आग में उसने प्राण को होम कर कविता को अमरत्व दिया। फेनी अत्यन्त रूपवती, चंचल युवती थी। नूतन कली की कोमलता, और सुवास से महकती हुई अँखड़ियाँ, सुन्दर कोमल कुन्तलावली, मुस्कान से दमकता आनन। पर कीट्स और फेनी के दृष्टिकोण में आकाश और पृथ्वी का अन्तर था। वह उसकी नैतिकता और कवि-हृदय की आकुलता के प्रति कभी भी सहानुभूति न दर्शा सकी। वास्तव में इन युगल-प्रेमियों का मिलन ठीक नहीं था। उसके मित्र-बान्धव भी इसे

दोनों के लिए, विशेषकर कवि के लिए, इसे चिन्ताजनक समझते थे। वे परोक्ष रूप से ऐसे संकेत भी कर चुके थे। अतः कीट्स ने इस विषय को गोपनीय ही बनाये रखा। फेनी की कीट्स के प्रति ज्यों-ज्यों उपेक्षा बढ़ती गई, त्यों-त्यों कीट्स के अन्तर में प्रणय की विनाशिका-वह्नि और भी तीव्रतर होती गई। इसकी लपटों में धीरे-धीरे कीट्स का समस्त संयम, धैर्य, शारीरिक और मानसिक बल भस्म हो चला। पर कवि की कविता इस आग में पक-पक कर निखर रही थी। पीड़ा के इस दोल में उसका कवि झूल रहा था। अथाह वेदना की दाह से भरे हुए गीत उसके कण्ठ से ढल रहे थे। 'ला बेली डैम सांस मर्सी' (निर्मम सुन्दरी), जैसी रचनाएँ इसी निराशा और क्षोभ से ओत-प्रोत हैं। वह धरती के सुख से निराश होकर कल्पना में सुख पाने को व्याकुल हो रहा था—

सदा कल्पना को करने दो विचरण।
क्योंकि नहीं मिलते घर में हर्षिल क्षण॥

शरद् और बसन्त के मध्य, वह प्रेम और काव्य में डूबा रहा। उसे बाहरी जगत् का कुछ पता नहीं था। एक दिन उसने निश्चय किया कि पूरा समय साहित्य-सर्जना में लगाऊँगा। चिकित्सा का धन्धा छोड़ने का निश्चय कर और साहित्य से ही जीविका अर्जन करने का उद्देश्य लेकर, वह लन्दन चला गया। अपने एक मित्र के पास ठहरा। पर उसका स्वास्थ्य अत्यन्त क्षीण हो रहा था। अपने प्रबुद्ध निश्चय को कार्यान्वित कर सकने के योग्य वह नहीं रहा था। प्रेम की तीव्र ज्वाला पुनः हैम्पस्टेड लौटा लाई। पर इस बार फेनी ने उसके साथ उपेक्षा के बजाय सहानुभूतिमय व्यवहार किया। कीट्स फिर अपनी वासना से परास्त हो गया। लन्दन लौटने पर वियोग की ज्वाला और तीव्रतर हो गई।

इसी बीच वह ब्राउन के साथ एक नाटक की रचना कर चुका था। कुछ और नाटक की दिशा में वह स्तुत्य प्रयत्न करने का आकांक्षी था। पर उसके रक्त ने धोखा दिया। उसके इरादों को प्रेम कमजोर कर चुका था। उसके जीवन पर अब नैराश्य की सघन घटा घिरती आ रही थी। 'मैं अब कुछ नहीं कर सकूँगा,' 'अब मेरा समस्त धैर्य चुक गया है,' यही उसके इस काल के जीवन की टेक बन चुके थे।

अब अक्टूबर १८१९ से कीट्स के जीवन का करुण अध्याय आरम्भ होता है—

एक दिन कीट्स बाहर खुले में घूमने के कारण रोग का शिकार हो गया। रात को जब वह वापिस लौटा, तो उसकी अस्त-व्यस्त दशा, शिथिल शरीर और लाल आँखें देखकर ब्राउन ने कहा, "तुम्हें बुखार है?"

"हाँ, है !" उसने उत्तर दिया, "पर थोड़ा-सा !" ब्राउन ने सहारा देकर लिटा दिया। जो कुछ तब सुलभ था, उपचार किया गया। थोड़ी देर बाद कीट्स खाँसा। फिर अपने आप बोला, "यह मेरे मुँह का रक्त है।" ब्राउन उसके समीप गया। कीट्स चादर पर छलकी रक्त की एक बूंद की जाँच कर रहा था। "मोमबत्ती लाना, ब्राउन !" उसने कहा, "देखूँ इस रक्त को !" ग़ौर से देखने के बाद उसने ब्राउन की तरफ देखा और कहा, "मैं इस रक्त के वर्ण को जानता हूँ। यह धमनी का रक्त है। यह मेरी मौत का वारण्ट है। मैं मरूँगा।" डॉक्टर बुलाया गया। दवा दी गई। उस रात वह खामोशी से सो गया।

पर जो कुछ उसने कहा वह भयंकर सत्य था।

कीट्स अब कीट्स नहीं रहा था। वह 'अपने का ज्वर' रह गया था।

अब उसकी ऐसी अवस्था हो गई थी कि उसके लिए सब कुछ असहनीय हो गया था। कुछ भी नयापन उसे खटकता। तनिक भी अरुचि से उसे चिढ़न होती। जरा-सी बात से तिनक उठता। ऐसी ही एक अवस्था में वह हण्ट के पास तीन सप्ताह तक रहा। एक दिन नौकर चिट्ठी दे गया। चिट्ठी फेनी की थी। खुली हुई, और सो भी दो दिन देर के बाद मिली। इतना ही काफी था। उसके स्वाभिमान को ठेस लगी। वह तुरन्त हण्ट का स्थान—सबके आग्रह के बावजूद—छोड़कर चला गया।

श्रीमती ब्राउन के परिवार ने उसे इस तरह अकेला छोड़ना उचित नहीं समझा। उसकी प्रेयसि ने अति कोमलता से उसकी सुश्रुषा की, जिसकी स्मृति प्रणय की अन्य स्मृतियों के बहुत दिनों तक कचोटती रही। प्रेम का यही रूप कीट्स के जीवन का भयंकर शाप था !

फेनी निष्ठुर नहीं थी। उसके अन्दर दया-भाव था। पर कीट्स को वह प्यार नहीं करती थी। वह उस दरिद्र कवि को प्यार कर क्या लेती ? वह समाज की रंगीनियों में ससम्मान डूबकर जीवन की विलासिताओं का परिपूर्ण उपभोग करने की आकांक्षिणी थी। कीट्स की कविता और उसकी चिन्तना उसके बाहर की बातें थी। पर मुहब्बत की शर्त है आग का दोनों दिलों में बराबर लगा रहना। उधर कीट्स की भावुक प्रकृति असमय में ही उसका काल बन गई। वह मृत्योन्मुख जीवन की घड़ियाँ काट रहा था। कीट्स के प्रेम-पत्रों के पढ़ने पर पता चलता है कि प्रेम की ज्वाला की भयंकरता कैसी होती है ! एक-एक अक्षर जैसे रक्त की स्याही से अंकित हुआ हो।

तभी इंगलैण्ड का भयंकर जाड़ा आरम्भ हो रहा था। डाक्टर ने परामर्श दिया कि रोग ठीक करना चाहते हो, तो इंगलैण्ड में जाड़ा मत काटो। बाहर जाओ !

कीट्स ने इटली के लिए प्रस्थान किया। चित्रकार सेवर्न ने मित्र का साथ देना स्वीकार कर लिया।

सेवर्न एक प्रतिभाशाली चित्रकार था। उन दिनों उसके 'नैराश्य-गह्वर' (Cave of Despair) के चित्र की बहुत प्रशंसा थी। उस चित्र को देखकर कीट्स ने सेवर्न से कहा, "आह ! चलो ! मुझे अपने नैराश्य के गह्वर में ही ले चलो !"

इस चित्र पर उसे एक विशिष्ट पुरस्कार प्राप्त हुआ, जिससे कि अन्यायपूर्वक सेवर्न को पहले वंचित कर दिया गया था। इसके लिए कीट्स ने बड़ा आन्दोलन किया था। तभी से उनकी घनिष्ठ मैत्री थी। इससे पहले कीट्स को आशा थी कि ब्राउन उसके साथ जाएगा। इसके लिए उसे पत्र भी लिखा था, जो दुर्भाग्यवश देर से पहुँचा। १८ सितम्बर १८१९ को 'मेरिया क्राउथर' से सेवर्न और कीट्स ने नेपल्स के लिए प्रस्थान कर दिया।

जहाज में पहले कीट्स के स्वास्थ्य में कुछ सुधार-सा दिखाई दिया, फिर दशा क्षीण-से-क्षीणतर होती गई। तट पर पहुँचने पर 'क्लेरेन्टाइन' के १४ दिनों में कीट्स का बुरा हाल हो गया।

नेपल्स में पहुँचकर वे एक होटल में ठहरे। शेली ने कीट्स से 'पीसा' आने के लिए लिखा। पर कीट्स ने पुनः अस्वीकार कर दिया। वे रोम चले गये। डा० क्लार्क की देख-रेख में कीट्स की चिकित्सा होने लगी। सेवर्न प्यानो पर कवि को संगीत सुनाता। पुस्तकें पढ़ता। सेवर्न का प्रायः सारा समय कीट्स की परिचर्य्या में ही व्यतीत हो जाता। डा० क्लार्क दिन में तीन-चार बार देख जाते। श्रीमती क्लार्क कवि के लिए अपने हाथ से पथ्य तैयार करतीं। उसे ममतापूर्वक खिलातीं। डा० क्लार्क की इस सहृदयता को कभी नहीं भुलाया जा सकता। वे प्रवासी अंग्रेज थे। इटली में उनकी गणना उच्च कोटि के चिकित्सकों में होती। सेवर्न की तो सेवाओं का उल्लेख किसी भी प्रकार की कृतज्ञता के परे है। उसके इस निःस्वार्थ मानवीय संवेदना के महान कार्य को स्वर्णाक्षरों में अंकित किया जाएगा। इस समय की कीट्स की अवस्था का मर्मान्तिक चित्र सेवर्न की दैनिकी में पढ़कर हृदय टूक-टूक होने लगता है।

कीट्स अपनी इस अवस्था को जीवनोत्तर-काल (Posthmus Life) कहता था। उससे यह कहना कि तुम स्वस्थ हो जाओगे, निराश मत हो, उसके पारे को एकदम चढ़ा देता। वह स्वयं चिकित्सा-शास्त्र का अध्येता था। वह जानता था कि मैं जीवन की अवधि पारकर अब मृत्यु की डगर पर ही चल रहा हूँ। इसलिए प्रतिदिन चिन्तित होते सेवर्न के समक्ष डा० क्लार्क से पूछता, "डाक्टर, यह जीवनोत्तर अवधि कब समाप्त होगी ?" तीखे दर्द की लपट को बुझाने कीट्स तरल अफीम का प्रयोग करता। एक छिपी बोतल सेवर्न ने देख ली। उसे डाँटा। तब कीट्स ने याचना भरे

स्वर में उससे बोतल माँगी, "दो, मुझे दो, इस दर्द भरे जीवन का अन्त करने दो।" सेवर्न के न लौटाने पर उसकी प्रार्थना गहरी निराशा में बदल गई। फिर कुछ देर बाद अपने चिकित्सा-ज्ञान के बल पर उसने सेवर्न को रोगी की भयंकरता बताई, और रोगी की सुश्रुषा करने वाले पर पड़ने वाले विनाशक प्रभावों का वर्णन किया। "सेवर्न, मेरे लिए अब और जीवन को खतरे में मत डालो।" उसने आग्रह किया। पर सेवर्न की निरन्तर अस्वीकृति और उसके अपने शान्ततर होने पर वह स्वयं अपने प्रस्ताव पर लज्जित हो गया।

मौत का पंजा उसके जीवन को शनैः शनैः ग्रस चुका था! और अब जीवन को अनेक उपमाओं से विभूषित करने वाले महान् कवि की एकमात्र अभिलाषा मौत के खामोश आग़ोश में आँख मूँद लेने की रह गई थी। प्रेयसि के दिये गए एक मात्र उपहार श्वेत 'कोनेलियन' पुष्प को हाथों में जकड़े रहता। सेवर्न से जेरेमी टेलर की कविता सुनता। कभी कहता, "सेवर्न! मुझे लगता है जैसे मेरे चारों ओर फूल खिल रहे हैं!...."उसके सुन्दर गाल मुरझा गए थे। प्रतिभा की आलोक शिरायें विकीर्णित करने वाले नयनों में अब सघन बदलियाँ तिरतीं।

और एक दिन चुपचाप मृत्यु का मेहमान द्वार पर आ खड़ा हुआ! वह उन्नीसवीं सदी की सत्ताईस फरवरी थी।

पिघली हुई रात ऊँचाइयों से ढल रही थी। चार दिन से थके सेवर्न ने मुश्किल से झपकी ही ली थी कि कवि ने पुकारा, "सेवर्न! सेवर्न! मुझे सहारा दो! मैं मर रहा हूँ! शान्ति से मरूँगा! धन्य प्रभु! वह क्षण आ ही गया!"

सेवर्न ने बाँहों में उठाया! वह खामोश हो गया। आँखें झप गईं। वह सो गया। पर वह अनन्त निद्रा थी।

रोम के सबसे सुन्दर निभृत कब्रिस्तान में उसकी समाधि है! कीट्स ने जीवन-भर सौन्दर्य के नयन-कटोरों में फूलों का रस पान किया। फूलों के अनगिन वर्णों की उसको अपरिमेय जानकारी थी। उसकी कविता फूलों के देश की बन्दिनी है। उसकी समाधि पर, 'दूब सहारे मुस्काते पुष्पों की एक ज्योति बिखरी है।' फूलों के कवि की समाधि के चारों ओर नीले, श्वेत पुष्प उसकी कविता के अक्षरों से चमकते हैं। उस सुनसान खामोशी में कभी-कभी शायद चरवाहों के गीत उसकी एकान्त व्यथा को मुखरित कर देते हों। उनके भेड़ों की गले की घण्टियों की टुन-टुन की ध्वनियाँ शायद संगीत के प्यासे कवि के कानों को जगा देती हों।

तब से न जाने कितने अंग्रेज यात्री इस मजार पर अपनी श्रद्धांजलि चढ़ाने आए होंगे—उस आत्मा के प्रति—जो उन्हीं के पिताओं और पितामहों के क्रूर व्यवहारों से बचने यहाँ शान्ति खोज रही थी।

अन्तिम बार कीट्स ने सेवर्न से कहा था, मेरी कब्र पर लिखा जाय—

"यहाँ वह सोता है जिसकी कीर्त्ति पानी की तरंगों पर लिखी गई।"

क्या पता इसे पढ़कर शोक संतप्त सरस्वती अपने लाड़ले की समाधि पर कितनी बार सिर धुन-धुन कर न रोई हो? हाँ, उसकी कीर्त्ति लिखी गई, पानी की तरंगों पर! पर, जैसा कि सैन्टसबरी ने कहा, 'वह पानी जिन्दगी का पानी था।'

२

महाकवि कीट्स
की
काव्य-साधना
(Keats : the Poet)

"हृदय मस्तिष्क का बाइबिल है।"

—कीट्स

"किसी मनुष्य में काव्य-प्रतिभा को अपने निर्वाण के लिये अवश्य यत्न करना चाहिये : पर यह कानूनों और प्रवचनों से परिपक्व नहीं हो सकती, इसके लिये स्वयं में अनुभूति और सतर्कता चाहिये। जो सृजनशील है, अवश्य अपने का सृजन करेगी।"

—कीट्स

समय के पटल पर महाकवि कीट्स का चित्र अधूरा ही रह गया, पर इस अधूरे चित्र की रेखाएँ भी इतनी विमोहक हैं कि साहित्य की चित्रशाला में उसका स्थान महान चितेरों के परिपूर्ण चित्रों के समकक्ष है।

वह एक महान कवि था। स्वाभाविक काव्य-गुण के क्षेत्र में उसकी तुलना शेक्सपियर जैसी प्रतिभाओं के साथ की जाती है। उसके काव्य में अंग्रेज़ी कविता सर्व-युगीन प्रतिभाओं का समावेश कर एक नये उत्कर्ष पर पहुँचती प्रतीत होती है। उसका काव्य जीवन की सहज सहजात उदारता और आत्मा की भव्यता से ओत-प्रोत है। कीट्स के प्रमुख जीवनी लेखक सर सिडनी कॉलविन ने उसको अपनी श्रद्धांजलि देते समय कहा था कि यदि यदाकदा मुझे केवल कवि कीट्स का ही काव्य पढ़ने को मिल जाये, तो मेरा जीवन उस उत्कृष्टतम के अधिकांश से भर उठेगा, जोकि मानव जीवन को कविता से वरदान के रूप में मिला करता है। उसकी कविता में गहरी मानवीय संवेदना है; उद्दीप्त कल्पना के पर लगाये हुए भी, उसकी कविता में जीवन के प्रति सजीव दृष्टि है, और है आन्तरिक संघर्ष के बीच अनवरत चिन्तनशीलता से सही राह पाने की बेचैनी।

उसकी कविता में हृदय-पक्ष की मार्मिकता के साथ, बुद्धि पक्ष की सचेतनता भी है। उसका चिन्तक रूप, कवि की तुलना में किसी प्रकार कम नहीं, प्रत्युत, निरंतर परिपुष्टतर होता चलता है। वह अचेतन कलाकार नहीं था। कला का उसने खुली आँखों से अध्ययन किया था। तर्क-तुला पर तोल-तोल कर वह अनुभूतियों को अपनी कला में सँजोता रहा। उसके पत्रों में उसके चिन्तन का रूप काफी प्रौढ़ है। कविता की समस्या पर उसने गम्भीर चिन्तन किया था। उसकी काव्य-सम्बन्धी धारणा निरंतर प्रगतिशील रही। आरम्भ से लेकर अंत तक उसकी कविताओं का विकास उसके काव्य के प्रति दृष्टिकोण का विकास है। प्रत्येक कविता इसी दृष्टिकोण का एक-एक चरण है। कविता और सौन्दर्य्यशास्त्र सम्बन्धी उसके विचार उसकी उतप्त संघर्षमना अवस्था के निष्कर्ष हैं। इस क्षेत्र में उसकी महत्ता होरेस, दान्ते, गेटे, शिलर इत्यादि से कम नहीं। जीवन के इतने छोटे-से काल में उसने अपने विचारक रूप का जैसा परिचय दिया, वह अंग्रेजी कवियों में बहुत कम दिखलाई देता है।

कीट्स की रचनाएँ—

कीट्स की प्रथम रचना ले हंट के कारावास जाने पर लिखा गया सॉनेट था। इसके पश्चात् उसने अनेक सॉनेटों, और छोटी-बड़ी रचनाओं का प्रणयन किया, जिनमें एक 'जार्ज फेल्टन मैथ्यू को लिखित पत्रकाव्य (Epistle)' का उल्लेख आवश्यक है। इसमें यद्यपि विचारों की अपरिपक्वता है, छंदों में शिथिलता है। फिर भी, इसमें प्रतिभा की छाप है, प्रवाह है, आवेश है; सबसे बढ़ कर है स्वाभाविकता। इसका मूल यही साधारण रोमानी भाव है कि व्यावहारिक जगत की चिन्ताएँ कविता के स्वर्ग में पहुँचाने में बाधक हैं। काव्यात्मा के सान्निध्य के लिये कवि को किसी ऐसे स्थान में रमना चाहिये जो,

······· **पुष्पित स्थल, एकान्त, वन्य, रोमानी,** ······हो। इसके पश्चात् आरम्भिक कविताओं में सर्वाधिक उल्लेखनीय है, उसका चैपमैन वाला सॉनेट (१८१५)। इसमें किसी प्रकार की शिथिलता और अपरिपक्वता के दर्शन नहीं होते।

कुछ अन्य साधारण रचनाओं के बाद 'मैं पंजे के बल खड़ा एक लघु शैलिनि पर' (I stood tiptoe upon a little hill) शीर्षक बड़ी कविता के दर्शन होते हैं। इसमें आरम्भिक ग्रीष्म दिवसों का सुन्दर और सजीव वर्णन है। निसर्ग की सुषमा के मनोहारी चित्र हैं। कवि का मस्तिष्क, पुष्पों और झरनों के सौन्दर्य्य से भरा हुआ है। निसर्ग ही कविता का अविरल स्रोत है, इसी कथन का प्रतिपादन है।

इसके पश्चात् कवि कीट्स की प्रतिभा 'निंदिया और कविता' (Sleep and Poetry) में एक नये मोड़ पर आ खड़ी हुई है। इसमें कीट्स की काव्य-चिन्तना बड़ी स्पष्ट है। अनेक अपरिपक्वताओं के बावजूद, इस काव्य में उसकी कवि-चिन्तक, प्रतिभा की विमुक्त अभिव्यक्ति हुई है। नींद मानव के लिये अनुपम वरदान है, पर इससे भी बढ़कर, यदि कोई वस्तु है, तो वह है काव्य। इसका उदय होता है प्रकृति के साहचर्य्य से, मानवीय शक्ति के सम्मिलन से—

> **और न कोई, जिसने एक बार देखा है दीप्त भास्कर,**
> **सकल बादलों का दल, और किया है अपना निर्मल अंतर,**
> **निज महान निर्माता के विराजने, केवल वह ही परिचित**
> **होगा मेरे आशय से, औ' गौरवाभ से होगा दीपित,**
> **उसका अंतस**·······························

—निंदिया और कविता।

यह कविता मानव जीवन की काव्यिक आलोचना है। कवि प्रकृति द्वारा मनुष्य को समझने का प्रयास करता है। इस कविता में कवि कीट्स का रूप बड़ा

स्वाभाविक और हार्दिक है। वह इंद्रिय-बोध (Perception) के द्वारा कविता के चरम को पकड़ता है। कविता उसके लिये शक्ति का प्रतीक है।

"यह है शक्ति अर्द्ध-शायित अपनी दक्षिणी बाहु के ऊपर"

जिसको,

"·········सुहृद होना है, हरने दुःखमय चिन्ताओं को,
और उठाने हेतु उच्चतल पर मानवी भावनाओं को।"

इस लम्बी कविता के पश्चात्, कवि थोड़े दिनों के बाद एक बड़े काव्य 'एण्डिमियन' (Endymion) की प्रस्तुति करता है। कीट्स की यह रचना उसके काव्य विकास का एक प्रमुख चरण है। और १८१७ ई० तक की उसकी काव्य-चिन्तना का फल है। इसमें उसकी कविता का उद्देश्य निश्चित होता है। इसमें कल्पना, सौन्दर्य्य, वेदना, और शक्ति का मिला-जुला अभिव्यंजन है। अपने उद्देश्य तक पहुँच सकने के लिये इस काव्य में जैसे वह अपनी शक्ति का मापन करता है। इसमें उसकी कल्पना निर्बंध होकर सौन्दर्य-सृजन करती है। पर इसकी कथावस्तु शिथिल है। इस दृष्टि से नीरस है। पर मुक्तक रूप में इसको पढ़ने पर बहुस्थलों पर कीट्स की उत्कृष्ट काव्य-प्रतिभा का परिचय मिलता है।—शैली के शब्दों में,

"मैंने कीट्स की (इस) कविता को पढ़ा; देर तक पढ़ सकने के लिये मैं अधिक प्रशंसा का पात्र हूँ, क्योंकि रचनाकार का उद्देश्य यह नहीं जान पड़ता कि कोई इसे आद्योपान्त पढ़े। तो भी इसमें काव्य के कुछ उच्चतम और उत्कृष्टतम अंशों का समावेश है।"

—डब्ल्यू० एम० ऐरोज़ेटी[1] द्वारा उद्धृत।

इसका आशय इस प्रकार है। एक कवि की आत्मा निरपेक्ष सौन्दर्य्य की शोध में भटकती है। विचारों की तार्किकता से उसे इसकी प्राप्ति नहीं होती। इसके लिये हृदयगत प्रेम (मानवीय संवेदना), और कल्पनाशीलता की आवश्यकता है। मानवीय संवेदना में विलास का निषेध है। दूसरों की पीड़ा के लिये अपने आत्म की तिलांजलि

1. "Everything is done for the sake of variegation and embroidery of the original fabric; or we might compare it to a richly-shot silk which, at every rustling movement, catches the eye with a change of colour. Constant as they are, the changes soon become fatiguing, and in effect monotonous; one colour, varied with its natural light and shade, would be more restful to the sight, and would even, in the long run, leave a sense of greater, because more congruous and harmonized, variety.........On every page the poet had enjoyed himself; and on most of them the reader can joy as well."

—*W. M. Rossetti.*

देनी पड़ेगी, एण्डिमियन के सुख और सच्चे कवि की कुंजी है मानवी संवेदन में। स्वार्थ बना रहा तो सच्चा कवि नहीं हो सकता।

The Youth elect
Must do the thing or both will be destroyed.

इस प्रकार, इस काव्य में 'निंदिया और कविता' ही के मत प्रतिपादन हैं।

एण्डिमियन के बाद कवि की प्रतिभा अब टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डियों की राह छोड़कर विकास का प्रशस्त पथ खोजने लगती है। उसकी आगामी रचना है, इज़ाबेला या तुलसी का पात्र (Isabella or Pot of Basil)। इसकी कथा का आधार है इटली के प्रसिद्ध कथाकार बोकाच्चिओ (Boccacio) की रचना। पर कीट्स इसके अपनाने में सर्वथा मौलिक है। उसकी अपनी शैली है। स्थल-स्थल पर कीट्स के भाव सौन्दर्य्य की छाप है। इसमें कीट्स ने सुकोमल मर्मस्पर्शन और सुघर चित्रात्मकता का सुचारु सम्मिलन करने में सफलता पाई है। अनेक पद अत्यंत उच्चकोटि के हैं। कहानी में प्रवाह है। फिर भी यह कीट्स की प्रथम श्रेणी की रचनाओं में नहीं आती। स्वयं कवि के शब्दों में,

"इसमें हैं जीवन की अतिशय अनुभवहीनता और ज्ञान का सारल्य········ खैर, इज़ाबेला को कहूँगा, अगर मैं समालोचक होऊँ तो, कि यह है एक शिथिल-पक्षमय कविता, एक मनोरंजक प्रशान्तता धारे हुए।"

इसके पश्चात्, उसकी उत्कृष्ट रचनाओं में 'देवि ऐग्निस की संध्या' (The Eve of St. Agnes) के दर्शन होते हैं।

यह कीट्स की उच्चकोटि की रचनाओं में से है। यों समय-क्रम से इसकी रचना 'हाइपैरियन' (Hyperion) से पूर्व हुई थी। जनवरी १८१९ के दूसरे सप्ताह में कीट्स अपने मित्र डिल्के के यहाँ गया था। वहाँ वह बीमार पड़ गया। तब शायद अपने आपको प्रसन्न करने के लिये "······कुछ पतले कागज़ लिये और उन पर एक कविता 'ईव ऑफ सैन्ट ऐग्निस' लिखी।······" कीट्स की अपनी धारणा इस कविता के विषय में विशेष ऊँची नहीं थी। क्योंकि तब उसका मापस्तर था 'हाइपैरियन'। शायद वह 'लैमिया' को इससे बहतर समझता था। पर वास्तव में यह कविता कीट्स की अत्युत्तम रचना है। इसका स्तर 'इज़ाबेला' की अपेक्षा बहुत ऊँचा है। इसमें उत्कृष्ट काव्य के सभी गुण हैं। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है, मध्यकाल के वातावरण को सजीव करने की कुशलता। शब्द चित्रों का बाहुल्य है। संगीत की दृष्टि से अनुपमेय है। कथा में अविरल प्रवाह है; रोचकता है; प्रचुर रचनात्मक चमत्कार है। कथा शिल्प की दृष्टि से······यह है एक दक्ष कलाकार का सचेतन कृतित्व।" इसके कथानक के मूल स्रोत अरब की कथाएँ, तथा शैक्सपियर के 'रोम्योजूलियट',

मिल्टन के 'पैराडाइज़ लौस्ट', बर्टन की 'पोपूलर एन्टीक्विटी' इत्यादि हैं।

'इज़ाबेला' और 'ऐग्निस' के स्तर की एक और लम्बी कविता का उल्लेख आवश्यक है। वह है 'लैमिया (Lamia)'। इसकी रचना कर स्वयं कवि को संतोष का अनुभव हुआ। इस कविता का कथानक कीट्स ने बर्टन की 'एनाटोमी ऑव मैलेन्कली' से पाया था। इसमें कीट्स ने ड्राइडिन के प्रिय छंद 'ऐलेक्ज़ेड्राइन' का प्रयोग किया है। इस कविता में प्रवाह, सौन्दर्य, और चित्रात्मकता के गुण प्रचुर मात्रा में हैं, पर इनसे भी प्रचुरतर है गहनता (Intensity)। इज़ाबेला में सौन्दर्य का स्पर्श तो है, पर कुरूपता और अपरिपक्वता की भी प्रचुरता है। इसलिये कुल छाप कमजोर है। 'ऐग्निस' में सौन्दर्य्य के स्थल तो अनेक हैं, पर वे अधिकतर कथासूत्र से असम्बद्ध से हैं, और कहीं-कहीं प्रवाह में बाधक बन जाते हैं। इस दृष्टि से लैमिया निश्चय ही सफल रचना है। पर गहनता की दृष्टि से इसका भी अनुपात समान नहीं है। पूरी रचना में ऐसे स्थल थोड़े ही हैं। यह प्रायः शिथिल कड़ियों के बीच में मिलते हैं। अतएव, समग्र रचना का स्तर हल्का पड़ जाता है। तो भी एक और कारण से इसका उल्लेख महत्त्वपूर्ण है, वह है इसमें जीवन सम्बन्धी सामग्री का बाहुल्य। इसकी नागिन युवती है फैनी, लिसीयस है स्वयं कीट्स, और एपोलोनियस है ब्राउन। साथ ही इसका रूपक काव्योद्देश्य को भी स्पष्ट करता है। दार्शनिकता, या बौद्धिकता (कीट्स दार्शनिकता से यही अर्थ यहाँ ग्रहण करता जान पड़ता है,) मोहक जादू को छिन्न-भिन्न कर देती है। ऐसा आशय कीट्स ने अनेक बार अपने पत्रों में, और कविताओं में अन्यत्र भी प्रकट किया है। पर इन पंक्तियों में वह स्पष्ट है—

" ....उड़ जातीं
क्या नहीं सकल मोहकताएँ, शीतल दर्शन के
मात्र परस से ? एक बार व्योम पर सुहाना इन्द्र-चाप था :
ज्ञात हुए उसके सब ताने-बाने हमको; गण्य हुआ वह
साधारण पदार्थों की नीरस सूची में।

—लैमिया।

वर्णनात्मक काव्यों की इस त्रयी के पश्चात् कीट्स की विख्यात रचना 'हाइपैरियन' पर आते हैं, जिसका आरम्भ रचना की दृष्टि से इन तीनों से पूर्व है, और अंत तीनों के बाद, क्योंकि कीट्स ने अपने अंतिम काल में इसे पुनः दुहराने का प्रयत्न किया था।

हाइपैरियन (Hyperion)—यह कीट्स का सबसे महान काव्य है। अनेक बार इसकी रचना में व्यतिक्रम हुआ। इसलिये इसकी शैली और विचारों में विविधता है। इसकी रचना एण्डिमियन के समाप्त होते ही आरम्भ हो गई थी, जैसा कि उसके पत्रों

से पता चलता है। इसका प्रकाशन १८२० की जिल्द के साथ हुआ था। इस काव्य में कीट्स की प्रतिभा ने परिपूर्ण उत्कर्ष पाया है। मिल्टन के प्रसिद्ध महाकाव्य 'पैराडाइज़ लौस्ट' की लम्बी छाया सर्वत्र गोचर है। इसकी गणना भी अंग्रेज़ी काव्य में 'पैराडाइज़ लौस्ट' के बाद ही की जाती है। ले हण्ट के अनुसार, यह 'एक भव्य पद्यांश, निर्दोष तो नहीं, पर लगभग ऐसा ही है।' लार्ड बायरन ने मरे को लिखे अपने पत्र में इसकी बड़ी प्रशंसा की थी, और इसे 'ऐस्किलस के समान उदात्त' कहा था। शैली के प्रशंसापूर्ण उदगार दृष्टव्य हैं—

"हाइपैरियन शीर्षक पद्यांश उसके लिये संभावना प्रस्तुत करता है कि वह युग के प्रथम लेखकों की पाँत में स्थान पायेगा। निश्चय ही लेखन का यह आश्चर्य-जनक अंश है, और कीट्स का वह रूप मेरे सामने प्रस्तुत करता है, जो, मैं स्वीकार करता हूँ कि पहले मेरे सामने नहीं था।...... अगर हाइपैरियन भव्य काव्य नहीं है, तो हमारे समकालीनों ने कुछ नहीं रचा।......पद्यांश का अधिकांश भाग निश्चय ही काव्य की अतीव उच्च शैली है।......"

—शैली।

आलोचक सिडनी कैलविन के अनुसार—यह काव्य **"हमारी भाषा के महानतम काव्यों में से एक, और अपनी भव्यता में यह सरलतम और अतिशय स्वाभाविक रचनाओं में से है।......"**

इसकी प्रेरणा के स्रोतों और प्रभावकों में सर्वप्रथम मिल्टन के 'पैराडाइज़ लौस्ट" का नाम आता है। इसके अनेक स्थलों पर मिल्टन की पूरी-पूरी छाप है। इसकी कविता शैली पर मिल्टन का प्रचुर प्रभाव है। इसके शिल्प (कारुकारिता) के लिये वह विशेष रूप से उसका ऋणी है। कविता की इतनी अधिक मिल्टनमयता के लिये कीट्स आवश्यकता से अधिक सचेत था। इससे मुक्त होने के लिये उसनें बाद में इसे संशोधित किया। अन्य प्रभावकों में होमर के चैपमैन के अनुवाद, व बाल्डविन की कृतियाँ, स्पैन्सर की यूनानी दंतकथाएँ, इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

इस काव्य की रचना के समय कीट्स का उद्देश्य था मिल्टन के समान महाकाव्य का प्रणयन। वह इसमें अधिकारच्युत टीटन और नवीन यवन देवताओं के संघर्ष का चित्र प्रस्तुत करना चाहता था। विशेषरूप से पुराने देवता हाइपैरियन का अपोलो द्वारा पदच्युत होना।

पर वह केवल इसका वर्णन करके ही संतुष्ट नहीं था, 'कलात्मकता' ही उसका उद्देश्य नहीं थी; प्रत्युत वह कुछ सत्कर्म करने का इच्छुक था। उसी के शब्दों में,

"मुझे और कोई उपयुक्त कार्य नहीं दिखलाई देता, सिवाय संसार का कुछ उपकार करने की भावना के।"

उसकी पूर्ण निष्ठा थी कि महान काव्य का विशिष्ट उद्देश्य होता है। यह धारणा हमें हाइपैरियन के रूपकार्थ की ओर ले जाती है—

रूपकमय महत्त्व—हाइपैरियन काव्य के अंतर्निहित सत्य तक सरलता से पहुँचा जा सकता है। ओसनस (वरुण देव) की वक्तृता में इसका संकेत है। इसका सार है—पुरानी व्यवस्था नये को जगह देती है—वही क्रान्तिकारी पुकार जिसने तत्कालीन अन्य कवियों को आन्दोलित किया था—

> **"अतएव, हमारी एड़ी के पीछे-पीछे होती गतिमय,**
> **एक नवल पूर्णता..........................."**

इस प्रगति का मूल है सौन्दर्य। जो सुन्दर है, वही शक्तिमय है—

> **...क्योंकि यही तो है नैसर्गिक शाश्वत नियम अटल,**
> **जोकि प्रथम सुन्दरता में है, बल में होगा प्रथम वही।**
> **हाँ, यह नियम चिरन्तन, जेताओं को भी तो कर सकता,**
> **शोकमग्न, अन्यान्य जाति से, जैसे यह हमको करता;**
>
> —हाइपैरियन : एक काव्यांश : १

इसमें इस तथ्य का संकेत भी है (जिसको उसने संशोधित हाइपैरियन में विकसित किया,) कि उच्च प्रभुता शान्तिपूर्वक और साहस के साथ सत्य का वह चाहे जितना वेदनामय क्यों न हो—सामना करने में है।

> **"......सकल नंगे सत्यों को सहना ही,**
> **और सामना करते जाना धीरज और शान्ति के साथ**
> **कठिन परिस्थितियों का, सचमुच प्रभुता का है चरम यही।"**

अन्य शब्दों में, अपनी उच्चतम सीमा पर सत्य, ज्ञान और वस्तुओं की साहस-पूर्ण स्वीकृति पर निर्भर करता है।

संशोधित हाइपैरियन (Recast of Hyperion)

प्रथम हाइपैरियन का अंतर्सत्य चाहे इतना स्पष्ट न हो, पर संशोधन में यह बिल्कुल साफ है। इसका शीर्षक था 'हाइपैरियन : एक स्वप्न,' इसमें संदेश है कि कवि के कार्य का औचित्य तभी है, जबकि उसके साथ मानवीय आवश्यकताएँ, और उसके प्रयत्न सन्नद्ध हों। इसी भाव से सम्पूर्ण 'संशोधन' ओतप्रोत है। इसका महत्त्व इस बात से और बढ़ जाता है कि यह कवि जीवन से निकटता से सम्बन्धित है।

स्वप्नदृष्टा के स्वप्न बताने का काम करने के बाद कवि अपने सामने आये स्वप्न के सम्बन्ध में खो जाता है। इस सपने में वह अपने आपको उपवन, फल, और मधुपान के बीच में पाता है। यह उपवन है प्रकृति-सौन्दर्य, जिसमें खोकर वह उल्लास की मदिरा चढ़ा रहा है। अमृतमयी मूर्च्छना से होश पाकर वह अपने आपको एक

निभृत मंदिर के फर्श पर पाता है। इसके ऊपर एक बेदी प्रतिष्ठित है। उसे ज्ञात होता है कि कोरी स्वप्निलताओं से उस तक पहुँचना साध्य नहीं है। इस तक वही चढ़ सकता है, जिसने दूसरों के दुखदर्दों को अपना बना लिया है, चाहे वह उनसे कम हो, जो पार्थिव कल्याण के लिये कार्य करते हैं—

"कोई नहीं छीन सकता इस ऊँचाई को," बोली छाया,
"सिर्फ वही, जिनको हैं इस जग की पीड़ाएँ
पीड़ा, और नहीं लेने देंगी आराम उन्हें वे।......"

कवि कीट्स के व्यक्तिगत जीवन पर इसे लागू करने पर पाते हैं कि इसमें कवि को इस बात का अहसास होता है कि वह सच्चे कवि-कर्म से विपथ हो गया है, और केवल प्राकृतिक सौन्दर्य्य और प्यार की रंगीनियों का ही उपासक रह गया है। उसने अब यह भली-भाँति जान लिया कि कविता पलायन नहीं है, प्रत्युत, वेदनाओं से संघर्ष है।

स्वप्न की इस व्याख्या से स्पष्ट है कि वह यदि कुछ और वर्ष जीवित रह पाता तो उसकी बुलंदी वही होती, जो शैक्सपीयर की है।

हाइपैरियन अधूरा क्यों रहा ?—हाइपैरियन को अधूरा ही छोड़ देने के कारणों पर कीट्स के अध्येताओं ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। स्वयं कीट्स इसका कारण 'अतिशय मिल्टनमयता' बताता है। पर ब्रिज, सैलिनकोर्ट जैसे विद्वानों का मत है कि इस का मूल कारण यह था कि हाइपैरियन की अंतर्कथा में कीट्स जैसे कलाकार के लिये आगे विकास करने की संभावना नहीं रही थी। साथ ही, युद्ध काव्य का विषय कोमल स्वभाव वाले कीट्स के लिये अनुकूल नहीं था। इसका कदाचित उसे स्वयं भी भान था—

तू दुर्बल ऐसे आलोड़न के गाने में:
तेरे अधरों को निस्संग दाह है प्यारा,
औ' एकान्त व्यथा से मिलता तुझे सहारा,

—हाइपैरियन : ३

इसका कारण, कीट्स की बीमारी, या आलोचकों के प्रहारों द्वारा प्रतिकृत नैराश्य, कदापि नहीं था—जैसा कि आरम्भ में अनुमान लगाया गया। कीट्स अपने आपका स्वयं बड़ा अच्छा आलोचक था। उसका स्वभाव दूसरों की आलोचना से हत-प्रभ होने का नहीं था।

यथार्थ बात यही थी कि "हाइपैरियन की कथावस्तु ने स्वयं अपने आपको जकड़ लिया था"। हाइपैरियन का, कीट्स के मत के अनुसार, पतन अनिवार्य था और उसकी जगह अपोलो को लेनी थी। पर अपोलो की अपेक्षा हाइपैरियन का व्यक्तित्व

अधिक सशक्त और सुन्दर चित्रित हुआ है। इसने भी कवि को आगे बढ़ने से उलझाया। कीट्स का मत—परिवर्तनता में विश्वास—जीतने वालों के साथ था किन्तु हाइपैरियन में सहानुभूति होती है शनि, और पराजित टीटनों के साथ। अतः इस द्वंद्व ने भी निष्ठावान और सतर्क कलाकार को आगे नहीं बढ़ने दिया। दुबारा जब उसने हाइ-पैरियन को उठाया, तो कवि का उद्देश्य कथा को आगे बढ़ाना नहीं था, प्रत्युत, उसको—उतने ही अंश को—अपने ज्ञान की तब तक की 'लब्धि को—नये रूप में—जो मिल्टनमयता से मुक्त था, और उसके उद्देश्य को स्पष्ट व्यक्त करता था—लिखा।

कुछ अन्य अधूरे काव्य—उपर्युक्त काव्यों के साथ, एक और काव्य 'द ईव ऑफ सैंट मार्क' (The Eve of St. Mark) का उल्लेख भी आवश्यक है। कथा के विकास की संतोषजनक अवस्था के पूर्व ही यह अधूरा रह गया है, तो भी इसका महत्त्व दो कारणों से है—

(१) इसकी चित्रमय प्रतिभा और कारुकारिता की मोहकता, और

(२) इसका भावी अंग्रेजी काव्य पर प्रभाव।

"कीटस ने इस पद्यांश में आधुनिक प्री-रैफेलाइट कवि-निकायों की परिपूर्ण मात्रा में पूर्व-कल्पना की है।" इसके अतिरिक्त, कीट्स के नाटक लिखने के अधूरे प्रयास के रूप में, ओथो (Otho) और 'किंग स्टीफेन' (King Stephan) के नाम स्मरणीय हैं।

कीट्स की प्रशस्तियाँ या सम्बोध-गीत (Odes)—निस्संदेह कीट्स की सर्वोत्कृष्ट काव्य प्रतिभा उसकी प्रशस्तियों में ही देखने को मिलती है। रौबर्ट ब्रिजेज़ के अनुसार, "अगर कीट्स हमें केवल अपनी प्रशस्तियाँ ही छोड़ गया होता, तो भी उसका दर्जा कवियों में किसी से नीचा न होता।" प्रो० सेलिनकोर्ट के शब्दों में, "प्रशस्तियों में कीट्स का कोई गुरु नहीं : और उनका अवर्णनीय सौन्दर्य इतना है, और उसकी आत्मा का निःस्रवण इतना स्पष्ट है कि उसका कोई शिष्य नहीं।"

इन प्रशस्तियों में छः का स्थान सबसे प्रथम पाँत में है। 'शरद के प्रति', 'यूनानी कथांकित-कलश के प्रति,' 'बुलबुल के प्रति', 'साइकी के प्रति', 'उदासी के प्रति' और 'आलस्य के प्रति' हैं।

शरद के प्रति (Ode to Autumn)—कीट्स की प्रशस्तियों में इस कविता का स्थान पूर्णता की दृष्टि से सर्वप्रथम है। इसके अन्दर विषय और तत्सम्बन्धी भावनाओं का अत्यंत सुगठित संग्रथन है। अंग्रेजी शरद का बड़ा सजीव और सम्पूर्ण चित्र है। इस चित्र को सम्पूर्ण बनाने में कीट्स ने भाषा के समस्त सौन्दर्य का प्रयोग किया है। यथार्थ और कल्पना का (सत्य और सुन्दर का) ऐसा मनोहारी सम्मिलन

है कि समस्त अंग्रेज़ी आलोचकों ने एक स्वर से इसकी मुक्त-कंठ-प्रशंसा की है; इसे 'अतीव शेक्सपियर-मय' बताया है। आलोचक मरे के अनुसार यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह पूर्ण कविता कितनी अधिक शेक्सपियर-मय है—अपने श्री पूर्ण, समृद्ध भाव की प्रशान्तता में शेक्सपियर-मय, अपने मोहक और गहरी और पूरी श्वास लेने के से दीर्घविध प्रवाह में यह शेक्सपियर-मय है।" आलोचक फौलर के शब्दों में, "आश्चर्यजनक चित्रों और श्रीमय, सुगम्भीर संगीत से भरी एक कविता। यह हमें शरद के आनन्द का, जीवन के और रूप व्यतीत होने का—'सुखद शारदीय खेतों' को निहारने में आये नयन में प्रच्छन्न आँसुओं के कण का बोध कराती है।"[1]

यूनानी कथांकित कलश के प्रति (Ode to Grecian Urn)—यह प्रशस्ति कीट्स के काव्य-लोक का अनुपम पुष्प है। इसमें जीवन दर्शन सम्बन्धी कीट्स के गहन विचारों का सार है। इस पर आगे विस्तार से विचार किया गया है।

बुलबुल के प्रति (Ode to Nightingale)—कीट्स की यह अति विख्यात और मर्मस्पर्शी प्रशस्ति है। प्रो० ऐल्टन (Prof. Elton) के शब्दों में, "रचना की दृष्टि से महानतम और आवेगयुक्त व्यंजना की विविधता की दृष्टि से कीट्स की सभी रचनाओं में समृद्धतम है।" मरे के अनुसार, "अंग्रेजी भाषा में इससे मोहक प्रशस्ति दूसरी नहीं। यह है निशीथ, विषाद और सौन्दर्य की कविता" दर्द भरे हृदय और अलस जड़ता से ग्रस्त होती हुई चेतना के बीच वह बुलबुल का गीत सुनता है। उस गीत का सुख उसे ऐसा आत्मविभोर कर देता है कि वह धरती की मर्त्य वेदना से छुटकारा पाने के लिये बुलबुल के देश उड़ जाने की, और उसके पल्लवगृह में खो जाने की कामना करता है। 'कविता के अलख परों पर चढ़कर वह विस्मृति और अमरता के प्रदेश में प्रवेश करता है, जहाँ बुलबुल अपना राग गा रही है, एक उष्ण धूमिलता उसके चारों ओर घिर गई है, जिसके भीतर उसे फूलों की सुरभि और ग्रीष्म साँझों पर मरमरण करते भ्रमरों का रव सुनाई दे रहा है। ऐसे सुख के बीच वह मरने की कामना करता है।

"और कभी की तुलना में, लगता है मरण प्रीतिकर,
बिना किसी पीड़ा के होना स्तब्ध निशीथ घड़ी भर,
जबकि ढाल अविराम रही तू आत्मा अपनी बाहर,
ऐसे बेसुधि में,..............................."

---

1. "A poem full of wonderful pictures and of a rich, solemn music. It leaves us with a sense of joy of autumn—the passing away of beauty and of life; the tears that come unbidden to the eye in gazing at the happy autumn fields."

—*Fowler*.

मर्त्यता के मलिन स्पर्श से ऊपर उठा देने वाली बुलबुल की अमर रागिनी के श्रवण के लिये वह समाधि की मिट्टी बन जाना चाहता है। उसकी चरम साध है। यह आत्म विभोरता उसकी कल्पना को दूर दूर ले जाती है। अब बुलबुल उसके लिये एक विहग-मात्र न होकर अमर राग का प्रतीक बन जाती है, जो चिरन्तन काल से गूंजता चला आ रहा है।

"तू जन्मी थी नहीं मृत्युहित, ओ, विहगिनि अविनश्वर !
क्षुधित काल भी आतुर रहा न कवलित करने तुझको,
बीती विभावरी में श्रवित हो रहा मुझको जो स्वर,
सुना पुरातन युग में राजा-रंक सभी ने इसको :—
शायद यही गीत था जिसके द्वारा व्यथित रूथ के
उर को मिली अपार सांत्वना, गृह-व्याकुलता जिसमें;
जब वह खड़ी विदेशी भू पर, भरे अश्रु लोचन में;
तेरा ही था गीत किये जिसने अभिमंत्रित प्रायः
वे जादुई गवाक्ष, खुल रहे, गर्जित और भयावह
धाड़ मारते महासिन्धुओं की हिल्लोलों पर के
फेनों के ऊपर, उन परियों के निर्जन देशों में।"

पर पार्थिव वेदना का स्मरण उसकी विभोरता को भग कर देता है। कल्पना की छलना टूट जाती है। कवि पुनः यथार्थ में लौट आता है।

इस प्रशस्ति के गठन में बड़ी सुघड़ाई है। अनेक मधुर उपवाक्यो की छटा है। मोहक संगीत है। चित्रों की भरमार है। बड़े बारीक, सजीव चित्र। अंतिम पंक्तियाँ बुलबुल की पलायित रागिनी का कैसा चलचित्र आँखों के सामने मूर्त्त करती है—

विदा ! विदा ! अब विलय हो चला करुण राग है तेरा
पार निकट की चरही के, अब पहुँच रहा है ऊपर
स्तब्ध स्रोत के; और चढ़ रहा है अब शैल पार्श्व पर :
और मंद-मंथर नीचे की ओर उतरता जाता,
अब अगली घाटी की हरित तली में गहन समाता :

इसके अतिरिक्त, 'झिल्ली-कृश', 'त्वरित-मलीन बनपशे', इत्यादि अनेक लघु चित्र भी हैं।

कीट्स की अन्य प्रशस्तियाँ भी ऐसे ही माधुर्य्यातिरेक, मर्मस्पर्शिता और सजीव चित्रों से भरपूर है। इन प्रशस्तियों के साथ कुछ और मुक्तक रचनाएँ भी असंदिग्ध रूप से स्मरणीय है। 'निर्मम सुन्दरी' (La belle Dame Sans mercie)

इनमें अति प्रसिद्ध है। इसमें रोमान का चरम है, जो बड़ी कलात्मक पूर्णता के साथ सरलता से अभिव्यक्त किया गया है। इसके अतिरिक्त, कुछ सॉनेटों का भी उल्लेख अनिवार्य है। आरंभिक सॉनेट्र 'चैपमैन' का पीछे जिक्र कर चुके हैं। 'ऐल्गिन मार-बिल्स' के दर्शन पर लिखा सॉनेट बड़ा ही भावपूर्ण है। इसी के साथ 'मैं क्यों हँसा ?', 'रजत विहंग', 'ख्याति' शीर्षक भी पठनीय हैं।

कविता के प्रति कीट्स का दृष्टिकोण—

कीट्स की रचनाओं के क्रमिक परिचय से हम उसके काव्योद्देश्य से परिचित हुए। उसके अनुसार काव्य का उद्देश्य मानव कल्याण है। मानव कल्याण का कार्य कविता तभी सम्पन्न कर सकती है, जब इसमें मानव-जीवन की सजीव अभिव्यक्ति हो। ऐसी अभिव्यक्ति तभी संभव हो सकती है, जब यह 'विशुद्ध' (Pure) हो। अन्य शब्दों में, यह कवि के अपने पूर्वाग्रहों (Pre-judices) और स्वीय भाव (Selfish-ness) से मुक्त हो। विशुद्ध कविता आकाशी या भाववादी (Idealist) नहीं होती, और न रहस्यमयी प्रहेलिकाओं का पुंज होता है। इसके विपरीत, यह अधिकाधिक बोधगम्य, प्रसादपूर्ण और जीवनानुभूति सम्पन्न होती है। आलोचक मिडिल्टन मरे के शब्दों में—**"विशुद्ध कवि सब कवियों में सर्वोच्च होता है, इसलिये नहीं कि वह अपना आनन किसी भाववाचक, और कल्पित पूर्णता में विलीन करने के लिये जीवन से दूर हटा लेता है, प्रत्युत; ठीक इसलिये कि वह किसी अन्य प्रकार के कवि की अपेक्षा, दृढ़ता से, अध्यवसाय से और अविमुखता के साथ जीवन को आत्म समर्पण करता है।"**[1]

—मि० मरे—कीट्स एण्ड शेक्सपियर।

विशुद्ध कविता वास्तविक (Real) होती है। ऊँची-से-ऊँची कल्पना की उड़ान का आधार सत्य (Truth) ही होता है। सत्यातीत कविता का रचयिता कोरा स्वप्न-दृष्टा होता है, और कविता के महान उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकता। सत्य से कल्पना का बैर नहीं है। कल्पनारहित सत्य कुत्सित वास्तव (Vulgar Realism) या यांत्रिक सत्य (Machanical Realism) कहलाता है। सत्य से हीन कल्पना कोरा स्वप्न है। कल्पना और सत्य का संयोग विशुद्ध कविता है। यह अपनी पूर्णस्थिति (Perfection) पर पहुँच कर मानव के लिये शिव बन जाती है, और अमर हो जाती है। इस स्थिति पर

1. "The pure poet is the highest of all poets, not because he turns his face away from life to devote himself to some abstract and ideal perfection but precisely because he, more than any other kind of poet, submits himself steadily, persistently and unflinchingly to life."

ही सुन्दर (कल्पना) और सत्य (वास्तव) एक रूप होते हैं। इस स्थिति तक आने के लिये बीच के पूर्वग्रह और विषमताओं की बाधाएँ (Disagreeables) उड़ती जाती हैं (Evoporation)।[1] यह कार्य विशुद्ध कवि अपनी अधिक-से-अधिक नि.स्व (Selfless) होने की प्रवृत्ति से ही कर सकता है। नि स्व होने की प्रवृत्ति की परिणति निषेधात्मक क्षमता (Negative Capability) के द्वारा हो सकती है। निषेधात्मक क्षमता से आशय स्वय कीट्स के शब्दो मे सुनिये—

"थोड़ी देर के लिये उद्वेग सुप्त हो जाते है, शरीर शान्त हो जाता है, तत्कालिक आग्रहों की क्रिया से विमुक्त मानस मानवी अनुभवों के क्षेत्र के ऊपर विशुद्ध भावप्रवण मुद्रा से सालस विचरण करता है। यह अवस्था अपनी पूर्णता में तभी आ सकती है, जबकि सहज व्यापकता की मंजिल पर, काव्यिक सत्य की वेदिका की उपलब्धि हो जाय।"[2]

इस प्रकार की स्थिति में सृजित काव्य विशुद्ध होगा, उसमे सहजता, हार्दिकता, और व्यापक प्रवाहमयता के गुण होंगे। यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक है कि इन मानवीय अनुभूतियों को कवि इद्रिय-बोध (Perception) द्वारा ग्रहण करता है। वह स्वप्न-दृश्य (Visions) के रूप में इन्हे देखता है, अपनी कविता में उतारता है। कीट्स के लिये कविता जीवन के इसी कल्पना-दृश्य की बाहरी अभिव्यक्ति है। इस प्रकार कीट्स कल्पना (Imagination) को काव्य का प्रमुख वाहक मानता है। यह कल्पना जिन सत्यों को पकड लेती है, वही सुन्दर बन जाते है। प्लेटो भी कवि के लिये कल्पना की यही भूमिका मानता है।

"कोई कवि बुद्धि से नहीं लिखता, प्रत्युत, प्रतिभा और प्रेरणा से।"

कीट्स भी ज्ञान पक्ष को काव्य सृजन के लिये दुर्बल मानता है, नीरस विचार कविता का प्रतिपाद्य नहीं। उसकी 'थ्रुश बोला यों मुझसे' की निम्न पंक्तियाँ देखिये—

"अरे, न भाग ज्ञान के पीछे, पास नहीं कुछ मेरे,
फिर भी मेरे गीत रहे ऊष्मा में मधुर पगे रे!"

---

1. "The excellence of every art is its intensity, capable of making all disagreeables evoporate, from their being in close relationship with Beauty and Truth"

—*Keats' Letter to George & Thomas Keats Dec. 21. 1817.*

2. "For a time the passion are asleep, the body is quiescent and the mind freed from the press of immediate demands, in a purely speculative mood indolently roams over the field of human experience. This state could come in its perfection only after the altar of poetic truth can be attained, at the stage of innate universality."

कीट्स के प्रसिद्ध उद्‌गार **'ओ, मुझे विचार की अपेक्षा संवेदन का जीवन मिले !'** के पीछे यही भाव है। काव्य रचना के लिये वह सवेदन (Sensation) की जिन्दगी माँगता है। प्रो० शेरप के शब्दों मे, **"विशुद्ध और स्वस्थ कवि-प्रकृति की सबसे पहली विशेषता यह है कि—यह मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय में मूलस्थ होती है।"**

कविता मे तर्क ज्ञान गौण है। इसकी सिद्धि कवि के लिये कल्पना को प्रशिक्षित करने मे है। कवि के ससार मे अंतर्निहित सत्यो का उद्‌घाटन तर्कज्ञान (Reasoning) की अपेक्षा सहज अन्तर्दृष्टि (Intuitive insight) से होता है। कीट्स के शब्दों मे—

"मै किसी सत्य के बारे में तब तक आश्वस्त नहीं हो सकता, जब तक कि इसके सौन्दर्य की स्पष्ट धारणा न हो जाये।"[1]

इस प्रकार, कीट्स कविता के क्षेत्र मे सृजनशील कल्पना (Creative imagination) पर जोर देता है।

बायरन के काव्य की आलोचना करते समय कीट्स इस बात को और स्पष्ट शब्दों में प्रकट करता है—

"बायरन जो कुछ देखता है, सिर्फ उसी का वर्णन करता है, मै उसका वर्णन करता हूँ जिसकी मैं कल्पना करता हूँ, मेरा कार्य कठिनतर है।"

अन्य शब्दों में, सिर्फ 'देखने' से ही जो सत्य प्रकटाया जाता है, वह यान्त्रिक सत्य है, और कल्पना से ग्रहीत सत्य हुआ काव्यिक वास्तव (Poetic realism)। अन्यत्र और भी स्पष्टता से इस तथ्य की व्याख्या करता है—

"सृजनशील (रचनात्मक) कल्पना की ऐसी ही शक्ति है, एक देखती हुई, जोड़ती हुई, संधि करती हुई शक्ति, जो पुराने को पकड़ लेती है, इसके तल के नीचे भेदती चली जाती है, वहाँ प्रसुप्त पड़े सत्य को अलग करती है, और फिर कलात्मक शक्ति और सौन्दर्य के सुघर रूपों में पुनः एक नूतन, एक पुनर्निर्मित विश्व की स्थापना करती है।"[2]

इस प्रकार, कीट्स के अनुसार एक महान कवि निःस्व होता है; अपने विधेय में अपने आपको लिप्त कर देता है; उसकी कविता मे कल्पना और वास्तव का सयोग

---

1. "I can never be sure of a truth except by a clear conception of its beauty."

2. "Such is the power of creative imagination, a seeing, reconciling, combining force that seizes the old, penetrates beneath its surface, disengages the truth lying slumbering there, and building afresh bodies forth anew a reconstructed universe on fair forms of artistic power and beauty."

होता है।

कवि की इस निःस्वीयावस्था (Selflessness) को ही कीट्स कविता की मुक्तावस्था कहता है। यह गुण विरल कवियों में ही पाया जाता है। कीट्स के अनुसार शेक्सपियर इसका आदर्श था। उसी के शब्दों में—

"शेक्सपियर का काव्य सामान्यतः पवन के समान स्वच्छन्द है, तत्वों की एक परिपूर्ण वस्तु है, सपर है, और मधुमय वर्णी है। कविता अवश्य विमुक्त होनी चाहिये।"

यह निःस्वीयता का गुण कीट्स के अन्य समकालीन कवियों में नहीं दिखाई देता। वर्ड्सवर्थ का प्रकृति के साथ अत्यंत लगाव है। वह मानव के साथ स्वतंत्र रूप से निःस्व नहीं होता। इसलिये प्रत्येक प्रकार के मानवीय चरित्र को सजीव उपस्थित करने की उसमें क्षमता नहीं है। कॉलरिज रहस्यवादी प्रदेश का विचरक है, उसके लिये भी हर पात्र के पीछे अपने आपको विलीन कर सजीव बनाने की क्षमता नहीं हैं। स्कॉट में भाववाद का नितान्त अभाव है। बायरन की सफलता 'बायरनी नायक' में ही विशेष है। अन्य चरित्रों के चित्रण में वह असफल रहता है। वह अपने जैसे पात्रों के साथ ही रमता है। चाइल्ड, हेरोल्ड मैनफ्रेड, लारा, कोटसेअर, डानजुआन, इसी के उदाहरण हैं। शेली आकाशीय संगीत का गायक है। पार्थिव मनुजों का ज्ञान उसके पास अल्प है। उसका चित्र वायवीयताओं में ही रमता है। उसका 'ऐडोनिस' कीट्स की मृत्यु पर लिखित शोकगीत है। पर वह इसमें कीट्स की विशिष्टता उभारने में असफल रहा है। कोई भी 'ऐडोनिस' माना जा सकता है। वास्तव में यदि देखा जाय, तो 'ऐडोनिस' की सर्वश्रेष्ठ पंक्तियाँ वही हैं, जिनमें शेली स्वयं अपना चित्रण करता है। इसका अर्थ यह है कि शेली के अन्दर कवि-चरित्र की निःस्वीयता नहीं है।[1]

वास्तव में, यह कवि स्वीय हैं। इनके अंदर हर प्रकार के पत्रों के साथ अपने आपको विलय करने वाली क्षमता नहीं है। इनके अन्दर का गायन इनकी अपनी

1. "As to the poetical character itself (I mean that sort of which, if I am anything, I am a member, that sort distinguished from the Wordsworthian or egostistical sublime; which is a thing per se and stand alone) it is not itself--it has no self—it is everything and nothing—it has no character—it enjoys light and shade; it lives in gusto, be it foul or fair, high or low, rich or poor, mean or elevated—it has as much delight in conceiving an Iago as an Imogen. What shocks the virtuous philosopher, delights the camelion poet. It does no harm from its relish of the dark side of things any more than from its taste for the bright one; because they both end in speculation. A poet is the most unpoetical of anything in existence; because he has no identity."

—*Keats*.

निजी वेदना है, जिसकी अभिव्यक्ति प्रगीतिमयता (Lyricism) में होती है। इनके वर्णनों में आत्मकथात्मकता (Autobiographicality) है। इसलिये इनमें से कोई नाटक-लेखन में सफल नहीं हो सका, क्योंकि नाटकीयता के लिये निःस्वता के गुण की गहरी अपेक्षा है, ताकि हर चरित्र को प्रकृत रूप में उभारा जा सके।

कीट्स के अन्दर, शेक्सपियर के सदृश, और अपने समकालीनों के विसदृश, प्रचुर निःस्वीयता थी। कीट्स यद्यपि नाटक नहीं लिख पाया, पर जो थोड़ा-बहुत अधूरा सृजन मिलता है, वह उसके अन्दर के महान् नाटककार का परिचय देता है। उसके बड़े-बड़े काव्यों में वर्णनात्मकता का बड़ा सफल निर्वाह हुआ है। वह अपने पात्रों के साथ सरलता से एकात्म हो जाता है। शेली जहाँ अपने काव्य के हर चरित्र में स्वयं की ही बात कहता है, वहाँ कीट्स अपने पात्र को अपने आवेश के आग्रह से नहीं बाँधता। उसकी कविता अधिकाधिक मुक्ति की ओर प्रवृत्त हो रही है। ऐसी ही मुक्तावस्था को वह बड़े विश्वास के साथ 'सर्वोत्कृष्ट काव्य रचना की अवस्था' कहता है।

अपने निःस्वीयता के गुण से वह कल्पना और सत्य का पूर्ण संयोग करने में सफल होता है। 'यूनानी कथांकित कलश के प्रति' (Ode to Grecian Urn) इसका सर्वोत्तम प्रमाण है। यह विशुद्ध काव्य का श्रेष्ठ उदाहरण है। सत्यं, शिवं, सुन्दरं, के काव्य सिद्धान्त का मूर्तिमान प्रतीक है। इसको लेकर कीट्स के काव्यशास्त्र (Poetics) की सफल विवेचना हो सकती है।

कीट्स ने जब 'ऐल्गिन मारबिल्स' में 'कलश' के कई नमूने देखे, तो वह जैसे मंत्रमुग्ध हो गया। हेडन ने उसकी इस अवस्था का चित्र खींचा है। प्राचीन यवनीय कलाकृति के सम्मोहन में वह इतना खो गया कि उसे अपने तन-बदन की सुधि न रही। वह संगमरमर में उत्कीर्णित आकृतियों के तथ्य को नहीं देख रहा था, प्रत्युत, उसके लचीले कल्पना-पट पर प्राचीन यूनानी-जीवन का सत्य मूर्त्त हो रहा था। इस सम्मोहन की स्थिति में— जब उसके कवि का सूक्ष्म रागबोध उस 'अश्रवित' संगीत को सुन रहा था—बीच के सभी वैषम्य (Disagreeables) विलुप्त हो रहे थे। जब यही भाव कविता में व्यंजित हुआ, (तब इसका आधार केवल एक पात्र विशेष ही नहीं था, वरन, कविता के 'कलश' में अनेक कलशों के सत्य समाहित थे) तब वह उसके लिये सत्यं, शिवं, सुन्दरं का प्रतीक रूप हो उठा, जिसके बाद कुछ जानने की आकांक्षा नहीं रहती—

तू ही होगा मित्र मनुज का तब भी; जिसे सुनाता,
"सुन्दर ही है सत्य, सत्य सुन्दर" यह ही जगतीतल
पर है तुमको ज्ञात, ज्ञेय है चरम तुम्हें यह केवल।

काव्य की स्वयसिद्धियाँ (Axioms of Poetry)—अपने पत्रों में कीट्स ने विशुद्ध काव्य की चिन्तना के प्रसंग में काव्य की कुछ स्वयसिद्धियाँ निर्धारित की है। इन स्वयसिद्धियों से आशय कविता के उन गुणतत्वो से है, जिनका उसमें होना अनिवार्य है। इनके बिना वह अच्छी कविता नही हो सकती, और न अपने काव्योद्देश्य में सफलता पा सकती है। कीट्स के काव्य मे इन स्वयसिद्ध तत्त्वो का प्रचुर अस्तित्व है। यह स्वयसिद्धियाँ इस प्रकार है—

(१) **काव्य को उत्कृष्ट अतिरेक से, न कि विलक्षणता से, विस्मित करना चाहिये, यह पाठक को अपने ही उच्चतम विचार प्रतीत होने चाहियें, लगभग एक स्मरण के सदृश।"[1]**

इस कथन से कीट्स का आशय यह है कि कविता पढ़ते समय पाठक का मन 'उत्कृष्टता की प्रचुरता' में रम जाय; वह कविता में अनुपम सौन्दर्य की छवि देखे, न कि कवि के अपने पूर्वग्रह या विलक्षणता (Singularity) की अभिव्यक्ति को। यह विलक्षणता या एकाकिता ही वास्तव में स्वीयता है। इससे प्रेषणीयता सीमित होती है। कविता के रस-प्रवाह में विकृति आती है। इसके आधिक्य से कविता प्रकाश न बन कर, प्रचार बन जाती है। इसीलिये कीट्स कवि चरित्र की नि.स्व भावना पर जोर देता है, ताकि कविता अधिक-से-अधिक सुन्दर और सत्य की पूर्ण अभिव्यक्ति की ओर अग्रसर हो।

यह 'उत्कृष्टता का प्राचुर्य्य' कवि ऐन्द्रिक सौन्दर्य के सृजन से अपनी कविता में उत्पन्न कर सकता है। कवि पाठक की प्रत्येक इन्द्रिय को मधुपूरित करने के लिये अपनी कविता में ऐसे तृप्तिदायक गुणों का अभिवर्द्धन कर सकता है। वर्ण, गंध, ध्वनि, स्वाद और स्पर्श से कविता को सज्जित करने से उसकी कविता रसमय होगी, और पाठक भी कवि के समान सौन्दर्य रस का पान कर सकेगा।

इन ऐन्द्रिक छवियों के अंकन के लिये कवि को विशेष रूप से निष्णात होना पडेगा। उसे संकेतात्मकता (Suggestibility) का आश्रय लेना चाहिये, ताकि पाठक स्वय भी अपने को सृजन के आनन्द में हिस्सा दे सके। कवि को गहनता (Intensity) की कला जितनी आयेगी, उतनी ही उसकी प्रेषणीयता सफल होगी। दक्ष कलाकार केन्द्रिकता (Concentration) के विषय में बड़ा सजग होता है। यह अच्छी कविता का प्रभाव बहुत बढा देता है। गहनता का अर्थ है विस्तार (Details) को हटाकर,

---

"The poetry should surprize by a fine excess, and not by singularity, it should strike the reader as a wording of his own highest thoughts, appear almost a rememberance."

आवश्यक तत्त्वों को इस प्रकार संयोजित करना कि उनकी प्रभावोत्पादकता अधिकाधिक हो जाए। शेक्सपियर के अन्दर यह गुण पर्याप्त मात्रा में मिलता है। कीट्स भी इस कला में खूब दक्ष है। उसकी आरम्भिक और अंत की कविताओं की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि कीट्स इस गुण की शक्ति की ओर निरन्तर सजग होता गया। उसकी इस विशेषता की प्रसिद्ध कवि रॉबर्ट ब्रिजेज और आलोचक ब्रेडले ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है, मिडिल्टन मरे के ये शब्द इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं—

"उसकी कविता, अनेक अन्य गुणों के अतिरिक्त, एक महान गुण से सम्पन्न थी, वह था एक ही बिन्दु पर भाषा के समस्त सुदूर उपकरणों को एकत्रित कर देना, ताकि एक ही, और बाह्यतः निष्प्रयास अभिव्यक्ति सौन्दर्यात्मक कल्पना को ऐसे क्षण में आनन्दित करती है, जबकि यह सर्वाधिक आशान्वित और आतुर होता है, और साथ ही साथ यह बुद्धि को सत्य के एक नये पहलू से आश्चर्यचकित करती है।"[1]

कीट्स की गहन अभिव्यक्ति के कुछ उदाहरण—

तेरा ही था गीत किये जिसने अभिमन्त्रित प्रायः
वे जादुई गवाक्ष, खुल रहे, गर्जित और भयावह
धाड़ मारते महासिंधुओं की हिल्लोलों पर के
फेनों के ऊपर, उन परियों के निर्जन देशों में।

—बुलबुल के प्रति।

उच्च और त्रय-चापित एक गवाक्ष वहाँ था, जो ग्रंथित—
दूर्वा के गुच्छों से, और फलों-फूलों के शिल्पांकित
चित्रों के हारों से सज्जित, औ' प्राचीन प्रणाली के
शीशों से था हीरक-विजड़ित, जो थे अगणित झलकाते
धब्बे, उज्ज्वल वर्ण छटाएँ, जैसे चीत-पंतिगे के
हों गहरे चितकबरे पर; औ' बीचों-बीच झरोखे के
सजी हुई थी ढाल, बने अस्त्रों के जिस पर लाल निशान,
राजा रानी के शोणित की सलज दे रहे थे पहचान,

---

1. "His poetry, besides many other qualities possesses one great quality, the power of concentrating all the far-reaching resources of language on one point, so that a single and apparently effortless expression rejoices the aesthetic imagination at the moment when it is most expectant and exacting and at the same time astonishes the intellect with a new aspect of the truth."

जिसके चारों ओर अस्त्र-शस्त्रों के धूमिल चित्र विचित्र,
मंद ज्योति में दर्शित होते थे, संतों के चित्र पवित्र।

—देवि एग्निस की संध्या २४।

'ऐल्गिन मार्बल्स' की अन्तिम पंक्तियाँ—

ऐसे धूमिल-चिंतित गौरव मानस के हैं प्रसरित करते
चारों ओर हृदय के एक अवर्णनीय द्वंद्व की माया;
सो ये विस्मय भी तो अतिशय, चकराती पीड़ा भर देते
जो कि घोलती है यूनानी गौरवाभ में क्षयशः काया
पुराचीन काल की—उच्च आलोड़ित लहराते सागर के
साथ सूर्य को, जो कि बनाता एक विराटाकृति की छाया।

—ऐल्गिन मार्बल्स के दर्शन पर सॉनेट।

ऐन्द्रिक छवियों के सृजन में तो कीट्स अद्वितीय है। यहाँ उसकी कविता से कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे—

वर्ण—

वह थी उज्ज्वलवर्णा, ग्रन्थि-स्वरूपा, सेन्दुर-बिन्दु, स्वर्णमय,
हरित नील ; जेब्रा-सी धारी वाली काया थी चित्तकमय,
लगती एक तेन्दुए-सी थी, मयूराक्षिणी थी; उसका तन
भरा चमकती रेखाओं से, चाँदी के चन्दे थे अनगिन,
जो उसके उच्छ्वास खींचने से ही, या तो वे घुल जाते,
अथवा और मृदुल स्पन्दन से, तरल चमकती लहर उठाते,
अथवा हार समान गुँथ रहीं, उनकी चमकीली रेखाएँ
एक दूसरे से विषाद के चित्रित पटलों से, आभाएँ—
ऐसी ही थीं सुरधनु-पार्श्ववत,..........................

—लेमिया।

गंध—

खिले कौन से कुसुम भूमि पर, मैं न देख सकता हूँ,
या मृदु गंध कौन-सी कुंजों पर होती है दोलित :
पर सुरभित तम में प्रत्येक मधुरता का करता हूँ
मैं आभास कि जिससे करता है शृंगार-सुशोभित
ऋतुवर दूर्वा, वीथि, वनैली तरुपाँतें फलवाली;

धवल श्वेत जूही, वन्या-गोचर माधवी लताएँ;
त्वरित मलीन बनफ़शे, जो पर्णों में छिपते जायें।
अर्द्ध 'मई' की मधु ऋतु का, ज्येष्ठतम पुत्र वह सुन्दर
कस्तूरी गुलाब, नीहारिल मदिरा से भर-भर कर,
करता है विकीर्णित अपनी मादक सुरभि निराली;
औ' मधु-मक्षिक दल का विहरण ग्रीष्म-साँझ के ऊपर :

—बुलबुल।

स्पर्श—

....निज संध्या-पूजा कर शेष,
मोती की लड़ियों से मुक्त कर रही अपने कोमल केश:
एक एक कर खोल रही है, अपनी मणियाँ भरकीली,
और कर रही अपनी महक-भरी रेशम चोली ढीली:
सरक सरसरित चले जानु पर, धीरे-धीरे भव्य-वसन:

—देवि एग्निस की संध्या।

स्वाद—

जबकि कक्षिका के भीतर से, वह लाया भर-भर कर ढेर,
शकर-पगी लौकी, श्री-फल, मधुसिक्त सेब, अमृतमय बेर,
मक्खन दार दही से चिकनी, चटनी रक्खी विविध प्रकार,
तेजपात-रससिक्त चमकते शरबत, बड़े जायकेदार :

—देवि एग्निस : ३०।

ध्वनि—

तब सरिता के सरपत में सशोक भन-भनकर अविरल
एक करुण सहराग उठाते, मच्छर भिनगों के दल,
जो कि मृदुल समीर के सँग चढ़ता, अथवा गिर जाता,
ज्यों इसका प्रवाह जीता है, अथवा यह मर जाता;
मिमियाते हैं पूर्ण-पुषित मेमने शैल सरिता से,
झाऊ झींगुर के झंकृत-स्वर : बगिया की क्यारी से,
कोमल मंथर उठती है अब ललमुनियों की सीटी,
औ' मँडराती हुई लवायें नभ में करतीं टीं-टीं।

—शरद के प्रति।

हैज़लिट ने उसकी आरम्भिक कविताएँ पढ़कर अपनी सम्मति दी थी :

"उसने कल्पना की सुकोमलता, सुन्दरता, मौलिकता और मनोरमता का चरमान्त रूप प्रदर्शित किया; जो कुछ चाहता था वह थी पुरुष शक्ति और साहस, भावना और व्यंजना से विलक्षणता के उद्दीपक-तत्वों को अस्वीकार करने के लिये ।"

कीट्स के पत्रों से स्पष्ट है कि वह इन तत्वों के प्रति बड़ा चौकन्ना था । बाद की कविताएँ इन दोषों से सर्वथा मुक्त होती गईं ।

स्मरण का गुण (Rememberance)—इस स्वयंसिद्धि का दूसरा पहलू भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है । कविता पाठक को ऐसी लगे जैसे वह अपने ही उच्चतम विचारों की सहज स्मृति है । अर्थात, पाठक और कविता के बीच में कोई ऐसा व्यवधान न हो, जो उसके राग-रस का आनंद लेने में बाधक हो । अन्य शब्दों में, कविता में कृत्रिमता नहीं होनी चाहिये । इसके विपरीत, हार्दिक (Spontaneous) होनी चाहिये । हृदय के आवेश से सम्पन्न कविता ही हार्दिक होगी । ज्ञान की बोझिलता, या अध्ययन की शुष्कता, या आग्रह से युक्त (स्वीय) कविता में उस व्यापक सरसता का अभाव होगा, जो कविता को विशुद्ध कविता बनाती है, और पाठक के अंतर में सहज उतर जाती है । हार्दिकता से रहित कविता तड़क-भड़क वाली हो सकती है, पर उसका प्रभाव अति अस्थायी और सीमित होगा । वास्तव में, अकृत्रिम, हार्दिक कविता ही स्थायी रसदायिनी है ।

इस कसौटी पर कीट्स का काव्य अधिकांशतः खरा उतरता है । मिल्टन के प्रति उसका अस्वीकारी भाव इसी गुण के आग्रह के कारण है । शेक्सपियर के काव्य का मूलमंत्र यही सहज हार्दिकता या स्वाभाविकता है, जिसके प्रति कीट्स का अपरिमेय आकर्षण है । इस सम्बन्ध में विद्वान आलोचक श्री मिडिल्टन मरे का कथन उद्धरणीय है—

"वास्तव में कीट्स का महानतम काव्य, जैसी कि उसकी कामना थी, सम्पूर्ण अस्तित्व का हार्दिक अभिव्यंजन ही था, और उसी कारण वही अकेला अंग्रेजी काव्य है, जो वास्तविक रूप में शेक्सपियर के समान है ।"

—मि० मरे ; कीट्स एण्ड शेक्सपियर ।

काव्य में सहज हार्दिकता तभी आ सकती है, जब कवि निस्व होगा ।

(२) **सौन्दर्य का स्पर्श**—कीट्स की काव्य-सम्बन्धी दूसरी स्वयंसिद्धि इस प्रकार है—

"इसके सौन्दर्य के स्पर्श, कभी भी अधूरे नहीं होने चाहियें, इससे तो पाठक का, बजाय तृप्ति के, दम-सा घुटने लगेगा । शब्द-चित्र के उदय, चढ़ाव और अस्त को

सूरज के समान उसके ऊपर चमकना चाहिये और मृदुलता से अस्त हो जाना चाहिये, अस्त होते-होते भी उसको सांध्य-ज्योति के विलास में गरिमामय विलय कर देना चाहिये।"[1]

कविता के पढ़ने में तभी आनन्द आता है, जब वह सौन्दर्य के स्पर्श से भरपूर हो। इसके लिये चुनी हुई काव्य-शब्दावली (Poetic Diction) और शब्दों के सर्म का सफल ज्ञान होना आवश्यक है। सहज, सरल और प्रभावकारी शब्दावली काव्यानंद के वर्द्धन में महत्त्वपूर्ण होती है। यदि शब्दावली काव्य की ऊपरी सज्जा है, तो निश्चय ही विचार और अनुभूति की गहनता (Intensity) उसकी आत्मा है। गहनता के अभाव में शब्दावली सौन्दर्य को नहीं प्रकटा पायेगी। शब्दावली चाहे दोषपूर्ण भी हो, पर यदि उसमें गहनता है, तो निर्दोष शब्द-सज्जा युक्त, पर गहनता-विहीन काव्य की अपेक्षा अधिक रसयुक्त होगी। कीट्स शब्दों के चुनाव में बड़ा कुशल है, पर टैनीसन और भी कुशल, पर टैनीसन के काव्य में इतनी गहनता नहीं आ पाई, जितनी कीट्स में है, इसीलिये उसके काव्य में इतना रस नहीं। स्वयं कीट्स की 'शरद' और 'बुलबुल' की प्रशस्तियों की तुलना कीजिये। पहली प्रशस्ति निर्दोषिता की दृष्टि से अद्वितीय है, दूसरी में अनेक दोष हैं, पर इसमें प्रथम की अपेक्षा अधिक गहनता है, भावों की भी और अनुभूतियों की भी, इसलिये यह अतिशय मार्मिक है।

सौन्दर्य के स्पर्शों को पूर्ण बनाने के लिये शब्द-चित्र (Imagery) का प्रयोग भी हार्दिक और अटल (Inevitable) होना चाहिये।[2] कीट्स ने इसकी तुलना सूर्य से की है। सूर्य स्वाभाविक रूप से उदय होता, चढ़ता हुआ, आहिस्ते से अस्त हो जाता है। पर अस्त होते हुए भी जगत को अपनी ललाई की छवि में नहला देता है। इसी प्रकार, शब्द-चित्र के सूर्य को भी काव्य के क्षितिज पर स्वाभाविक रूप से उदय होना, चढ़ना, तथा अस्त होना चाहिये। पाठक के मन में कहीं भी अशोभनता न जगे। उसकी भाव-रम्यता में कहीं भी अकुलाहट न पैदा हो। काव्यिक प्रशान्ति का दुकुल कहीं भी तनिक-सा भी छिन्न न हो। जब जाये, तो भी सौन्दर्य का स्पर्श

---

1. "Its touches of beauty should never be halfway, thereby, making the reader breathless, instead of content. The rise and the progress, the setting of imagery should like the sun, shine over him and set soberly, although in magnificance, leaving him in the luxury of twilight."

2. If the poet is spontaneous and inavitable, with the intensity of emotion which underlies everybody's subconsciousness, the poet can raise that emotion up to the reader's threshhold of consciousness and make him share the beauty and truth in the poem."

—*Takaisi Saito.*

छोड़ता जाय। कीट्स के शब्द-चित्र ऐसे ही हैं। सर्वत्र ऐसी ही शब्द-चित्रमयता के दर्शन होते हैं। ऐसे शब्द-चित्रों की रचना के लिये, हार्दिकता की अभिव्यक्ति के लिये, 'प्रभविष्णु भाषा' (Potential Speech) की अपेक्षा होती है। इस प्रकार की भाषा में दो-चार कूचियों से ही विराट-चित्र की विहग-प्रस्तुति हो जाती है। इसमें उन बारीकियों या विस्तार (Details) का अंकन परिधि से बाहर हो जाता है, जिनमें रोज़ैटी आदि प्री-रेफेलाइट कवियों ने रस लिया था। कीट्स यद्यपि दोनों प्रकार के चित्रांकन में कुशल था, बारीक में भी और गहन में भी, पर उसने गहन पर अधिक जोर दिया था। इसके पास उसके उपयुक्त शक्ति-गर्भित प्रभविष्णु भाषा थी।[1] इसीलिये उसका काव्य कल्पित शब्द चित्रों से बड़ा श्री-सम्पन्न है। इस दिशा में वह बहुत दक्ष और ऊँचे स्तर का कवि है।

उसके चित्रांकन के अनगिन उदाहरण उसकी कविता में फैले पड़े हैं, एक से एक विमोहक और सौन्दर्यपूर्ण—कुछ देखिये—

"या जैसे कार्तेज बली ने, गृद्ध सदृश दृगों से जब,
देखा था प्रशान्त सागर को—औ' उसके सब संगी नर—
एक दूसरे को तकते थे, हो अतीव विस्मय से सब—
स्तम्भित, स्तब्ध, खड़े हो डेरियेन की चोटी पर।

—चैपमैन-सॉनेट।

वायवी हर्ष का मूर्त्त चित्र—

और हर्ष के, कर जिसका सदैव अधरों पर रहता है,
देते विदा......................................"

शरद का मनुष्य रूप में चित्र कैसा अनूठा है!

"......बैठे अल्हड़ता से खलियान-फर्श पर,
तेरे कोमल कुन्तल अलसित लहराते रह-रहकर,
ओसाती बयार में: अथवा अध-काटी क्यारी पर
सोते गहरी सुख-निंदिया में, पोस्त सुरभि से तंद्रित,
जबकि दराँती तेरी अगला लॉक, और संवर्त्तित
पुष्प बचा जाती सब... ...."

—शरद के प्रति।

कविता का यह चित्र—

---

1. "Keats is surely one of the greatest masters of Potential speech full of concentration and suggestion who load every rift of their subject with ore." —*Saito.*

यह है शक्ति अर्द्ध-शायित अपनी दक्षिणी बाहु के ऊपर
—निंदिया और कविता।

और जीवन

किसी रूपसी का यह हौले-हौले उठता अवगुण्ठन;
जीवन एक कपोत जो कि निर्मेघ ग्रीष्म की बयार में;
मस्त विभोर मगन, अपनी नभ चारी क्रीडा-विहार में;
जीवन अल्हड़-छात्र, न जिसको कोई दुःख या दुश्चिन्ता,
चढ़ा हुआ 'ऐल्म' के वसंती वृन्तों पर खिल-खिल हँसता।

—वही।

संत ऐग्निस की संध्या का वातावरण कीट्स की तूलिका से कैसा सजीव हो उठा है, पढ़ते समय पाठक के मन में भी शीत की सिहरन दौड़ जाती है—

देवि एग्निस की संध्या थी—आह ! कड़कता शीत कठोर :
हिम तुषार में जाम हो रहे थे, उलूक-खग के पर-छोर :
जमे दूर्वासन पर लँगड़ाता चलता कम्पित खरगोश :
ऊनी परतों वाली भेड़ों के दल थे बिल्कुल खामोश :
मरियम-चित्र समीप खड़े, बूढ़े की उँगलियों के पोर,
माला के मनके गिनते हो आये थे अब सुन्न कठोर :
और जबकि घनतर होता तुषार में उसका श्वासोच्छ्वास,
बिन टूटे, उड़ता जाता था अंतरिक्ष की ओर अयास :
मानो किसी पुरातन धूपदान से लेकर अंगड़ाई,
पावन धूम्रशिखा सौ-सौ बल खाती चढ़ती इठलाई।

—देवि एग्निस।

हाइपैरियन में भीमाकार 'ऐन्सीलैडस' के मुख से व्यंजन इस प्रकार फूट रहे हैं—

ज्यों मूँगे की चट्टानों की उन अध-पटी दरारों से
चिड़-चिड़ करती हुई तरंगें पंथ पा रही हों तत्काल।

—हाइपैरियन-२।

हाइपैरियन में पतित शनि का बड़ा मार्मिक चित्र है। पूरा काव्य शब्द चित्रों की विपुल राशि से सम्पन्न हैं। वास्तव में कीट्स के काव्य-लोक में पग-पग पर चित्रों की सजावट है।

(३) **प्रेरणा की मौलिकता** (Genuiness of Inspiration)—कीट्स के अनुसार काव्य की तीसरी स्वयंसिद्ध प्रेरणा की मौलिकता है।

कविता की रचना विशुद्ध प्रेरणा की स्थिति में होनी चाहिये। उसके अनुसार, **"यदि कविता ऐसे सहज रूप से नहीं आती जैसे पेड़ों से पत्तियाँ, तो इसका न आना ही बेहतर था।"**[1]

इस अवस्था का अभाव भी एक कारण था कि स्वयं कीट्स ने अपनी अनेक रचनाओं को अपूर्ण छोड़ दिया। 'ओड टु मेया,' 'द ईव ऑफ सैण्ट मार्क', 'हाइपैरियन' जैसे रचनाएँ अधूरी रह गईं। इन सबका आरम्भ बड़ी असाधारण चमत्कारिकता के साथ हुआ था। इनकी आरम्भिक पंक्तियाँ बड़ी मोहक हैं। परिस्थितियों वश उसकी सहज प्रेरणा की स्थिति बदल गई; उसने अपने आपको विवश नहीं किया, क्योंकि वह ऐसी स्थिति में कविता लिखने का पक्षपाती नहीं था, जबकि कविता की रचना के लिये कोई स्वाभाविक प्रेरणा न हो।

भाषा—कीट्स की भाषा बड़ी श्री-समृद्ध और मोहक है। उसमें व्यापक चित्रमय कल्पना जगाने वाले शब्दों की प्रचुरता है। इससे उसकी व्यंजना बड़ी प्रभावकारी और हार्दिक हो जाती है। अपने भावों को प्रसादपूर्ण मोहिनी भाषा का आवरण पहनाने में वह शेक्सपियर के ही समकक्ष है। उसे सुन्दर वाक्यों और उप-वाक्यों से बड़ा मोह है। उसके उपवाक्य न केवल सौन्दर्य की अभिव्यंजना ही करते हैं, प्रत्युत, सुन्दरता के पुनर्सृजक (Recreator of Beauty) भी हैं। कीट्स की भाषा में अंग्रेजी भाषा की समस्त मोहिनी का निचोड़ है। वह दुरूह लैटिनमय अंग्रेजी का पक्षपाती नहीं था। सरल लोकभाषा से स्पर्शित अंग्रेजी उसे प्रिय थी। इसीलिये मिल्टन की अपेक्षा वह चैटरटन को पसंद करता था। अपनी कविता में अभिव्यंजना के बढ़ाने के लिये नये-नये उपवाक्य गढ़े, पुरानों की काट-छाँट तराश की, नये संगीत की तह चढ़ाई, पर यह सब उसने सरल अंग्रेजी भाषा से ही गढ़ा। इसीलिये उसकी भाषा प्राणवंत है।

कीट्स और प्रकृति—प्राचीन यूनानियों का विश्वास था कि यदि कोई मनुष्य किसी 'निम्फ' (परी) के दर्शन कर ले, तो उसे जीवन भर आराम नहीं मिलता। ऐसे मनुष्य को वे 'निम्फोलेप्ट' कहते थे। कीट्स भी यथार्थतः एक ऐसा ही 'निम्फोलेप्ट' था। पर उसकी निम्फ 'वन-परी' न होकर, सौन्दर्य की आत्मा थी, जिसका उसने मूर्त्त रूप देख लिया था और जीवन भर विकल रहा। इस सौन्दर्य की देवि की छवि उसने कपूरी पर्वतों पर, हरियाली चरहियों पर, अनगिन वर्णी कुसुमों की चित्तियों वाला दुकूल पहने शैलिनियों पर देखी थी। झरनों की टलमल में इसका

---

[1] "If poetry comes not as naturally as the leaves to a tree, it had better not come at all."

संगीत सुना था। इसकी मादकता ने वासंतिक समीरणों में बुलावा भेजा था।

प्रकृति के सौन्दर्य को जकड़ने को वह अतिशय आतुर था। उसकी कल्पना की तूलिका त्वरित वेग से ऐसे-ऐसे सूक्ष्म प्राकृतिक आलोकनों का अंकन करती थी कि कविता के बीच जड़े हुए चिरकाल के सौन्दर्य सृजक बन गये हैं। कैसे थे उसके कान जो—

> **"एक लघु निस्वन स्वन पर्णों के बीच,**
> **शान्ति की ही उच्छ्वसित श्वास से जात"**

को भी सुन सकते थे ! कैसी थीं सूक्ष्म उसकी इंन्द्रियाँ जो सुरभित तम में गहराई से विभिन्न सौरभों का अनुभव कर लेतीं थीं—

> **"पर सुरभित तम में प्रत्येक मधुरता का करता हूँ**
> **मैं आभास कि जिससे करता है शृंगार-सुशोभित**
> **ऋतुवर दूर्वा, वीथि, वनैली तरुपाँतें फलवाली :"**

—बुलबुल।

कस्तूरी पाटल की 'शान्तिदायिनी शीतलता' और

> **"... मध्य स्तब्ध व शीतल-मूलित**
> **सुमन, सुगन्धित दृगमय, नीलवर्ण रजतोज्ज्वल**
> **फुल्ल, नील-लोहित, प्रसून........"**

—साइकी।

का भी उसको ही ज्ञान था।

ऐसा चित्रण केवल 'देखने' से ही संभव नहीं। बायरन से उसे शिकायत है कि वह केवल देखता भर है, पर लिखता ऐसे है मानो कल्पना कर रहा हो। कल्पना-रस के अभाव में बायरन का प्रकृति-वर्णन निर्जीव है। उसकी सार्थकता बायरन के लिये मानवीय दुर्द्धर्ष कार्यों की पटलिका बनने में ही है। वर्ड्सवर्थ प्रकृति को नीति के आगार रूप में देखता है और उसमें अपनी आत्मा की भाषा पढ़ता है। शेली उसके दृश्य-विधान को अवास्तव विश्व अथवा मानवता के उज्ज्वलतर भविष्य की भविष्यवाणी के लिये प्रतीकात्मक रूप में देखता है। इन सबके विपरीत, कीट्स का दृष्टिकोण विषयीगत है। उसके लिये प्रकृति के चित्र स्वयं अपने में महत्त्वपूर्ण हैं। उनका अपना रस है, जो मानविक इंद्रियों को तृप्त करता है।

प्रकृति के ऐसे आनन्द ही आरम्भ में उसकी कविता की प्रेरणा बनते हैं, जिसका वर्णन उसने **'मैं पंजे के बल खड़ा शैलिनी के ऊपर'** में, तथा **'निंदिया और कविता'** में किया है।

कीट्स और यवनवाद (Hellenism)—प्राचीन यूनानी संस्कृति के प्रति

कीट्स को बड़ा मोह था। यद्यपि शेली के समान न वह ग्रीक भाषा का जानकार ही था, न ग्रीक साहित्य और दर्शन से अधिक प्रत्यक्ष परिचय था। तब भी, स्वयं शेली के शब्दों में वह एक यवन था (He was a greek !)। उसने यवनवाद के मूल तत्त्वों को अपनी आत्मा में बसा लिया था। यह तत्त्व थे जीवन और पार्थिवता के प्रति आस्था, ऐन्द्रिक सौन्दर्य का रस पान, प्रकृति के विविध रूपों की मोहकता में रमण। संक्षेप में, उस सब सौन्दर्य से जिससे कि प्राचीन यवन जाति ओतप्रोत थी, उसने अपने को विलीन कर दिया था। न केवल उसमें वह विलीन ही हो गया था, प्रत्युत, उसने उसकी अपने काव्यों में—एण्डिमियन, हाइपैरियन, लेमिया इत्यादि में—पुनर्सर्जना की। पर वह यूनानी जीवन के उस अस्वास्थ्य को नहीं स्वीकारता था, जिसने यूनानी सभ्यता को विश्रृंखलित किया—जैसे, दास सभ्यता, अप्रकृत कामुकता इत्यादि। वह १९वीं सदी का अंग्रेज जो था !

यूनानी जीवन का परिचय उसने बचपन में ही पाया—दंत-कथाओं के अध्ययन से। बाद में हैडन की सहायता से 'ऐल्गिन मारबिल्स' के दर्शन और अध्ययन ने यवनीय वास्तु, कला के सूक्ष्म सौन्दर्य को उसके हृदय पर गहरा अंकित कर दिया। उसके काव्य-शिल्प पर इस प्रभाव की गहरी छाप है। 'भस्म कलश' जैसी कविताएँ इस तथ्य को अपने आप बोलती हैं। उसके काव्य सौष्ठव में यवनीय कारुकारिता का सा संयम, भावों की केन्द्रिकता और उष्मिल सुकल्पना है।

प्रकृति के रूपों में उसने एक प्राचीन यवन तरुण की भाँति ही रस लिया। हर पेड़ पर उसे द्रुम परी नजर आती थी। झरने के सौन्दर्य को बिना जलपरी के अस्तित्व के न देख पाया। हरियाले मैदानों में बंसरी बजाता वृद्ध 'पान' दृष्टिगोचर होता था। प्रकृति के प्रांगण में विचरता हुआ शिशुवत-आनन्द से किलकारियाँ भरता था, जिनकी छाप उसकी अधिकांश कविताओं में है। अनेक उच्चकोटि की कविताओं में उसके लिये प्रकृति और मानव एकाकार हो गये हैं। 'साइकी के प्रति' की पंक्तियाँ उसकी उस अवस्था की प्रतीक हैं, जिसमें सचमुच उसके मानस में किसी प्राचीन यवन की आत्मा ही उतर आई थी—

हाँ, मैं हूँगा तेरा पूजक, औ' अपने मानस के
निर्जन प्रान्तर में देवालय एक करूँगा स्थापित,
जहाँ वृन्त-युत भाव, नवल-अंकुरित मधुर-पीड़ा के
साथ चीड़ की जगह, वायु में होंगे मंद-मर्मरित:
दूर, सुदूर, चतुर्दिक् दुर्गम कूट-युक्त शैलिनियाँ
उन श्यामल तरुओं से होंगी पंखिल, प्रवण-प्रवण कर :
सो जायेंगे लोरी पाकर, अनिल झकोरे, निर्झर,

विहग-वृन्द, सरघों की टोली, पलल-शयत वनपरियाँ।
इस विस्तीर्ण शान्ति के बीच, करूँगा फिर मैं सज्जित
एक गुलाबी पावन मंदिर, कार्य-व्यस्त मानस के
पुष्पाधारों से, कलियों से, मुकुलित सुमनावलि से,
उन सबसे, जो कल्पन की वनमालिनि को ही कल्पित
कभी हो सके, जो कि एक पुष्प का अभिजनन करती
फिर न अभिजनाती है उसे दुबारा, होगा तुझको
लब्ध मृदुल उल्लास सुकोमल, वहाँ कि केवल जिसको
गहन विचारों की उड़ान ही जय कर सकती,
एक ज्योति की शिखा, और रजनी में हुआ अमुद्रित
एक झरोखा, तेरे मादक प्रिय के ही प्रवेश-हित।

—'साइकी' के प्रति।

कीट्स के प्रभावक—कीट्स के अप्रत्यक्ष प्रभावकों में शेक्सपियर का नाम सर्वोपरि है। कीट्स और शेक्सपियर के अपने तुलनात्मक अध्ययन में आलोचक मिडिल्टन मरे लिखता है—

"जब मैंने उन्हें (कीट्स के पत्रों को) पढ़ा, तो उन्होंने मेरी आँखों के सामने, शेक्सपियर, शेक्सपियर का ही सुनहरा धागा प्रस्तुत किया।"

इसी प्रसंग में सर सिडनी कोलविन का मत भी इसी की पुष्टि करता है—

"मेरा विचार है कि शक्तिमत्ता में, स्वभाव में और उद्देश्य में भी, वह अतिशय शेक्सपियर-मय आत्मा थी जो शेक्सपियर के बाद जीवित रही।"

सचमुच, कीट्स के अन्दर भी शेक्सपियर की तरह 'स्वाभाविकता' और 'निःस्वीयता' के गुण हैं, वैसी ही मानवीय संवेदना है, वैसी ही अनुभूति की व्यापकता है। इसीलिये वह अपने जीवन के हर कठिन मोड़ पर शेक्सपियर की पुकार करता है, उससे प्रेरणा ग्रहण करता है।

उसके काव्य का लक्ष्य भी शेक्सपियर के समान था। वह द्रुतगति से उसी की ओर बढ़ रहा था। अपनी अल्पायु में ही उसने शेक्सपियर के मर्म को न केवल समझ लिया था, वरन् उसने उस शक्ति को पा लिया था, जो शेक्सपियर को स्वयं उससे दूनी वय में प्राप्त हो पाई थी।

शेक्सपियर के बाद दूसरा प्रभावक मिल्टन है। मिल्टन के काव्य से कीट्स का परिचय वर्ड्सवर्थ के द्वारा हुआ। मिल्टन और शेक्सपियर कीट्स के लिये दो अंतर्विरोधी तत्त्व थे। मिल्टन के अन्दर ऐसी शक्तिमत्ता है, जिसका सम्मान बाहरी चमकदमक की ओर है, शेक्सपियर उस स्वाभाविक सौन्दर्य का प्रतीक है, जो जीवन

को वास्तव की ओर ले जाता है। मिल्टन ने कीट्स की शब्द-शिल्पकारिता, छन्दगठन, उपमा इत्यादि को काफी प्रभावित किया है। हाइपैरियन की कथावस्तु पर तो मिल्टन के 'पैराडाइज लौस्ट' की गहरी छाप है। अपने इस काव्य में—विशेषकर इसके प्रथम भाग में—उसने अतिशय मौलिक और संयमित शैली का नमूना प्रस्तुत किया है, ज उसे मिल्टन की कोटि तक पहुँचाता है। जहाँ वह मिल्टन के सीधे प्रभाव में आया है, और अपने व्यक्तित्व को उभार नहीं पाया, वहाँ उसकी कला इतनी उत्कृष्ट नहीं हो पाई। अतिशय 'मिल्टनमयता' की वह शिकायत करता हुआ 'हाइपैरियन' को स्थगित कर देता है। यथार्थतः मिल्टन के विपरीत, वह हृदय का, इंसानी दर्द का कवि है, इसलिये उसमें मिल्टन के प्रभाव से मुक्त होने की आकुलता है। अपने अंत समय में इस प्रभाव से मुक्त हो गया था। 'संशोधन' में मिल्टन बहुत धुँधला गया है।

तो भी यह निस्संदेह है कि मिल्टन के कारण उसकी कला में संयम, और तराशने में एक महान शिल्पकार का-सा नैपुण्य आया।

शेक्सपियर और मिल्टन के अतिरिक्त, उसके काव्य पर अन्य कवियों का भी प्रभाव स्पष्ट है। ऐलिजाबेथीय कवियों के अतिरिक्त, दाँते, स्पेन्सर, होमर जैसे पुरातन महाकवि, चैटरटन, वर्ड्स्वर्थ और कॉलरिज जैसे तत्कालीन कवियों ने भी कुछ अंश तक कीट्स को प्रभावित किया है।

दाँते का प्रभाव 'हाइपैरियन' की प्रथम पुस्तक में मिल्टन से गुँथा हुआ है। अलग से भी उसका प्रभाव कीट्स की उपमाओं में, चित्रीकरण और आवेशयुक्त वक्तृता में दिखाई देता है। 'देवि' की दीर्घ 'अमेजन' से तुलना दाँते के विर्जिल काव्य का स्मरण दिलाती है। आलोचक मैकेल ने अपने एक निबंध में इसका विशद विवेचन किया है।

स्पेन्सर के काव्य के विषय में अन्यत्र कहा जा चुका है। उसका प्रभाव विशेष-रूप से कीट्स को रोमान और कल्पना की परिधि को विस्तृत और समृद्ध बनाने में सहायक हुआ। होमर ने भी, जिसके काव्य से चैपमैन के अनुवादों से परिचित हुआ था, ग्रीक कला-कृतियों और दंतकथाओं की अनुपम सौन्दर्य-राशि की उसे झाँकी दिखाई। होमर को पढ़ने के अपने 'इम्प्रैशन' को चैपमैन वाले सॉनेट में व्यक्त किया है। यहाँ वह कार्तेज़ के सदृश छवि और कल्पना के अतलांत सिन्धु में निहारता है।

चैटरटन की प्रतिभा भी समय के प्रहारों के सामने अल्पकाल टिकी। कीट्स ने अपनी 'एण्डिमियन' को चैटरटन को समर्पित किया। उसे चैटरटन से हार्दिक संवेदना थी और वह चैटरटन की कवि-प्रतिभा को मिल्टन से भी महान मानता था। उसकी लोक शब्दावली और स्वाभाविक काव्य-भाषा का कीट्स कायल था।

अन्य कवियों का प्रभाव आरंभिक और अल्प है।

इनके साथ, इटैलियन कथाकार बोकाचियो, चैपमैन, स्पैन्स, और लिम्परीहरे के अनुवादों को भी श्रेय देना होगा, जो कीट्स की रचनाओं के प्रेरणा-स्रोत बने ।

कीट्स का प्रभाव—

कीट्स के एक अंग्रेजी आलोचक ने कीट्स के इस उद्गार पर कि

"मेरी कीर्ति पानी की तरंगों पर लिखी जायगी ।"

क्या खूब कहा है—

"यदि कीट्स का नाम पानी पर लिखा गया, तब यह वह अभिमंत्रित जलकोष है, जिससे कि उन्नीसवीं शती की कविता का विपुल स्रोत प्रवाहित हुआ ।"

जिस प्रकार उसने शेक्सपियर, मिल्टन, दाँते, होमर इत्यादि के प्रभावों को ग्रहण कर, अपने काव्य को श्रीसमृद्ध किया, उसी प्रकार टैनीसन ने उसके काव्य से अमित प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किया, जिसे टैनीसन से १९वीं शताब्दी के सभी प्रमुख कवियों के काव्य गहराई से स्पर्शित हैं ।

टैनीसन की सी वर्णन-कुशलता, चित्रमय प्रभावोत्पादकता, ध्वनि, वर्ण एवं मोहक दृश्यों की साम्यता, सब कीट्स की देन है । कीट्स की चित्रात्मकता से प्री-रेफेलाइट कवि बडे प्रभावित हुए । मॉरिस, स्विनबर्न, रौज़ेटी इत्यादि सब पर उसके जादुई जगत की छाया है । वह एक प्रकार से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अपने आगे आने वाले अंग्रेजी काव्य का प्रमुख प्रभावक है । वह इसीलिये 'कवियों का कवि' कहा गया है । ऐडमण्ड गौस के शब्दों में, **"कीट्स विक्टोरियन कविता के विकास की गुरु आत्मा रहा है ।"**

अंग्रेजी काव्य के अतिरिक्त, कीट्स के काव्य का अन्य भाषाओं के कवियों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव खोजा जा सकता है । महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के निबंधों में उपनिषदों के साथ कीट्स के सौन्दर्यचिन्तन की भी सहसत्ता है । उनकी विवेचना में दर्जनों स्थलों पर कीट्स के विचारों की छाप है । उनके साहित्य पर लिखे निबंधों में तो कीट्स के 'सुन्दर ही सत्य, सत्य सुन्दर' की ही गूँज है ।

हिन्दी के अमर कवि पंत की अनेक रचनाओं में कीट्स की आत्मा का स्पर्श है[1] । यही बात अन्य भाषाओं के कवियों के लिये भी सत्य है ।

---

१. पंत, निराला तथा अनक हिन्दी कवियों के काव्य पर कवि कीट्स के प्रभाव का डॉ० रवीन्द्रसहाय वर्मा ने अपने शोध-ग्रन्थ 'हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव' में विवेचन किया है । विस्तार के लिये यह पुस्तक द्रष्टव्य है ।

वास्तव में कीट्स का काव्य-लोक अप्रतिम सौन्दर्य का लोक है, जिसमें कविता-श्री से मानव जीवन को सजाने वाला हर कवि विचरण करता है, और सामर्थ्य के अनुसार अपनी कला को संयत और प्रभावक बनाता है।

कीट्स की प्रगतिशीलता—

यद्यपि कीट्स में शेली के समान तानाशाहों की सत्ता के विरुद्ध दर्द्धर्ष गर्जन नहीं मिलता, तो भी अपने युग के संघर्षों के प्रति वह अचेत नहीं था।[1] उसकी प्रथम रचना ही हंट को गिरफ्तार करने के अन्याय के विरोध में हुई। वर्डस्वर्थ के विपरीत, वह मानवता की प्रगति को कभी सीधी रेखा नहीं मानता था। वह जानता था कि यह प्रगति एक-एक चरण नाप कर होती है। उसने फ्रांस की राज्य-क्रान्ति का कहीं विरोध नहीं किया। नैपोलियन के बारे में कीट्स की धारणा उसकी गहरी राजनीतिक समझ की परिचायक है। वह अपने युग के उद्योगवाद के वैषम्य से पूर्ण परिचित था। पूँजीवादी शोषण ने मानव की जिन्दगी तबाह कर डाली है, इसका सम्पूर्ण चित्र इज़ाबेला की इन पंक्तियों में देखिये—

> अपने भ्रातृ-युग्म के संग, वह रहती थी सुन्दर महिला,
> पैतृक पारम्पर्य्य-वणिज से हुए धनी औ' समृद्धतर:
> जलती खानों, और शोर से भरी हुई फैक्टरियों में,
> चकनाचूर हुए थक-थक कर, जिनके हित अनगिनती कर:
> कभी सगर्व धारतीं जो तूणीर, कमर हो गईं द्रवित
> शोणित में, दंशित चाबुक से; औ' अनेक जन दिन-दिन भर
> खड़े रहे प्रद्युत सरिता में, लेकर निज खोखले नयन,
> प्लावन की रेणु से इकट्ठे करने को सुवर्ण के कण।

ग़लत सामाजिक व्यवस्था ने कवियों का जीवन कितना दुखमय बनाया है, इसका उसे प्रत्यक्ष ज्ञान था। उनकी यातना से उसे सहानुभूति थी। इस सम्बंध में अपने उद्गार एक पत्र में इस प्रकार प्रकट करता है—

'उनके साथ इटली के रैफील की तरह व्यवहार नहीं किया गया। किसी भी अंग्रेज कवि को उसके घोड़े के बपतिस्मा करने में बोयर्डों के समान स्वगत नहीं किया

---

1 "This dreamer artist, was in spiritual sympathy with the radicals of the day. But he consecrated his endeavours to a positive taste, his intention was to serve, through the medium of poetry, the cause of a moral progress in which he believed."

Cazamian.

गया, जो केवल रोमान का ही कवि रहा, मानवी हृदय का पीड़ित और सशक्त कवि नहीं ·····"

उसे अपने युग की विषम स्थिति का पूर्ण ज्ञान था—

"··· हम एक बर्बर युग में रहते हैं। मैं कर्क के शासन-प्रदेश में एक लड़की होने की अपेक्षा शीघ्र ही वन्य-हरिण होना पसंद करूँगा, और उन अधम बड़ों के समक्ष एक निरीह जीव की तपस्या का अवसर बनने की अपेक्षा, एक वन्य शूकर होना अधिक चाहूँगा।"

उसकी आंतरिक अभिलाषा थी कि संत्रस्त मानव जीवन की सेवा में अपनी काव्यिक शक्तियों को लगाये। उसके अनुसार सच्चा कवि-कर्म यही है कि वह मानवता के दुखदर्दों पर शीतल मरहम बने—

एक महान कवि है
एक संत
एक मनुजवादी, समस्त मानव के लिये चिकित्सक

कविता का उद्देश्य है

इसको 'सुहृद होना है, हरने दुःखमय चिन्ताओं को,
और उठाने हेतु उच्चतल पर मानवी-भावनाओं को।

ऐसे ही कवियों के लिये

·· ·········है इस जगती की पीड़ाएँ,
पीड़ा, और नहीं लेने देगी आराम उन्हें वे।

कीट्स की सच्ची कविता की धारणा सत्कर्म से गौण है।

वह ऐसी प्राचीन कविता का विरोधी था, जिसने मानवता के प्रति अपने इस दायित्व को नहीं पहचाना। वे तो—

"·············बड़े निकट ही से··· ···········ग्रथित
हुए रूढ़िगत विधियों के सँग जिनको असद अशुभ नियमों ने,
औ' जड़ नपी, तुला रेखों ने किया विनिर्मित;"

अपनी कविता की भाषा भी वह कठिन लैटिनमय न रखकर, सरल दैशिक अंग्रेजी का पक्षपाती थी।

अपने समकालीन अन्य कवियों की अपेक्षा भौतिकवादी था। यद्यपि उसकी भौतिकवादी धारणा में उन्नीसवीं शताब्दी की सभी मर्यादाएँ मौजूद थीं, पर तो भी उसकी आस्थाएँ इसी धरती पर, इसी मानवीय जीवन के साथ थीं। उसके आदर्श सौन्दर्य का प्रतीक भी—शेली के विपरीत—मानवीय नारी ही था। उसका दुख-दर्द, जिसकी धुरी पर उसका समूचा काव्य घूमता है, मानवीय ही है, दैविक नहीं। वह

केवल दर्द का ही पुजारी नहीं है, जीवन का पुजारी है, जिसमें सुख है, उल्लास है।

"जीवन है अब तलक अनखिले उस पाटल प्रसून की आश :"

शेली ने जीवन को **'अश्रुकणों की उपत्यका'** कहा है, इसके विपरीत कीट्स इसे **'आत्म-निर्माण की उपत्यका'** (Vale of Soul-making) कहता है।

उसे अपनी दरिद्रता पर अभिमान था। वह अभिजातीय वर्ग से घृणा करता था। उसका यह अहंभाव चाहे प्रतिक्रियावश ही क्यों न हो, पर इसका एक परिणाम तो शुभ हुआ कि वह वर्ड्स्वर्थ के समान अभिजात वर्ग का चारण नहीं बन सका।

यह अपनी जगह पर सच है कि उसके अंदर अधकचरे तरुण स्वप्न हैं, असंगतियाँ हैं, उसकी अपनी दुर्बलताएँ हैं, पर ऐसा होना स्वाभाविक था, अभी उसकी उम्र भी क्या थी! महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उसे इनका भली भाँति ज्ञान था; अपनी असंगतियों से वह सदैव युद्धरत था। अपने आत्म-विश्लेषण के द्वारा इनको पहचान कर, पीछे छोड़कर, आगे बढ़ने का प्रयत्न करता था। वह इस बात के लिये प्रयत्नशील था कि अस्थायीतत्व कैसे पीछे छूटें, अमरता का कौन-सा पथ है—कविता कैसे अधिक दिनों तक मानवता के लिये आनंद-वर्धन कर सकती है! उसके लिये कविता सत्यं, शिवं, सुन्दरं का प्रतीक थी, पर इसका आधार भौतिक है, यही पार्थिव जगत है, यही हाड़-माँस का संघर्षरत मानव है। इसी की सेवा के लिये, अपने सच्चे कवि कर्म को पूरा करने के लिये, वह अपने संगमरमरी गुम्बज को तोड़ कर बाहर आता है। 'महान मानवीय उद्देश्य के लिये प्राण देने के गौरव' को पाने की उसकी एक मात्र अभिलाषा है।

डबल्यू० एम० रोज़ेटी ने उचित ही कहा है कि यदि सौन्दर्य का सृजन मानव की अनुपम थाती है, तो कीट्स अपनी अल्पवय में भी, समग्र मानवता के द्वारा उस गौरव को पाने का अधिकारी है, क्योंकि वह अनेक 'सुन्दरता की वस्तुएँ' इस दुनिया के लिये छोड़ गया, जो 'चिरकाल का आनंद' बनी रहेंगी।

३

महाकवि कीट्स

का

काव्य-लोक

(POETRY)

मुक्तक रचनाएँ
निंदिया और कविता
देवि एग्निस की संध्या
इज़ाबेला
हाइपॅरियन
लेमिया

'पहले कि प्रसून पाँखुरी अपनी खोल सके,
अपनी मिट्टी की प्रकृति उसे पीनी होगी।"

—कीट्स
(स्पेन्सर के प्रति—सॉनेट से)

प्राणी को इससे बढ़कर वरदान और क्या ?
कि वह भोगे सोल्लास अपनी स्वतन्त्रता ?

—कीट्स

'मेया' के प्रति*

हे, 'हरमिज़'[1] की जननी ! 'मेया',[2] तू अब तक तारुण्य धारती !
क्या मैं तुझे समर्पित कर सकता हूँ निज गीतों का अर्चन,
जैसी 'बैयाई'[3] के पुलिनों पर, थी तेरी हुई आरती ?
अथवा मैं कर सकता हूँ क्या देवि ! आज-तेरा पद-वंदन
गाकर के प्राचीन सिसलियन[4] कवियों की गोचर-वाणी में,
या तेरी मुस्कान समुज्ज्वल करूँ लब्ध अब कल्याणी, मैं,
जैसी यूनानी द्वीपों में, दर्शित कर पाये वे चारण,
किया जिन्होंने वरण मरण संतृप्त मनोहर हरित भूमि पर,
करके अपने छोटे-से वंश को महान काव्य-निधि अर्पण ?
अहो, देवि ! उनका सा ही मुझमें प्राचीन ओज बल दे भर,
अश्रुत रहे सभी से वे, केवल जिनको सुन पाये नीरव
पीत गुलाब, गगन विस्तारण, और कर्ण कुछ, जो तुझसे ही
घिरे हुए थे, मेरी भी कामना कि मेरा गायन-वैभव
उन महान कवियों की अनुपम कविता-निधि सा चुक जाये ही;
उनसा ही संतोष धरूँ मैं;
दिन की सरल अर्चना में, अपने गीतों को सरस करूँ मैं !

(१८१८)

---

* Ode to Maia : An unfinished fragment

१. यवनीय देवता—इसे 'चौर्य्य का देवता' भी वर्णित किया गया है।

२. हरमिज़ की माँ—ज्यूस या जूपीटर की पत्नी। रोमन लोग 'मई' मास इसी देवि के नाम से पुकारते हैं।

३. नैपल्स के पास एक नगर—प्राचीन रोमन जीवन में इसका स्नान-निर्झरों के कारण बड़ा महत्त्व था।

४. इटली के प्रसिद्ध द्वीप सिसली से सम्बन्धित—यहाँ सिसली के निवासी यवन कवि Theocritus (300 B. C.) के काव्य से आशय है, जिसका गोचर काव्य तत्कालीन लोक-जीवन से ओत-प्रोत है।

निर्मम सुन्दरी*

१

आह, कौन सी पीर चुभ रही वीर तुझे,
घूम रहा एकाकी, छाया मुख पर पीलापन ?
मुरझाई शैवाल सरोवर में जाने कब की,
और विहंगम गाते कोई कहीं नहीं गायन !

२

आह, कौन सी पीर चुभ रही, वीर तुझे,
जो तू इतना मृण्मय है, अतिशय दुर्बल ?
गिलहर की कोटर भर गई अन्न के किनकों से,
खेतों में से कटकर घर आ गई फसल।

३

देख रहा हूँ एक कमलिनी मैं तेरे मुख पर,
जो कराह से भीगी, छाया ज्वर का है श्रम-जल,
और कपोलों के ऊपर है तेरे, तेजी से
पल-पल सूख-सूख मुरझाता जाता है पाटल।

४

मुझे मिली थी एक युवति हरियाले प्रान्तर में,
पूर्ण रूपसी—जैसे किसी अप्सरा की कन्या,
लम्बी केशावलि थी उसकी, चरण चपल उसके,
और मदभरी चंचल उसकी आँखें थी वन्या।

५

मैंने एक पुष्पमाला, गूँथी उसके सिर को
बाजूबन्द बनाये, उसकी करधन महकीली;
उसने प्यार भरी मेरे ऊपर डाली, मादक,
तिरछी चितवन, और एक मीठी-सी सिसकी ली।

---

* La Belle Dame Sans Merci

६

मैंने निज नर्तित तुरंग पर उसे सवार किया,
और सकल दिन भर, मैं कुछ भी देख नहीं पाया,
क्योंकि अश्व के इधर-उधर झुक झूम-झूम उसने
जी भर कर किन्नरियों का मीठा गाना गाया।

७

मुझको लाकर दिये स्वादमय कंदमूल उसने,
और वनैला मधु, कितने वन-फल, मीठे रसमय,
और 'शुद्ध मन से है मैंने तुझको प्यार किया',
बोली मुझसे एक अनोखी भाषा में निश्चय।

८

मुझे ले गई अपने अद्भुत गिरि के उपवन में,
और वहाँ पर रोई वह, ली उसने साँस गहन,
और वहाँ पर उसके वन्य नयन मूँदे मैंने,
और मधुर अधरों पर उसके, जड़े चार चुम्बन।

९

और सुलाया मुझे वहाँ उसने थपकी देकर,
देखा एक स्वप्न, जिसकी सुधि अब भी कसक रही,
वही स्वप्न था अंतिम जो उस शीतल पर्वत के—
पार्श्विक प्रान्तर में देखा, फिर देखा और नहीं।

१०

मैंने देखे कितने राजे, राजपुत्र, पीले,
पीले सुभट, मृत्तवत पीले, सभी हो गये वे,
'हृदयहीन रूपसि ने तुझको बाँध मोहिनी से
दास बनाया' एक साथ वे ऐसा चिल्लाये।

११

मैंने देखे उनके क्षुधित अधर गोधूलि में,
वे खुल पड़े भयंकर मुझको चेतावनि देकर,
और जग पड़ा मैं, पाया तब मैंने अपने को,
इस शीतल पर्वत के पार्श्विक प्रान्तर के ऊपर।

१२

और यही कारण मैं बना यहाँ का वासी हूँ,
घूम रहा एकाकी, छाया मुख पर पीलापन,
मुरझाई शैवाल सरोवर में जाने कब की,
और विहंगम गाते कोई कहीं नहीं गायन।

(१८२०)

बुलबुल के प्रति

हृदय हो रहा विकल, त्रसित हो उठी चेतना मेरी
एक अलस जड़तावश, जैसे मैंने पान किया हो,
गरल भरे प्याले का, अथवा मैंने कोई गहरी
मादक बूटी के रस का तलछट तक चषक पिया हो,
एक निमिष ही पूर्व, निमग्न हुआ विस्मृति-सरिता में;
यह न इसलिये मुझे हर्ष पर तेरे हुई जलन है,
पर तेरे सुख में अतिशय सुख से बेसुध यह मन है;
कि हे वनपरी ! चंचल-पाँखी, विटप-वासिनी, सुन्दरि !
किसी गीत गुंजरित रम्य कानन-प्रान्तर के भीतर,
भरी 'बीच'[1] की हरीतिमा, छायाएँ अगणित जिसमें,
मुक्त कण्ठ से सरस ग्रीष्म का सुना रही गायन है।

आह ! एक घूँट अंगूरी ! जिसको किया गया हो
एक दीर्घ युग तलक गहन-गह्वरित भूमि में शीतल,
आस्वादित जिसमें वासंती, ग्राम-हरित, नर्तन हो,
मादक 'प्रावेंसल'[2] गायन, रवि-चुम्बित प्रफुल्लता-पल !
आह ! एक दो चषक ! उष्ण दक्षिण की हो मादकता
शुद्ध लजीली अरुणिम 'हिपोक्रीन'[3] से हो परिपूरित,
और हो रहा जिसका आनन नीलिम-लोहित रंजित;

---

१. तरु-विशेष ।

२. फ्रांस का एक प्रान्त-विशेष; साहित्य में जिसकी अभिव्यक्ति रोमान के देश के रूप में होती है। यहाँ इस प्रान्त के मध्यकालीन गायकों के मधुर गीतों से आशय है।

३. या 'अश्व का निर्झर'—संगीत देवियों के अश्व मेगासस के प्रहार से यह फूटा था—इसके जल में प्रेरणा देने की अतीव शक्ति थी। कीट्स ने मदिरा के भाव को इसके प्रेरक जल से सम्बद्ध कर दिया है।

और किनारे तक फेनिल कण, उफन-उफन मोती-से
फूट रहे (अरुणिम-अधरित सुन्दरि की चितवन जैसे)
काश ! पी सका होता, तेरे साथ विलय हो पाता,
धूमिल कानन में, सुदूर इस अलक्ष्य वसुधातल से !

खो पाता सुदूर, लय होता, और विस्मरित करता,
निज पल्लव-गृह में न जिन्हें तू कभी जान हो पाई;
थकन, व ज्वर, जर्जरण यहां का, जहां कान में भरता,
मनुजों का दल बैठ व्यथाएँ अपनी और पराई:
कम्पवात है जहाँ कँपाता, अंतिम औ' दर्वीले
जरा जीर्ण भूरे बालों को, पीला पड़ता यौवन,
प्रेत सरीखा होता, औ' मर जाता; जहाँ कि चिन्तन
होता है केवल विषाद-भावों से भरते जाना,
चरम निराशा से पलकों का भारी होते आना,
जहाँ न रूप नयन अपने रख सकता है चमकीले,
और न नवल प्रणय ही भावी कल के परे सिसकता !

दूर ! दूर ! मुझको तुझ तक उड़ कर आना है,
किन्तु न मदिर देवता के चीतों के रथ पर चढ़ कर,
पर कविता के अलख परों से मुझको मँडराना है,
यद्यपि मानस अलस मुझे विलमाता है उलझाकर;
मैं अब तेरे साथ ! यामिनी कितनी है यह कोमल !
और कदाचित् शशिरानी है निज सिंहासन पर अब,
उसे चतुर्दिक् घेर रही हैं तारों की परियाँ सब;
पर कोई आल
केवल वह जो उतर रहा व्योम से सहारा लेकर,
मंद अनिल के झकोरणों का, सघन, हरीतिम, श्यामल,
अनगिन सर्पिल शैवाली डगरों के खा-खा चक्कर।

खिले कौन से कुसुम भूमि पर, मैं न देख सकता हूँ,
या मृदुगंध कौन सी कुँजों पर होती है दोलित;
पर सुरभित तम में प्रत्येक मधुरता का करता हूँ

मैं आभास कि जिससे करता है शृंगार-सुशोभित
ऋतुवर दूर्वा, वीथि, वनैली तरुपाँते फलवाली :
धवल श्वेत जूही, वन्या गोचर-माधवी लताएँ;
त्वरित मलीन बनफ्शे, जो पर्णों में छिपते जाएँ!
अर्द्ध-'मई' की मधुऋतु का, ज्येष्ठतम पुत्र वह सुन्दर
कस्तूरी गुलाब, नीहारिल मदिरा से भर-भर कर,
करता है विकीर्णित अपनी मादक सुरभि निराली :
औ' मधु-मक्षिक दल का विहरण ग्रीष्म-साँझ के ऊपर :-

जिसे सुन रहा धूमिलता में; सुखद मृत्यु के आगे
मैंने कितनी बार प्यार से भर कर बाँह पसारी!
कितनी बार पुकारा छंदों में कोमल नामों से,
ले जाने समीर के भीतर, नीरव साँसें मेरी!
और कभी की तुलना में लगता है मरण प्रीतिकर;
बिना किसी पीड़ा के होना स्तब्ध निशीथ घड़ी पर,
जबकि ढाल अविराम रही तू आत्मा अपनी बाहर,
ऐसी बेसुधि में यह प्राण निमग्न हुए हैं गहरे;
तू तो तब भी गायेगी : पर व्यर्थ कर्ण यह मेरे :—

तू जन्मी थी नहीं मृत्युहित, ओ, विहगिनि अविनश्वर!
क्षुधित काल भी आतुर रहा न कवलित करने तुझको,
बीती विभावरी में श्रवित हो रहा मुझको जो स्वर,
सुना पुरातन युग में राजा रंक सभी ने इसको :—
शायद यही गीत था, जिसके द्वारा व्यथित 'रूथ'[1] के
उर को मिली अपार सांत्वना, गृह व्याकुलता जिसमें
जब वह खड़ी विदेशी भू पर, भरे अश्रु लोचन में :
तेरा ही था गीत किये जिसने अभिमंत्रित; प्रायः
वे जादुई गवाक्ष, खुल रहे, गर्जित और भयावह
धाड़ मारते महासिन्धुओं की हिल्लोलों पर के
फेनों के ऊपर, उन परियों के निर्जन-देशों में।[2]

---

१. कवि यहाँ रूथ की सुन्दर कथा की ओर संकेत कर रहा है
२. कीट्स की कल्पनाशीलता का अनुपम उदाहरण।

निर्जन ! आह ! शब्द यह घंट-ध्वनि-सम तुझसे
मुझे दूर मेरी एकाकिन आत्मा तक ले जाता :
विदा ! न ऐसी प्रवंचना हो पायेगी कल्पन से,
जिसके कारण छली यक्षिणी उसे पुकारा जाता !
विदा ! विदा ! अब विलय हो चला करुणराग है तेरा
पार निकट की चरही के, अब पहुँच रहा है ऊपर
स्तब्ध स्रोत के; और चढ़ रहा है अब शैल-पार्श्व पर;
और मंद-मंथर नीचे की ओर उतरता जाता,
अब अगली घाटी की हरित तली में गहन समाता,
यह था कोई स्वप्न-दृश्य ? या दिवा स्वप्न था मेरा ?
वह गायन उड़ गया, जगा हूँ मैं अब अथवा सोता ?

(१८१९)

यूनानी कथांकित कलश के प्रति

तू नीरवता की सहचरि है अक्षत-रूपा अब तक :
मंदकाल का, और शान्ति का है तू पोषित बालक :
सरल-मुक्त गोचर जीवन का तू इतिहास सुनाता :
प्रेम रूप की सुमन शोभिता वह गाथा प्रकटाता,
जिसके आगे सभी हमारी कविता की मधुराई
फीकी पड़ती; हल्काती सब शब्दों की सुघराई;
तव आकार चतुर्दिक् पर्णांचलित कहानी कैसी,
देवों की, या मर्त्यजनों की, है अथवा दोनों की,
'टेम्पे'[1] में या 'अरकाडी'[2] की घाटी में मँडराती ?
हैं यह कौन पुरुष या सुर ? यह वनिताएँ सकुचाती ?
कैसा उन्मद अनुधावन ? यह बचने का संघर्षण ?
कैसी बंसरियाँ, टिम्ब्रेलें ?[3] यह प्रमत्त बेसुधिपन ?

श्रवित गीतिकाएँ मधु हैं, अश्रवित और भी मधुतर :
इसीलिये तुम मृदुल वंशियो ! बजती चलो निरंतर :
उन कर्णों के लिये नहीं, जो ऐन्द्रिय रस के लोभी,
पर आत्मा के हेतु, अधिक प्रियतर है जो इनसे भी,
भरो बंसरी में सुरहीन गीतियाँ; हे, युव सुन्दर !
नहीं थमेंगे कभी तरु-तले तेरे गीतों के स्वर :
आयेगा न कभी तरुओं की पाँतों पर ही पतझर;
ओ, साहसी प्रणयि ! यद्यपि तू निकट लक्ष्य के होकर,
कभी न चूम सकेगा उसे, न हो इस पर शोकान्वित,
कभी न रूपराशि तेरी रूपसि की होगी श्री-हत,—
(यद्यपि ईप्सित सुख न मिलेगा तुझे) चिरंतन तू ही
उसका प्रणयि रहेगा, होगी वह भी चिर-सुन्दरि ही।

---

१. उत्तरी यूनान के पूर्वी तट पर, थिसेली की एक सुन्दर उपत्यका।

२. नंदन-वन के समान सुषमा वाली पेलोपोनीसस (यूनान) की मध्य उपत्यका।

३. एक प्रकार का वाद्य—झाँझ से मिलता-जुलता।

अहा, मुदित, प्रमुदित वृन्तो ! तुम कभी न गिरा सकोगे
अपने पर्ण, न कभी विदाई, तुन वसंत को दोगे !
अहा, प्रफुल्लित गायक ! तुम्हें न होगी कभी थकन ही,
क्योंकि रहेंगे गीत बंसरी के चिरकाल नवल ही !
हर्षभरे ओ प्रणय, प्रणय और भी हर्षमय !
क्योंकि रहेगी तेरी ऊष्मा, चिर-चिर युग तक अक्षय !
तो भी यह चिरकाल सरसता का संचरण करेगी,
काया में उन्माद हर्ष का कम्प सदैव भरेगी !
शाश्वत युग तक अमर जवानी का सुख तुम भोगोगे !
मर्त्य वासना की साँसों से नहीं मलिन तुम होगे !
जो जाती है छोड़ हृदय में थकन विषाद घनेरा,
जलन भाल पर, और शुष्कता का जिह्वा पर डेरा।

वध्यस्थल की ओर चले आते ये कौन बताओ ?
हे, सरहस्य पुरोहित ! तुम किस हरियाली वेदी को
लिये जा रहे यह बछिया, जो नभ की ओर रँभाती,
जिसकी रेशम-झूल, पुष्पहारों से शोभा पाती ?
यह है कौन नगर छोटा-सा ? क्या है निकट सरित के,
अथवा बसा हुआ है यह क्या समीप सागर तट के,
या उस पर्वत के अंचल में है यह नगर अवस्थित,
जिसके ऊपर एक शान्तिमय दुर्ग हुआ है निर्मित,
रिक्त हुआ है इस पावन प्रभात में निज जन से अब ?
और लघु नगर, तेरी गलियाँ सतत रहेंगी नीरव,
और न एक प्राण का भी हो सकता प्रत्यावर्तन
कभी, बताने तुझे कि तू क्यों है यों नीरव-निर्जन।

हे, यूनान-शिल्प के अनुपम भव्य रूप गरिमामय !
तेरी मरमर-प्रस्तरमय काया पर हैं शोभामय
आकृतियाँ नर-नारी दल की सुन्दरता से अंकित,
ऊपर जिनके वन्यवृन्त हैं; नीचे तृणदल मर्दित;
हे, नीरव आकार ! हमारे लिये चिरंतनावत
तू भी है चिन्तनातीत; चारण-युग के शिल्पांकित

परिचायक ! तू है प्रतीक स्वच्छन्द प्रकृति जीवन का,
जब वृद्धावस्था कर देगी क्षय बल इस पीढ़ी का;
अन्य दुःखों के मध्य, न होगा जिनका हमसे नाता,
तू ही होगा मित्र मनुज का, तब भी जिसे सुनाता,
"सुन्दर ही है सत्य, सत्य सुन्दर," यह ही जगतीतल
पर है तुमको ज्ञात, ज्ञेय है चरम तुम्हें यह केवल।

(१८१९)

शरद के प्रति

अहो, कुहासों और मनोहर फलमयता के मौसम !
परिपक्वक दिनपति के सुहृद-सखा, अभिसंधि मनोरम
रचते उसके सँग कि करें कैसे द्राक्षा-गुल्मावलि
फलमय, छान वलिक पर जो चढ़ती जाती है लहरिल;
कैसे झुकवायें कुटिया के काईमय पादप-दल
सेबों से : कैसे भरवायें अन्तर तलक सकल फल
मधु पकान से; कैसे और बढ़ायें लौकी का दल;
कैसे मधुमिगी से भरकर पीन करें पिंगल-फल :
कैसे कली खिलायें, और, और भी, अधिक, अधिकतर,
बनें बाद के फूल, मक्षिका मोद मनाएँ जिन पर,
जब तक सोच न लें कि चुकेंगे नहीं दिवस उष्मिल अब,
क्योंकि ग्रीष्म ने उनके कोष रसीले भरे लबालब।

निज आगार मध्य प्रायः तू किसको हुआ न दर्शित ?
ढूँढ़ा करता कभी-कभी बाहर, वह तुझे विलोकित
कर सकता बैठे अल्हड़ता से खलिहान-फर्श पर,
तेरे कोमल कुन्तल अलसित लहराते रह-रहकर
ओसाती बयार में : अथवा अध-काटी क्यारी पर
सोते गहरी सुख निंदिया में, पोस्त सुरभि से तन्द्रित
जबकि दराँती तेरी अगला लाँक, और संवर्त्तित
पुष्प बचा जाती सब : और कभी होता तू गोचर
शिलहारे के सदृश, बड़ी दृढ़ता से है तू करता
निर्झरिणी को पार, भार शस्य का शीश पर धर कर,
या समीप साइडर-कोल्हू[1] के, घंटों ही निहारता
धीर-दृष्ट हो, अंतिम रस जब रिस-रिस टप-टप गिरता।

---

१. सेब का रस निकालने वाला छोटा कोल्हू।

वे वसंत के गान कहाँ हैं? कहाँ गये अब वे सब?
तू उन पर न सोच कर, तेरा भी तो निज गायन जब!
जबकि द्युच्छुरित बादल मृदु मृण्मय दिन को चमकाते,
औ' ठुँठियाले खेत गुलाबी रँग में हैं रँग देते,
तब सरिता के सरपत में सशोक भन-भन कर अविरल
एक करुण सहराग उठाते मच्छर-भिनगों के दल,
जो कि मृदुल समीर के सँग चढ़ता अथवा गिर जाता,
ज्यों इसका प्रवाह जीता है, अथवा यह मर जाता :
मिमियाते हैं पूर्ण-पुषित मेमने शैल-सरिता से,
झाऊ-झींगुर के झंकृत-स्वर; बगिया की क्यारी से,
कोमल-मंथर उठती है अब ललमुनियाँ की सीटी
औ' मँडराती हुई लवायें नभ में करतीं टीं-टीं।

(१८१६)

'साइकी'* के प्रति

देवि ! सुनो ये रागरहित पद, मधुर विवशता
और प्रीतिकर स्मृति के द्वारा, हैं जो निःसृत;
कर दो क्षमा कि तव रहस्य मैं ऐसे गाता
तेरे ही कर्णों में, जो कोमल शंखाकृत :
निश्चय आज स्वप्न मैंने देखा, या जागृत :—
दृग से किया संपख 'साइकी' को अवलोकित :
एक विजन में भटक रहा था मैं निर्लक्षित,
सहसा देखा मैंने होकर विस्मय-मूर्च्छित,
जीवयुग्म, रूपोज्ज्वल, सघन दूर्वादल पर
परिपार्श्वस्थ शयनमय, जिस पर थी कम्पित छत
निर्मित कलियों-पत्रों से, संतरित जहाँ पर
एक लघु सरित, विरले को वे प्राणी दर्शित ।

---

* साइकी (Psyche)—या आत्मा । एक राजा की सबसे छोटी सुन्दरी कन्या थी । यवन रतिरानी ने ईर्ष्यावश क्यूपिड को साइकी के अन्दर सबसे घृण्य पुरुष से प्रेम करने की प्रेरणा देने की आज्ञा दी । पर क्यूपिड (कामदेव) स्वयं उससे वशीभूत हो गया । उसने साइकी को एक अदृश्य स्थान पर रक्खा, जहाँ हर रात वह उससे मिलने आता था, और उषा से पूर्व चला जाता था । अदृष्ट और अज्ञात ही । साइकी की स्पृहालु बहनों ने उसे यह विश्वास दिलाया कि वह रात को किसी असुर का आलिंगन करती है । इस पर अगली रात साइकी ने दीपक से अपने प्रेमी को देखा, और उसका देवरूप देखकर चकित रह गई । उसी उत्तेजना में दीपक से कहीं एक बूंद सोते प्रणयी पर गिर गई, वह जग पड़ा ! और साइकी के अविश्वास को देखकर वह उसे छोड़ गया । इसके बाद साइकी वियोग में अति दुखी रही, जंगलों में भटकती रही । मंदिर-मंदिर अपने प्रेमी का पता पूछती रही, अन्त में एफ्रोडाइट के पास आई, जिसने उसे बहुत पीड़ा दी । कामदेव उसे अब भी प्यार करता था, और उसकी सहायता से साइकी को देवि की पुनः कृपा मिली और वह अमर हो गई । चिरकाल तक अपने प्रेमी के साथ रहने के लिये ।

पड़े हुए वे मध्य स्तब्ध व शीतल-मूलित
सुमन, सुगंधित दृगमय, नीलवर्ण रजतोज्ज्वल,
फुल्ल, नील-लोहित, प्रसून, औ' शान्त-उच्छ्‌सित
दूब-सेज पर, आलिंगत बाँहें, थे उज्ज्वल
पंख-छोर भी; अधर-स्पर्शित नहीं परस्पर,
पर न अलग ही हो पाये, मानो विलगाये
कोमल झपकी के कर ने, थे अब भी तत्पर
विगत चुम्बनों को अधिकाने, जब छा जाये
कोमल उषा-नयन में, उज्ज्वल प्रणय-गगन की
सघर तरुण तो मेरा परिचित
पर तू कौन विहंगिनि प्रमुदित ?
उसकी निष्ठ, और विश्वासी प्रिया साइकी !

ओ, ओलम्पस[1] के समस्त श्रीहीन वंश के
नूतन जात और मोहकतम सुदूर सपने !
उज्ज्वलतर 'फीबे'[2] के भास्वर-प्रांतित उडु से
अथवा नभ के कामुक जुगनू, भृगु-तारे से,
इनसे तो उज्ज्वलतर तू, यद्यपि है तुझको
लब्ध न कोई मंदिर, वेदि पुष्प से शोभित,
मरियम का सहराग नहीं, कोमल करुणा जो,
निशीथ की बेला के ऊपर, करता जागृत :
वाणी नहीं, न वीणा, और न वेणु, न उठता
मधुर अगुरु ही शृङ्खल- दोलित धूपदान का;
अर्चन-गृह न, ज्ञानवीथी, या भविष्यदृष्टा
या आवेश पीतमुख स्वप्नाविष्ट संत का।

शुभ्रतम ! विगत यद्यपि हो गये पुरातन प्रण,
औ' प्रिय विश्वासी वीणा के वे दिवस सकल,
जब थे पवित्र विहरित वन-वृन्त, और पावन

---

१. ज्यूस-कुल के देवताओं का वास स्थान—थिसेली (यूनान) का एक पर्वत ।
२. चन्द्ररानी (डाइन) का एक नाम ।

थे पवमान और पावक, पवित्र था जल,
तद्यपि इन दिवसों में, जो सुखमय पुण्यों से
हो गये दूर इतने, तेरे चमकीले पर
मूर्च्छित ओलम्पियनों में हैं फड़-फड़ करते :
मैं निहारता, गाता मेरा प्रेरित अन्तर।
अतएव, बनूँगा मैं तेरा सहगान करुण
सिसकियाँ जगाऊँगा निशीथ की वेला पर,
होऊँगा तेरी वीणा, वाणी, और वेणु,
औ' शृङ्खल-दोलित धूपदान का मधुर अगुरु,
अर्चन-गृह, ज्ञानवीथि, औ' भविष्यदृष्टा भी,
आवेश पीतमुख, स्वप्नाविष्ट संत का ही :

हाँ, मैं हूँगा तेरा पूजक, औ' अपने मानस के
निर्जन प्रान्तर में देवालय एक करूँगा स्थापित,
जहाँ वृन्त-युत भाव, नवल-अंकुरित मधुर पीड़ा के
साथ चीड़ की जगह, वायु में होंगे मंद-मर्मरित :
दूर, सुदूर, चतुर्दिक दुर्गम कूट युक्त शैलिनियाँ
उन श्यामल तरुओं से होंगी पंखिल, प्रवण-प्रवणकर;
सो जायेंगे लोरी पाकर, अनिल झकोरे, निर्झर,
विहग-वृन्द, सरघों की टोली, पलल-शयत वनपरियाँ !
इस विस्तीर्ण शान्ति के बीच करूँगा मैं फिर सज्जित
एक गुलाबी पावन मंदिर, कार्य-व्यस्त मानस के
पुष्पाधारों से, कलियों से, मुकुलित सुमनावलि से,
उन सबसे, जो कल्पन की वनमालिनि को ही कल्पित
कभी हो सके, जो कि एक पुष्प का अभिजनन करती,
फिर न अभिजनाती है उसे दुबारा, होगा तुझको
लब्ध मृदुल उल्लास सुकोमल, वहाँ कि केवल जिसको
गहन विचारों की उड़ान ही जय कर सकती,
एक ज्योति की शिखा, और रजनी में हुआ अमुद्रित
एक झरोखा, तेरे मादक प्रिय के ही प्रवेश-हित।

(१८१९

'उदासी' के प्रति

ना, ना, जा न विस्मरण-सरि पर, और कहीं दृढ़-मूलमयी
वृक-विषजड़ी[1] निचोड़ हलाहलमय हाला मत पी लेना :
प्रोज़रपिन[2] के द्राक्ष माणिकी,[3] मदिर काकमाची से ही
कहीं न अपना पीत भाल चुम्बन-पीड़ित होने देना;
धनुर्वृक्ष-बदरी[4] को बना न लेना माला के मनके,
सकरूण 'मृत्यु-कीट'[5] या भृङ्ग मदिर भँवराते हो जायें
गायक ही न कहीं तेरी शोकिल आत्मा की रागिनि के;
तेरी मर्मव्यथा का साक्षी सपर उलूक न हो पाये :
कल्मष क्योंकि निकट कल्मष के अलस-अलस कर जायेगा,
और प्राण की तीव्र जागरित पीर डुबाता आयेगा।

जब सहसा उदास भावावेगों से भर जाये यह मन,
जैसे व्योम-पटल पर छाये, बदली आँसू ढुलकाती,
जो मलीन, कमनीय कुसुम दल में भर देती है जीवन,
और हरित शैलिनि को शरद-तुषार-कफ़न है पहनाती;
तब प्रभात-पाटल पर जाकर मर्मभार निज हल्का कर,
या कर लवणमयी सैकत तरंग सुरधनु-छवि का दर्शन,
अथवा ले निहार कुचवत सित गोल नलिनि-वैभव जी भर,
या यदि प्यारा रोष जताती है तेरी प्रेयसि मानिनि,
तो तू उसका कोमल कर ले थाम, रोष पर दे मत ध्यान,
उसके अनुपम लोचन-मधु का कर बेसुध होकर रस-पान।

---

१. धतूरे के समान विषैली जड़ी।
२. हरियाली की देवि।
३. विषैले फल विशेष।
४. वही।
५. कब्र पर भनभनाने वाला, भृङ्ग की जाति का कीट विशेष।

वह रहती है संग रूप के—रूप जिसे होना है क्षय,
और हर्ष के, कर जिसका सदैव अधरों पर रहता है,
देते विदा : समीप वहीं, पीड़ाकुल सुख होता विषमय,
जबकि ममाक्षी-मुख मकरंद-पान में निमग्न रहता है :
अरे, वहीं प्रमोद-मन्दिर में, है प्रच्छन्न उदासी की
निज सर्वोच्च वेदिका, अन्य न कर सकते दर्शन जिसका,
केवल वही, फोड़ सकती अंगूर हर्ष का है जिसकी
कठोर रसना, लगा इसे निज उत्तम तालू से, उसका
प्राण चखेगा स्वाद उदासी के बल की करुणा का ही,
होगा, उनमें, जिन पर उसकी मेघिल जय-श्री सजी हुई।

(१८१९)

'अलसता' के प्रति

एक भोर आकृतियाँ तीन दिखाई दीं मेरे सम्मुख,
नत ग्रीवा थी, हाथ जुड़े थे, एक ओर को उनका मुख;
एक दूसरे के पीछे पग धरते थे प्रशान्त मन्थर,
निःस्वन पदत्राण, परिधान धवल शोभित उनके तन पर,
वे गुजरे, ज्यों कलश चित्र आँखों से ओझल हो जाते
पृष्ठ पार्श्व के अवलोकन हित, उसे घुमा तब रख देते;
वे फिर आये; जैसे भस्म कलश को पुनः घुमाने पर,
पिछली चित्राकृतियाँ हो जाती हैं नयनों को गोचर;
वे सब मुझे विचित्र, नहीं पर उसको भी निज दृष्टि प्रथम
दे सकती पहचान, जानता 'फिडियस'[1]-गाथा का जो मर्म।

छायाओ! यह क्यों है ऐसा, मैंने तुम्हें नहीं जाना?
ऐसा गुप-चुप नकाब पहने, हुआ तुम्हारा क्यों आना?
क्या यह था षड्यंत्र कि चुप-चुप निकल जायँ यूँ ही निःस्वन,
औ' रहने दे यूँ ही कर्मरहित सब मेरे अलसित दिन?
अलस घड़ी थी यौवन पर : हो चुके जड़ित मेरे लोचन
ग्रीष्मालस के सुखद मेघ से : शिथिल हुआ नाड़ी-स्पन्दन;
पीड़न था निर्दंश, प्रमोद न सुमन हार से था सज्जित :
आह, बताओ हुए इस तरह क्यों मानस से सभी द्रवित,
और नहीं रक्खा क्यों मेरी चेतनता को बिल्कुल रिक्त
सकल भ्रान्त भावनाओं से, एक शून्यता के अतिरिक्त?

फिर तीसरी बार वे गुजरे, मेरे अति समीप होकर,
फिर प्रत्येक मुड़ गया, मेरे ऊपर दृष्टि डाल पल भर,
फिर वे धुँधला गये, छुआ विह्वल उनके पीछे जाने,
तीनों परिचित निकले! होते काश, कहीं मेरे डैने!

---

१. फिडियस ५ शती ई० पू० का यूनानी मूर्तिकार—यहाँ मूर्तिकार की कला से अभिप्राय है।

प्रथम एक थी युवती, 'प्रणय' नाम्नी, जिसका रूप ललाम;
और 'महत्वाकांक्षा' दूजी, पीत कपोल, और अविराम
श्रान्त लोचनों से सतर्क हो वह सदैव ही रही निहार;
अन्तिम, जो कि मुझे औरों से है प्रियतर, जो सहती भार
अपयश का, औरों से अधिक, युवति वह अविनम्रा अतिशय,
वह थी मेरी स्वामिनि कविता : जिससे भली भाँति परिचय।

वे धूमिल हो गईं : आह, थी मुझको पंखों की अभिलाष :
आह, मूढ़ता कैसी ! क्या है प्रणय ? कहाँ इसका आवास ?
आह, निरीह महत्वाकांक्षा ! उसको तो देता आकार,
मानव के संकीर्ण हृदय का अल्पावध-ज्वर का ही ज्वार :
कविता के बारे में—नहीं, प्रमोद कहाँ उसके भी पास,
कम से कम मैंने तो उससे पाया इतना नहीं मिठास,
जितना मिला तंद्रिला दुपहर, मधु अलसित संध्याओं से;
काश ! मिले वह आयु मुक्त हो जो सब दुश्चिन्ताओं से :
नहीं जान पाऊँ कि हुआ कब चन्द्रकला में परिवर्तन,
हो न व्यस्त सामान्य चेतना की वाणी का मुझे श्रवण !

और वहाँ वे एक बार फिर आये—आह, किसलिये, फिर ?
धूमिल सपने काढ़ चुके थे जाली मेरी निद्रा पर;
मेरे प्राण बने दूर्वासन जिस पर छिटक रहे अनगिन
कली कुसुम, स्पंदित छायाएँ, बहकी-बहकी भोर किरन;
बादल से ढँक गया सवेरा, किन्तु न एक फुहार झरी,
यद्यपि उसकी पलकें, मृदु वासंती आँसू में हहरी;
मुक्त झरोखे से नव पत्रित द्राक्ष-वेलि ने हो मजबूर,
आने दिया नवल कलिका को सौरभ, 'थ्रोसिल'[1]—स्वर भरपूर :

ओ, छायाओ ! यह मुहूर्त्त था तुम्हें विदाई देने का,
पर न एक आँसू मेरा, तव वसनों के ऊपर ढुलका :
अतः प्रेतत्रयि ! विदा ! उठा तुम नहीं सकोगे मेरा शिर,

---

१. विहग विशेष ।

जो शीतल-सेजस्थ हुआ प्रसूनमयदूर्वा के ऊपर;
किसी प्रशंसा का अतिरेक न मुझको बहला सकता ही,
किसी भावमय प्रहसन में, मैं कोई पालित मेष नहीं :
धुँधलाओ, मेरे नयनों से शनैः शनैः, हो जाओ फिर
वही नकाबी चित्र, कढ़े जो स्वप्निल भस्म-कलश ऊपर :
ओ, प्रेतो ! तुम मेरी अलस आत्मा से अब खो जाओ;
मेघ-मालिकाओं में, और न कभी लौटकर तुम आओ !

(१८१६)

कल्पना के प्रति

सदा कल्पना को करने दो विचरण,
कभी नहीं घर में मिलते हर्षिल क्षण;
आनंद मधुर तो गल जाता छूने से,
पानी में जाते फूट बगूले जैसे :
तब सपर कल्पना विहराये, विचार से
होकर, जो फैला परे अभी तक उससे;
खोलो ! मानस-पिंजर की रुद्ध कपाटी,
वह उड़े मेघ सी अपने पर फैलाती।
अह, मृदु कल्पन! होने दो शिथिल इसे अब :
व्यवहार ग्रीष्म के हर्ष व्यर्थ करता सब,
औ' वासंतिक उल्लास क्षीण हो जाता,
अपनी कलिकाओं के समान मुरझाता;
शारदीय अरुणिम-अधरित फलमयता भी,
जो तुहिन, कुहासे से होकर लजियाती,
जो चखने से मुरझा जाती : क्या हो तब ?
तो आओ पास अंगीठी के बैठो, जब
सूखा ईंधन है धधक धधक चमकाता,
शिशिराई निशि की आत्मा की उज्ज्वलता;
जब निःस्वन वसुंधरातल ढँका हुआ हो,
औ' परत, परत कर हिम तुषार झरता हो,
हलवाहे युव के भारी जूतों पर से;
जब रजनी करने आती है दुपहर से
मिलकर षड्यंत्र अँधेरे में, संध्या को
करने प्रवासिनी नभ से तुम जा बैठो
वहाँ, स्वयं-प्रेरणातिरेकित-भय धर,
मानस संग, भिजवाओ कल्पन को बाहर,
कल्पना, उच्च-कार्यस्थ, भेज दो उसको :—

सेविका अनेक, संग में परिचर्य्या को :
होते तुषार के भी, वह लायेगी ही,
पृथ्वी की सारी सुन्दरताएँ खोई;
वह लाएगी, सब एक साथ लाएगी,
गरमी के मौसम के आनंद सभी ही;
ले, तुहिनिल क्यारी या कंटकिल वृत्त तक,
वह लायेगी कलियाँ पाटल वासंतिक;
चुपके रहस्यमय चोरी से सब संचित
कर लेगी शिशिर काल की सारी सम्पति;
फिर वह समस्त हर्षण कर देगी, मिश्रित,
ज्यों एक चषक में मदिरा-त्रय संमिश्रित,
तुम छक कर इसे पियोगे; तुम लोगे सुन
तब साफ़ दूर फसलों के गीतों की धुन;
वे कटे अन्न की आवाजें सर्राती;
तब गाते मृदुल विहंगम मधुर प्रभाती;
और सुनाई देगा उसी निमिष पर
फागुनी मास में कोयल का मीठा स्वर,
या काँव, काँव के कागों की कर्कश स्वर,
चुनते जो डण्ठल, तिनके सँजो-सँजो कर;
तुम अवलोकोगे एक नजर में ही तब,
गैंदा, गुलाब, बेला, चमेलिया को सब;
सित पँखड़ियों वाली नलिनी, कामिनि दल,
झाड़ी में खिला स्वयं वासंती-पाटल;
उस श्यामल 'हाइसिन्थ' की सुरभि सुहानी,
जो है वसंत की भास्वर-वर्णी रानी;
बिखरे हर पल्लव, और पुष्प के ऊपर,
एक ही पावसी झर के मोती गिर कर।
देखोगे, तनिक झाँकते, बिल के बाहर,
कुछ क्षेत्र-मूष, सुखनिंदिया से रह-रहकर,
वह सर्प, कि जो जाड़े भर होकर दुर्बल
छोड़ता उष्ण तट पर है अपनी केंचुल !
चितकबरे अण्डों को देखोगे, तुम फिर,

सेती रहतीं, जिनको बबूल के ऊपर,
मादा चिड़ियाएँ, अपने पंख फुला कर,
खामोशी से निज काई भरे नीड़ पर;
फिर भृङ्गों के दल भँवराते पाओगे,
तुम तब चैतन्य त्वरा से भर जाओगे;
जब हेमन्ती झकोर तानें हैं भरते,
जैतूनी फल पक-पक कर नीचे झरते।

अह, मृदु कल्पन! होने दो शिथिल इसे अब;
व्यवहार व्यर्थ कर देता है पदार्थ सब:
हैं कहाँ गाल जो बहुत अधिक घूर्णन पर
हो गया न निष्प्रभ? कहाँ बताओ सुन्दरि
जिसके रस प्लावित अधर रहे चिर-नूतन?
है कहाँ, नील कितना ही चाहे लोचन,
जो हुआ न निष्प्रभ? कहाँ गया वह आनन,
हर जगह हो सके जिसका हमको दर्शन?
हैं कहाँ अरे, वे स्वर, कोमल कितने ही,
आये हों चिरकालिक जिनको सुनते ही?
उल्लास मधुर तो गल जाता छूने से,
पानी में जाते फूट बगूले जैसे:
कल्पना सपर ढूँढे तेरे ही हित तब,
तेरे मानस को एक अधीश्वरि ही अब:
हो मधु-लोचन, जैसे 'सेरी'[1]—तनया के,
पहले कि अनय का दैत्य[2] उसे सिखलाये,
भ्रू-वंकिम कर देखना, व सकल बुराई;
जिसकी कटि, और पार्श्व की ही धवलाई
'हीबी'[3] के हो समतुल्य, हो गई जिसकी

१. प्रोज़रपिन का नाम—जिसे मृत्यु-लोक का राजा, प्लूटो अपहृत कर ले गया था।

२. प्लूटो।

३. तारुण्य की देवि और ऑलम्पस के देवताओं को मद पिलाने वाली साकी।

ढीली स्वर्णिम मेखला, कमर से सरकी,
गिर गई सुकोमल उसके तब चरणों पर,
थे जबकि सँभाले अमिय-चषक उसके कर,
छाई पीलाई तब 'जव'[1] के आनन पर।
अब तोड़ो, मधुर कल्पना की सब जाली,
तोड़ो, उसकी गाँठें सब रेशम वाली;
तोड़ो उसकी कारा के अब बन्धन सब,
ऐसे आनंदी क्षण वह लायेगी तब—
सदा कल्पना को करने दो विचरण,
कभी नहीं घर में मिलते हर्षिल-क्षण।

(१८१९)

---

१. जूपीटर।

कवियों[1] के प्रति

कामना हर्ष के चारण हो, तुम तजकर
हो चले गये निज प्राणों को वसुधा पर !
रह रहे स्वर्ग में भी क्या प्राण तुम्हारे,
क्या नव्य प्रदेशों में रहते तुम दुहरे ?
हाँ, हाँ, वे करती हैं स्वर्गिक आत्माएँ,
घुल-घुल रवि, शशि के वृत्तों से वार्ताएँ;
अचरजमय निर्झर की अविरल झर-झर से,
औ' विद्युन्मय जलधर के भैरव-स्वर से;
नंदन-वन के तरुवर-दल की मर्मर से,
करती हैं बात परस्पर वे मृदु उर से
बैठकर 'ऐलिसी' हरित वृत्त[2] के ऊपर,
रतिरानी के मृग ही चर सकते जिन पर :
हैं बड़े-बड़े नीलाभ पुष्प मुस्काते,
गँदे गुलाब की गंध जहाँ हैं पाते,
पाटल ने स्वयं सुरभि ऐसी है पाई,
जो पड़ी न वसुंधरा पर कहीं दिखाई;
बुलबुल की भी रागिनी मधुर है भरती,
पर नहीं निष्प्रयोजन, या बेसुध करती,
पर गाती गीत भरी दैविक सच्चाई;
दार्शनिक-छंद कविता की भी सुघराई;
वह कथा स्वर्ण-इतिहासों की सब बातें,
जिनसे स्वर्गिक रहस्य प्रकटित हो जाते।
इस तरह रहे तुम ऊँचे पर भी, फिर भी,
तुम रहो यहाँ जगतीतल के ऊपर भी;

---

१. वास्तव में यह कविता कीट्स ने ऐलिजाबेथीय युग के दो नाटककार-कवि ब्यूमोन्ट, और फ्लेचर को सम्बोधित करते हुए लिखी है।

२. ऐसे दूर्वादल के वृत्त, जिन पर मृत्योपरांत पुण्य आत्माएँ विचरण करती हैं।

तुम छोड़ गये पीछे जो निज आत्माएँ,
तुमको पाने की राह यहाँ बतलायें,
हैं जहाँ और आत्माएँ तव, सुख पातीं।
हैं नहीं कभी सोतीं, न कभी मुरझातीं।
हैं यहाँ, भूमि-जा आत्माएँ तव, अब भी
मर्त्यों से अपने लघु दिवसों की कहतीं:
उनके नैराश्यों, हर्षों की गाथाएँ,
उनकी कामना, द्वेष की वे घटनाएँ,
उनके यश की, अपयश की सारी बातें,
वे सब जो बल देतीं, या देती घातें;
इस तरह सिखाते ज्ञान हमें तुम अनुदिन,
यद्यपि हमसे कर चुके सुदूर पलायन।
कामना, हर्ष के चारण हो, तुम तजकर,
हो चले गये निज प्राणों को वसुधा पर!
रह रहे स्वर्ग में भी हैं प्राण तुम्हारे,
तुम नव्य प्रदेशों में भी रहते दुहरे।

चैपमैन द्वारा अनूदित होमर को पहली बार पढ़ने पर

मैं कितने ही स्वर्ण-प्रदेशों में अब तक कर चुका भ्रमण,
कितने ही तो राज्य और रजवाड़े देखे हैं सुन्दर;
लगा चुका हूँ मैं अनेक पश्चिमी टापुओं के चक्कर,
चारण-भक्त जिन्हें करते हैं देव अपोलो को अर्पण।

एक देश की व्यापकता मैं सुनता आया था अक्सर,
एक छत्र शासक था जिसका होमर, धीर और गम्भीर :
तो भी पी न सका साँसों से उसका निर्मल, शान्त समीर
सुने न जब तक 'चैपमैन' के मैंने निर्भय उच्च-स्वर :

लगा मुझे तब, जैसे मैं हूँ कोई व्योम-प्रेक्षक अब,
तरित हुआ है एक नवल ग्रह, जिसके दृक्पथ के भीतर;
या जैसे कार्टेज[1] बली ने, गृद्ध सदृश दृगों से जब
देखा था प्रशान्त सागर को—औ' उसके सब संगी नर—
एक दूसरे को तकते थे, हो अतीव विस्मय से सब—
स्तम्भित, स्तब्ध, खड़े हो 'डेरियन' की चोटी पर।

(१८१७)

---

१. कीट्स यहाँ भूल से कार्टेज को स्मरण करता है, सही नाम 'बुलबाओ' (Bulbao) होना चाहिये, जिसने प्रशान्त महासागर का अन्वेषण किया था।

कितना भला मुझे यह लगता !

आह ! भला यह कितना मुझको, किसी सुहानी ग्रीष्म-साँझ पर,
स्वर्ण-प्रतीचीं के नीचे आलोकों की धाराएँ गिरतीं,
और झकोरों के ऊपर, जिनसे सुख की फुहार है झरती,
सोते हैं चुपचाप रुपहले बादल के दल अपना सिर धर :
ऐसे में, सुदूर अति तजना अपनी सब भावना क्षुद्रतर,
मधुर-मधुर बाहर निकालना लघु चिन्ताएँ उन्मन मन की;
और खोजना, सहज, सुवासित, वन्या धरती, जो निज करती
नव निसर्ग-छवि से सिंगार, इस सुख में प्राण भुलाना सत्वर ।
वहाँ स्वदेश-प्रेम के गीतों से अपनी छाती गरमाना,
मिल्टन के भाग्य पर गुनगुना,—सिडनी[1]-शव पर आँसू प्लावन—
मेरे मानस में न मूर्त्त हों, जब तक इनकी दृढ़-आकृतियाँ;
शायद कितना भला ! काव्य के पंखों पर चढ़ कर मँडराना,
अवसर भर लाया करती है कोई कोमल आँसू का कन
जब हो जाती मुग्ध किसी रागिनिमय करुणा में ये अँखियाँ ।

---

१. सर फिलिप सिडनी—अंग्रेजी का एक प्राचीन कवि और लेखक ।

ऐल्गिन मार्बलस* के दर्शन पर[1]

मेरी आत्मा अतिशय दुर्बल : धरी हुई मुझ पर नश्वरता
एक बड़े बोझे के सदृश, कि जैसे हो निद्रा अनचाही :
औ' प्रत्येक सुकल्पित देवसरीखी इस कठोरता का ही
शिखर-ढाल 'तुमको अवश्य ही मर जाना है,' मुझसे कहता :
जैसे कोई गरुड़ रुग्ण हो, व्योम-छोर की ओर ताकता
तो भी यह मृदुमय विलास है आँसू ढुलकाना इस पर ही
कि हाय ! मेरे साथ मेघमय पवन झकोरे रहे अब नहीं,
जिनसे पाकर स्फूर्ति भोर का नयनोन्मीलन मैं कर सकता :
ऐसे धूमिल चिन्तित गौरव मानस के हैं प्रसरित करते
चारों ओर हृदय के एक अवर्णनीय द्वन्द्व की माया :
सो, ये विस्मय भी तो अतिशय चकराती पीड़ा भर देते
जो कि घोलती है यूनानी गौरवाभ में क्षयशः काया
पुराचीन काल की—उच्च आलोड़ित लहराते सागर के
साथ सूर्य को, जो कि बनाता एक विराटाकृति की छाया ।

---

* संगमर्मर के बने हुए यूनानी शिल्प के नमूने, जिन्हें यूनान से लार्ड ऐल्गिन ब्रिटिश म्यूजियम में लाये थे ।

१. "अपने उच्च भावों को व्यक्त करने में असमर्थ एक कवि की तुलना आकाश की ओर ताकते रुग्ण गरुड़ से; इससे और सुन्दर कौन-सी उपमा होगी !"

हेडन का पत्र कीट्स को
३ मार्च, १८१७

'थ्रश'* बोला यों मुझसे

ओ, तू ! शीत पवन का अनुभव, करता आनन जिसका,
और देखता, हिम-मेघों का दल, कुहरे में लटका,
देख रहा जमते तारों में स्याह 'ऐल्म' की चोटी,
तेरे लिये वसंत बनेगा, सचमुच समय फसल का।

ओ, तू ! जिसका ग्रन्थ अकेला निश्चय आया बनकर,
प्रखर उजाला घने तिमिर में, जिसको तू रजनी भर,
जग-जगकर पोसता, चाँद जब दूर निलय में होता,
तुझको आयेगा वसंत त्रिगुणित प्रभात ही बनकर।

अरे, न भाग ज्ञान के पीछे, पास नहीं कुछ मेरे,
फिर भी मेरे गीत रहे ऊष्मा में मधुर पगे रे!
अरे, न भाग ज्ञान के पीछे, पास नहीं मेरे कुछ,
तो भी सुनती संध्यारानी वह जो दुःखी हुआ, रे!

निष्क्रियता के विचार से, निष्क्रिय न कभी रह पाता,
और जगा है वह जो अपने को है सुप्त समझता।

---

* विहग विशेष।

'एम्मा' को लिखित पद

आओ, आओ, प्यारी एम्मा ! पूर्ण प्रफुल्ल हुआ पाटल;
वनदेवी के वरदानों का स्रोत बह चला है अविरल;
अनिल हुई है सकल कोमला, झरते विद्रुममय झरने,
और लिया है ओढ़ दमकता उर्म्मिल वसन प्रतीची ने ।

आओ ! त्वरित, चलो, बैठें ! उन श्रान्ति-हरण छायाओं में,
आकर्षक उत्कीर्ण आसनों, और खुले मैदानों में,
जहाँ साँझ की आरति का उच्चारण वनपरियाँ करतीं,
अन्तिम सूर्य-किरन में 'सिल्फ' विहगिनी हौले-से तिरती ।

और थकोगी जब तुम रानी ! तुमको सेज बिछाऊँगा,
पुष्प और हरियाली का सिरहाना एक सजाऊँगा;
सुन्दरि ! तव चरणों पर अपना आसन वहाँ लगाऊँगा,
जब मैं अपनी कथा प्रणय की सम्मोहित दुहराऊँगा ।

इतना प्यार भरा निश्वासन, लूँगा मैं इतना कोमल,
तुम समझोगी छुआ किसी कामाप्त झकोरे ने आँचल,
तो भी नहीं—साँस लेते में सुन्दर जानु दबाऊँ जब,
और आह मुझसे निकली है, यह रहस्य जानोगी तब ।

ओह, प्रियतमे ! फिर क्यों खोयें ऐसे हम समस्त वरदान ?
वह नश्वर है मूढ़ खो रहा जो ऐसे सुख के सामान !
अतः मुस्कराओ सहमति से, और मुझे दो अपना हाथ;
प्रेम भरे लोचन, मीठी रसना से आओ, मेरे साथ !

(१८१५)

मरण के प्रति

क्या हो सकता मरण शयन, जब जीवन केवल एक सपन,
और हर्ष के दृश्य प्रेत के सदृश, गुजरते रहते हैं;
क्षणिक सौख्य लगते छायाओं से, जैसे कर रहे गमन,
तो भी हम मरने को सबसे दुःखद समझते रहते हैं।

कैसा अचरज है कि मनुज अवनी पर भटके, और जिये
एक व्यथामय जीवन, तो भी छोड़ नहीं वह पाता है,
अपनी अनगढ़ डगर, न वह लखने को साहस कर पाये
निज भावी विनाश एकल, जो उसे जगाने आता है।

मिल्टन के केशगुच्छ के दर्शन पर

सुगठित छन्दों के प्रमुख !
भूखण्डों के प्राचीन विद्वान !
तेरी आत्मा कभी नहीं झपकी लेती
पर हमारे कानों के चारों ओर
सदैव, सदैव के लिये घुमड़ती रहती है !
कैसा है उद्दाम साहस उसका
जो करता है
समर्पित छन्द और गीतों की
ज्वलित आहुति
तेरी पावन और प्रतिष्ठित समाधि पर ।
कैसी स्वर्गोन्मुख तेरी ध्वनि उठती है !
मृदुल रोर और विमुक्त कोलाहल के
सजीव मंदिर !
'उल्लास' को नया हर्ष देते हुए,
'आनन्द' को सजीव पंख !
अरे, बता तेरे शासित प्रदेश कहाँ हैं ?
अपने कान इधर देना,
एक जवान 'डेलियन'[1]-शपथ की ओर—ओ, तेरी आत्मा की सौगन्ध—,
उस सबकी, जिससे तेरे नश्वर अधर मुखरित हुए थे,
सौगन्ध, तेरे पार्थिव प्यार की गिरी की,
सौगन्ध, अवनी और आकाश के सौन्दर्य की !
जब प्रत्येक शैशव की चाल
मेरी कविता से विलय हो गई है,
मैं आवेश में पीला पड़कर,
उत्तर काल के लिये छोड़ दूँगा,

---

१. डेलियन—अभिप्राय है 'कवि की'—यह शब्द 'डोलस' (अपोलो का जन्म स्थान—एक द्वीप) से बना है ।

तेरे, तेरी रचनाओं के, और तेरे जीवन के
गायन और गुणानुवाद;
पर अब व्यर्थ है यह जलन और संघर्ष :
दर्द है व्यर्थ, न जब तक हो जाऊँ पूर्णदक्ष
प्राचीन दर्शन में, और
पागल भविष्यत की झलकों से।
अनेक वर्षों तक मेरी अर्चनाएँ स्तब्ध ही रहेगी !
जब मैं बोलूँगा, तो इस घड़ी को सोचूँगा,
क्योंकि मैं अपने भाल पर उत्ताप और आवेश का अनुभव करता हूँ !
तेरी सत्ता के सरलतम अनुचर पर भी,
तेरे उज्ज्वल कुन्तल का एक गुच्छ,
सहज ही यह आगया,
और मैं चौंक उठा जब मैंने इतने अनजाने में
तेरा नाम उसके साथ लगा हुआ पहचाना।
तो भी उस क्षण पर शान्त था मेरा रक्त—
मैंने सोचा इसे प्लावन से मैंने देखा था।

(१८१८)

एण्डिमियन (काव्यांश)

सुन्दरता की वस्तु है आनन्द चिरन्तन काल का :
इसकी सुषमा बढ़ती है : यह नहीं कभी भी नास्ति में
परिणत होगी : हमको तो भी रक्खेगी यह शान्तिमय
एक लतागृह, और एक निद्रा जो परिपूरित मृदुल
सपनों से, औ' स्वास्थ्य से, औ' प्रशान्त श्वासोच्छ्वास से।
अस्तु, हम प्रत्येक आने वाले दिन पर गूँथते,
एक कुसुम का जाल जोकि धरती से हमको बाँधता,
बाँधता नैराश्य के मालिन्य, औ' सद-स्वभाव के निर्दयी
अमानवीय अभाव से, औदास्यपूर्ण दिन से, समस्त
अस्वास्थ्यकर, तिमिरातिरेक रास्तों से जो बने
हैं हमारी शोध को; हाँ इन सबके भी बावजूद,
कोई आकृति सौन्दर्य्य की, तमपूर्ण हमारे प्राण से
दूर हटाती है कफ़न। ऐसे ही हैं सूर्य, शशि,
वृक्ष पुराने औ' नवल, बिखराते वर छाँह का
सरल भेड़ के झुण्ड को; ऐसे ही 'डेफोडिल' कुसुम
और हरियाला जगत जिसमें उनका वास है :
और स्वच्छ समीर, लघु सरिताओं की शीतस्थली
जो निदाघ के ताप से, रक्षित करती है उन्हें : वन कुँजों के बीच में
छिटकी मुश्क-गुलाब की शोभा जो कितनी अवर्ण्य !
और ऐसी यशप्रभा के स्वामी होते ध्वंस वे
शक्तिशाली मृतकों को करते जिनकी कल्पना;
प्यारी सब कहानियाँ, पढ़ी हों या सुनी हों; जिनको हमने कभी;
झरना अमृत-पान का, कभी न जिसका अंत है,
ढुल-ढुल स्वर्गिक फूल से, रखता हमको जीवंत है···

जिसके दृग हों तत्पर निर्मल निसर्ग की अनुपम छवि भरने,
गुजर नहीं सकता था कर अवहेलन
उन दृश्यों का जो इतने आकर्षक गोचर
दोनों ओर । इन्होंने कैलीडोर किया अभिनन्दित
मानों दीर्घ काल से था वह उनका परिचित ।

पल्लवता से लदाफदा यह दृश्य कूलवर्ती, जो
प्रमुदित अस्तंगत रवि द्वारा, स्वर्णाभूषित;
जब तक उछल निकल उड़ जाता नीलकण्ठ खग,
अपने पंखों का सौन्दर्य समापित करता ।

एकाकी बुर्जी विध्वस्त, और जर्जर है, खड़ी हुई है
गौरव-गर्वित, इतना दर्प कि अपनी गत गौरव आभा पर,
नहीं शोक भी है प्रकटाती । 'फर' के तरु उग रहे चतुर्दिक,
चिर से गिरा रहे कठोर फल अपने भू पर ।

लघु गिरजा जिसके ऊपर है चिन्ह क्रॉस का,
सज्जित माधवी लताओं से; श्वेताभ कपोतिनि अपने पर
हौले-हौले खिड़की पर फैलाती, लगती मानो उड़ान
भरती बैंगनी बादलों से । हरिताभ वीथिमय द्वीप-पुँज
हैं गिरा रहे अपनी कोमल छायाएँ पार जलाशय के;
एकान्त पल्लवी भूमि भाग, जो निज धूमिल प्रकाश द्वारा
दिखलाते हैं 'डॉक' पर्ण, चकराते 'फॉक्स ग्लवस' अथवा
चमक जंगली बिल्ली की आँखों की या 'बर्च' पेड़ के
कोमल रजत वृन्त अथवा लम्बी दूर्वा, जो ढकती नाला ।
तरुण निहार रहा था बड़ी देर से ये मनहारी
दृश्य, व्योम था भिगो रहा पर्वती पुष्प दल तुहिन कनों से,
तभी तरुण की ज्ञानेन्द्रिय ने पकड़ी रजत-तूर्य-ध्वनि । उसको
आह भरी यह आशा आनन्दों से; रक्षक-दृष्टि-परिधि ने
सब्जी घोड़े ढूँढ़ निकाले उछल कूद करते घाटी में :
अब पायेगा शीघ्र मित्र प्यारे अपने वह :
अस्तु, व्यग्रता से अतिशय वह खेता नौका,

श्रौर शीघ्र वह बहा रहा है जल के तल पर,
वधिक हुश्रा वह बुलबुल की पहली मद्धिम रागिनि के प्रतिः श्रौ'
नहीं ध्यान देता उन श्वेत मरालों पर जो मृदु सपनाते;
लुप्त हो रही उसकी चेतनता उसके समक्ष ही पूरी।

श्रब वह मुड़ता है भू के प्रक्षेप बिन्दु से
परिलक्षित होता जिससे दुर्ग उदास व गौरवशाली :
दोनों पके हुए श्राड़ू पर एक नहीं ममाक्षि श्रमरेगी,
पूर्व की उसकी लघुतरणी का सिरा लगे जाकर उन 'मरमर'
के सोपानों में जो जल में मग्न पड़ी हैं :
श्रब वह उनके ऊपर द्रुत गति से चढ़ता है,
श्रौर ठहरता है मुश्किल से भिड़े द्वार खोलने वहाँ पर :
शीघ्र कूदता है कक्षों, श्रौ' गलियारों के
श्रोक-काष्ठ में निर्मित फर्शों के ऊपर वह।
मधुर सुकोमल ध्वनियाँ ! वे लघु चमकीले दृगवाले
पदार्थ जो तिर रहे वायु में नील परों पर,
टप, टप, टापों की ध्वनियों से कहीं श्रल्प श्रनुभूत हुईं थीं
ये ध्वनियाँ; श्रांगन में वह उछला जैसे ही
दो कुलीन टट्टू जिन पर श्रारोहित थी महिलाएँ,
वल्गा हुई शिथिल, नतग्रीवा, दिये दिखाई।
जबकि किले के नीचे के फाटक से,
ले ही श्राये मधुर भार वे श्रपना,
कैसा चुम्बन, मधुमय, कैसा मादक ! उसने
किया प्रत्येक कामिनी के कर का स्पर्शन !
कितनी कोमलता से उनके पायल झनके !
कितनी मधुनिद्रा में उनकी श्रात्मा खोयी !
जबकि स्नेह के मरमर स्वर ने किया बिलम्बित उसको
उनके चरणों को धरती पर श्राने देने में। श्रति
मादक झुकाव से श्रपने छोटे टट्टू पर से,
वे उसकी ग्रीवा पर झुक गईं : कौन जाने वे
विनमन के थे श्रश्रु या कि सांध्य के तुहिनकन
उनकी श्रलकों में उलझे थे, उसको श्रनुभव होता

भीगेपन का अपने गालों पर, देता है आशिष
कम्पित अधरों से, औ' अपने आर्द्र नयन से,
निज बाहों की सकल कोमला मादकता से।
एक बाँह लहराती ऐसी शुभ्र कि मानो कोई
परी देश का हो विस्मय, कंधे से लटका सबसे
श्वेत 'केशिया' के झुक रहे गुच्छ, जो लगते
धुले हुए ताजे ग्रीष्म की फुहारों से : औ' इसको
मसला अपने उल्लसित कपोलों से, जैसे
अब और हर्ष की खोज नहीं करनी उसको :
आई सहसा उसके कानों से ध्वनि सर क्लैरी—
मौण्ड महोदय की, मानो हो वस्तु परे उसकी सम्प्रत हस्ती से;
अतएव, गिरा दी धीरे से निज उष्ण बाँह,
नव स्पन्दन से था कम्पित वह उनकी मृदु थर थर से, औ'
आगे बढ़कर उनके विनम्रता से झुकने से,
धन्यवाद ईश्वर को उसने दिया, कि उसके सुख अनंत थे,
जबकि दबाया था सावेश भाल से अपने,
वह कर प्रभु ने जिसे बनाया दुखिया का दुख हरने;
वह कर जिसने जग के शुष्क पठार खंड से,
कैलीडोर किया गौरवान्वित कीर्ति कार्य से !

भृत्यों और मशालों के प्रकाश में
वहाँ खड़ा सामंत थपथपाता तुरंग की अयाल के
उड़ते बालों को; वह था लम्बी आकृति का भव्य पुरुष :
उसकी कलत्र के छोर उड़े ऐसे मानो
हों किसी वन्य पेड़ के बेर, अथवा जैसे
'पारद' की नभचारी टोपी। उसका था कवच खचित ऐसी
सुघराई से कि ऊपरी दृष्टि न कह सकती वह था कठोर
औ' इस्पाती; पर वह यथार्थतः थी कोई गौरवशाली
आकृति, कोई उज्ज्वल कृशरूप, कि जिसमें कोई नव आत्मा
नभ से आकर रहती हो, औ' मानुषी नयन के सम्मुख ही
अपने को जिसने प्रकटाया। यह है सर गोंडीवर्ट वीर
दूर तक व्याप्त है जिसका यश, यह कहा किसी ने

क्लैरीडोर कर्ण में। तभी तरुण योद्धा आगे आया
डग भरकर। उसके आनन पर विराजती दरबारी स्मिति,
उसने कवचित कर बढ़ा दिये आगे, उस
विशाल दृगमय विस्मय का, औ' एक महत्त्वाकांक्षी
लड़के की लालसायुक्त उष्मा का स्वागत करने :
जो उन मुस्काती महिलाओं को ले जाते में अक्सर,
कर उठता था वह घूम-घूम तारीफ शान से
पड़े हुए उस सरदारी अवगुण्ठन की; जब वे पहुँचे
पाँत सहारे उन फानूसों की, जो चमक रहे थे
ऊँची छत वाले कक्षों से, औ' उनसे होते थे
उनके वे फौलादी आभूषण थे प्रशान्त प्रतिबिम्बित।

सत्वर बैठ गये वे एक मनोरम सुखद कक्ष में,
मधु अधरित महिलाएँ तो कर चुकीं पूर्व अभिनन्दन,
उन सब हरियाले पत्रों का, जो गवाक्ष पर फैले
सर गौन्डीबर्ट ने उतारी अपनी सब फौलादी
सज्जा चमकीली, उतार कर हल्के होकर, खुश होते हैं,
और वायु का सेवन करते मुदित भाव से,
उतार कर वह भारी बोझा, और जबकि लखता है
क्लेरी मौण्ड चतुर्दिक उनको स्नेह दृष्टि से,
क्लैरीडोर तरुण उत्कंठित है सुनने शौर्य की कहानी,
एवं सब अयोग्यता के निष्कासक वीरों के कृत्यों को :
और कि कैसे भुजाशक्ति से दूर किया नैराश्य और भय
सुन्दरि युवती से : भर ऐसे भावों से प्रत्येक कामिनी
को उसने चूमा ऊष्मिल। भर आया उसके दृग में तब
अनुपम पौरुष। प्रत्येक परस्पर को लखता तिरछे-तिरछे;
औ' तब उनके अवयव भर गये मुस्कराहट-मधु से जैसे
अभिमंत्रित द्वीपों पर हँसता है नीलगगन।

मंथर मदिर पवन की लहरी आई वन प्रान्तर से,
मद्धिम उससे हुई शमाँ की बाती,

'फिलोमेल'[1] के दूर कुँज से स्पष्ट गीत ध्वनि आई,
नीबू के तरु से उठता साभार अगुरु : रहस्यमय थी
वन्या, सुदूर-पर सुनी गई वह तूर्य-ध्वनि :
प्यारा था चाँद वायु में बिलकुल एकाकी;
प्यारी थी इन प्रमुदित मर्त्यों की वार्ताएँ,
मानो कि व्यस्त आत्माएँ हों जब तोरण
हो रहे प्रतीची के मुद्रित; अथवा वह मृदु
भन, भन, जिसको हम सुनते हैं जब 'हैस्परेस'[2]
होता है उदित। मधुर निद्रा हो उनकी···

---

१. बुलबुल का मूलनाम—यवन दंतकथा में फिलोमेला ऐन्थेस के राजा की कन्या थी, जिसका विवाह थ्रेस के राजा से हुआ था। पति से अपमानित होकर यह बुलबुल बन गई।

२. सांध्य तारा।

टिड्डे और मंजीर पर एक सॉनेट

नहीं कभी भी मृत होती है, वसुन्धरा की कविता,
सकल पखेरू छिपते तरु छाँहों में होकर मूर्च्छित
तपते रवि से, नव-कर्तित दूब के चतुर्दिक सरपत
से लेकर सरपत तक, तब कोई स्वर है बह जाता;
यह है टिड्डे का—जो ग्रीष्मिल विलास का है करता
वह नेतृत्व—अंत उसने इन सौख्यों का जाना कब ?
क्योंकि हुआ करता वह श्रांत सुखद क्रीड़ाओं से जब,
किसी मनोहर दूर्वासन के तले थकन निज हरता।
वसुंधरा की कविता धारा कभी नहीं रुकती है :
एक अकेली शिशिर-साँझ पर, जब कि कुहर की चादर
नीरवता पर छा जाती, भट्टी में से तब उठकर
होती मुखर झँकार मँजीरे की, अविरत करती है
जो ऊष्मा में वृद्धि, अर्द्ध-तंद्रित जन को लगती जो
टिड्डे की, ज्यों दूर्वायित शैलिनियों से आती हो।

निद्रा के प्रति

ओ, नीरव निशीथ की शान्ति-लेपिका सुखमय !
मुद्रित करती, सजग उँगलियों से तू मृदुमय,
तिमिर-रंजनित नयन हमारे, जो आंकुजित
द्युति से, दैविक-विस्मृति में छाया परिवेशित;
ओ, प्रशान्तिधर नींद, अगर यह तुझे सुहाता,
मेरे आतुर नयन मूँद, जब मैं यह गाता
तव स्तवन, प्रतीक्षा कर या, पूर्व पोस्त तव वितरित
करे लोरिमय दानावलियाँ, मेरी सेज चतुर्दिक;
तब तू मुझको बचा, अन्यथा विगत दिवस चमकेगा
मेरे सिरहाने पर, अनगिन दुःख की सृष्टि करेगा;
बचा व्यग्र अंतरात्म से भी जो बल बटोरता है
अब भी, क्योंकि छछूँदर-सी तमसा उत्खनन-रता है;
घुमा दक्षता से तैलित कोष्ठों में कुँजी तू अब,
और मूँद दे मेरी आत्मा की मंजूषा नीरव।

एक सॉनेट

ज्यों पलपल पर बढ़े तिमिर पर से मँडरा कर,
प्राची द्युति में रजत विहंग कुलाँचे भरता,
पंखों पर, जिनसे केवल उल्लास बिखरता,
त्यों तव प्राण उड़ गया उन लोकों के भीतर,
जो हैं ऊपर, जिनमें शान्ति प्रणय अविनश्वर;
जहाँ आत्माएँ प्रमुदित, हैं शोभित होतीं,
दीप्त नखत-रश्मिल चक्रों से, और भोगतीं
उच्च सुखों को, जिनके साक्षी सुखी रहे पर।
वहाँ पहुँच तू या तो अपना राग मिलाता
अमरों के रागों से, जिसे स्वर्ग भी सुनकर
एक उच्चतर सुख से भरता, या कि उतरता
चीर पवन को है तू, प्रभु इच्छावश, लेकर
पुण्य-संदेश—उच्चतर सुख कैसा ? क्यों करता
है विषाद खण्डित उल्लास हमारे सुखकर ?

एक सॉनेट

काले वाष्प कणों से ये मैदान हमारे घुटते आये
एक दीर्घ नीरस मौसम तक, तब दक्षिणी वायु आती है
लिये गर्भ में ऐसा एक दिवस, जिससे सब धुल जाती है
रुग्ण व्योम की अशुभ कालिमा, चिन्ह मलिनता के जो छाये।
चिन्तित, आतुर मुख विमुक्त हो, तजता अपनी सब पीड़ाएँ,
करता 'मई' मास के सुख का अनुभव, मानो कोई फिर से
उसे मिला हो दीर्घ-लुप्त अधिकार; पलक करते क्रीड़ाएँ
गमनोन्मुख शीतलता से; जैसे करतीं पावस टप-टप से
पाटल पँखड़ियाँ; सब ओर हमारे है अब घिरता आता
शान्त विचारों का आवह, जैसे, चटके नव कोमल किसलय—
पकते फल खामोशी में,—नीरव झुरमुट पर है मुस्काता
हेमंती प्रदोष का दिनकर—मधु 'सेफो' के कपोल मृदुमय—
श्वासोच्छ्वासन सोये शिशु का,—धीमे घड़ी-काँच से गिरता
बालू का कण—कानन की लघु सरिता,—कोई शायर मरता।

मानवी ऋतुएँ

ऋतुएँ चार भरा करती हैं वत्सर का मापन,
मानव के मानस की भी होती हैं ऋतुएँ चार :
उसका आशामय वसंत है जबकि स्वच्छ कल्पन
सहज रूपमय फैलाया करती अपना विस्तार :
उसका ग्रीष्म जबकि भाता है, पगुराना सविलास
मधु-सित वासंती यौवनमय-चिन्तन भोजन का :
यों सपनाना उच्च, स्वर्ग के अब सर्वाधिक पास
होता जाता : आरम्भन उसकी हेमंती ऋतु का
होता, जब करता पर-सकुचित, शान्त गह्वरित प्राण :
पाता तृप्ति सहज सालस कर अवलोकन कुहरे का :
शुभ्र पदार्थ गुजरते यों ही, अलख, कि प्रवेश पथ का
ज्यों हो कोई उत्स। शरद आता, तब होते म्लान,
पाण्डु, विकृत सब अंग, घेरता उसको विरस विराग,
हो न अगर यों, तो निज मर्त्य प्रकृति देगा वह त्याग।

ख्याति पर

कितना उत्तेजित मनुष्य है, जो अपनी न डाल सकता है
दृष्टि मर्त्य दिवसों के ऊपर, निरुद्वेग शोणित से अपने :
करता है विक्षुब्ध स्वयं अपनी जीवन-पुस्तक के पन्ने :
अपना शुभ्र नाम उसके कुमार पन से वंचित करता है :
यह तो इस प्रकार ही है कि स्वयं अपने को तोड़े पाटल,
अथवा उलचे निज कुहरिल प्रफुल्लता बेरी पकी हुई,
या ज्यों ढीट यक्षिणी के सम, भरे जलपरी ही कोई
अपना पावन गह्वर, धूमिल उदासीनता से श्यामल;
किन्तु छोड़ देता है पाटल, अपने को झाड़ी पर ही,
ताकि हवायें चूमें, पावें तृप्ति कृतज्ञ मक्षिका-दल :
पकी हुई बेरी अब भी है अपनी सज्जा पहन रही,
चमक रहा है शान्त सरोवर का, स्फटिक सरीखा तल :
तब क्यों मानव ही, गरिमा हित वसुधा में संतप्ति भरे,
और भयद कुपंथ हित, दूषित वह अपना निर्वाण करे।

आशंका

मिट जाये अस्तित्व न मेरा, जब मुझको आशंका होती,
पूर्व कि मेरे भरे हुए मानस को, मेरी लेखनि संचित
करे, उच्च-संकुलित ग्रन्थ-राशि के समक्ष, जो कि यों लगती,
मानो पकी फसल समृद्ध अन्नागारों में हो एकत्रित :
जब निहारता हूँ मैं, नखत-जड़ित रजनी के मुख को, जिस पर
ऊँची-प्रेम-साधना के विराट मेघिल प्रतीक हैं छाये :
और सोचता हूँ कि न जीवित रह पाऊँ, उनकी छायाएँ
अंकित करने, अवसर के जादुई कर से : जब होती अक्सर
मुझको यह अनुभूति कि देख मैं और नहीं सकता हूँ आनन
तेरा, ओ, मेरे घंटे भर के मनहर संगी, आता जब
मन में यह विचार कि और न कभी कर सकूँगा आस्वादन
मैं परिवत अप्रतिबिम्बक प्रणयिक सत्ता का : पाता हूँ तब
निज को निपट अकेला, विस्तृत भू-तट पर, मैं तब तक चिंतित
होता, जब तक प्यार और यश होते नहीं शून्य में गर्भित ।

मैं क्यों हँसा आज की रात ?

मैं क्यों हँसा आज की रात ? न बतला सकता कोई स्वर :
कोई सुर न, न कोई असुर, विपुल दायित्व वहन-कर्त्ता
स्वर्ग, नरक से कष्ट करेगा देने को इसका उत्तर।
तब अपने मानवी हृदय की ओर, तुरत हूँ मैं मुड़ता :
हृदय ! यहाँ पर मैं हूँ, बस उदास, औ', एकाकी :
मैं क्यों हँसा ? पूछता तुझसे, ओ, मेरी पीड़ा नश्वर !
अंधकार ! ओ, अंधकार ! मैं व्यर्थ भर रहा हूँ सिसकी,
स्वर्ग, नरक से या कि हृदय से पाने को इसका उत्तर।
मैं क्यों हँसा ? जानता हूँ मेरी हस्ती की शर्त रही,
इसका सर्वोच्च सौख्य पाने को, उड़ता है मेरा कल्पन;
तो भी, निस्पंद, काश ! मैं होता, ठीक इसी निशीथ को ही
और देखता होता इस जग की सजधज पर पड़ा कफन :
कविता, कीर्त्ति, रूप—सचमुच प्रचंड हैं, पर इनसे निश्चय,
है प्रचंडतर मृत्यु,—उच्च पारितोषिक है जीवन का यह।

बेन नेविस[1]

म्यूज ! एक पाठ पढ़ मुझको, और जोर से इसे गुँजार,
कुहर—पटल में आच्छादित, नेविस की चोटी के ऊपर !
सोच रहा हूँ मैं नीचे के इन विवरों की ओर निहार,
जिनके ऊपर भी लिपटी है भीगी कुहरे की चादर—
चाह रहा मैं, बस इतना ही पाये मनुज नर्क का ज्ञान;
ऊर्ध्व विलोका, धूमिल कुहर वहाँ भी,—मानव इतना ही
हाल स्वर्ग का कहे पाये : कुहरे का ही है तना वितान
पृथ्वी के समक्ष, मेरे नीचे,—विस्तार दृष्टि का ही
मानव का अपना ऐसा ही, इतना ही धूमिल ! चट्टान
अनगढ़ हैं मेरे पद तले—अवाक् यक्षवत, मर्दन ही
करता पग से मैं उनका—जिस ओर दृगों को होता भान,
बस कुहरा, चट्टान, न केवल इसी शिखर के ही ऊपर,
प्रत्युत, है मानसिक शक्ति, चिन्तना-जगत के भी भीतर।

(१८१८)

---

१. इंग्लैण्ड के एक पर्वत शिखर का नाम।

होमर के प्रति

खड़ा हुआ था मैं एकाकी दैत्य सदृश अनजाने में,
तेरे, औ' 'साइक्लैडस'[1] के मैंने थे सुने प्रशंसा-स्वर,
कुछ ऐसे कि किनारे पर बैठे-बैठे कोई चाहे,
दर्शन करना सहसा मूँग-कीट का गहन सिन्धु भीतर।
तू तो चक्षुहीन था! शीर्ण यवनिका थी अवश्य तब तो!
क्योंकि किया 'जव' ने बैकुण्ठ अनावृत्त तेरे प्रवेश हित,
'नेपच्यून'[2] ने किया मत्स्य का एक शिविर तुझको स्थापित,
और 'पैन'[3] ने गीत वीथियों के अनगिन गाये तुझको:
अहा! विचरता है आलोक, अँधेरे के तट के ऊपर,
और करारे दिखलाते पग-मर्दन-विहीन हरियाली;
अर्द्ध-निशा के अंतर से प्रभात की कलिका चटक रही;
तिगुनी दृष्टि सन्निहित है इस सूक्ष्म अंधता के भीतर:
और नयन की ज्योति तुम्हारे पास रही, कविवर ऐसी,
तीनों लोकों की रानी 'डाइन'[4] ने ही पाई वैसी।

---

१. एजियन सागर में द्वीपमालिका का नाम है।

२. वरुणदेव के बाद का सागर का देवता।

३. पान—यवन पशुदेव, जिसे संगीत से वड़ा प्यार है।

४. डाइन (Diana) रतिरानी।

ख्याति

ख्याति एक आवारा लड़की के समान शरमाया करती,
उनसे जो अति दास्य भाव से करते उसे ग्रहण हैं,
किन्तु किसी अल्हड़ लड़के को करती वह अर्पण है
अपने को, निश्चिन्त हृदय के ऊपर है वह मरती;
यह है जिप्सिन एक,—नहीं बोलेगी हरगिज़ उनसे,
जो न सीख पाये, सुख से रहना उसके अभाव में;
एक छिनाल, न हुआ मर्मरण है कानों में उसके,
जो समझा करती कि बात करते उसके बारे में,
करते उसकी बदनामी बस; सचमुच है वह जिप्सिन,
नील नदी-जा, स्पृह 'पोटीफर' की है वह भाभी;
ओ, इश्क के मरीज़ो, कवियो! बदला लेना तुम भी
उसके अवहेलन का, करके उसका भी अवहेलन;
प्रेमी कलाविदो! पागल हो? उसको श्रेष्ठ प्रणति से
करो विदा, लग लेगी पीछे, जो यह राजी तुमसे।

(१८१९)

चमकीले नक्षत्र : अंतिम सॉनेट*

चमकीले नक्षत्र ! काश, मैं तेरी भाँति अटल हो पाता—
किन्तु न होता दूर रजनि में यों एकान्त प्रभा में लटका,
और खोलकर पलक चिरन्तन अविश्रान्त मैं यों निहारता,
ज्यों हो एक धीर, अविनिद्रित संत तपस्वी ही निसर्ग का;
जलधारों को, जो 'क चतुर्दिक् वसुधा के मानव-पुलिनों के,
स्नान-शुद्धि के अपने याज्ञिक कर्मों का करतीं सम्पादन,
अथवा शैलों और परिसरों पर के निपतित होते हिम के
नूतन कोमल नकाब का हरग़िज़ करता मैं अविरत घूर्णन—
नहीं—यह नहीं करता—तो भी अविचल, अपरिवर्त्य मैं होता,
अपनी सुघर प्रेयसी के उन्नत सुवक्ष का सिरहाना कर
आरोहण-अवरोहण-स्पन्दन का अनुभव करता, मैं सोता,
पाता सतत स्वयं को एक मधुर अशयन में, तब जग-जग कर,
होता तो भी, तो भी, उसकी मृदु-उच्छ्वसित श्वास सुनने हित,
और इस तरह जीता चिर, या मर जाता मैं होकर मूर्च्छित ।

(१८२०)

---

* इस सॉनेट को कुछ आलोचक उसके अंतिम काल की रचना नहीं मानते ।

देवि ऐग्निस की संध्या

(Eve of St. Agnes)

रचना —जनवरी १८१८
संशोधन—सितम्बर १८१९
प्रकाशन— १८२०

"इसके अन्दर हाइपैरियन की सी शक्ति नहीं है, और न लैमिया की सी आग है : न ही उसके महानतम प्रशस्ति-गायन की सी उच्च कोटि की निर्दोष दक्षता है। तो भी कीट्स (इस कविता में) अंततः विजेता की भाँति अपने राज्य में प्रवेश करता है।"

—सिडनी कॉलविन

१

देवि ऐग्निस[1] की संध्या थी—आह ! कड़कता शीत कठोर;
हिम तुषार में जाम हो गये थे, उलूक खग के पर-छोर;
जमे दूर्वासन पर लँगड़ाता चलता कम्पित खरगोश :
ऊनी परतों वाली भेड़ों के दल थे बिल्कुल खामोश;
मरियम[2]-चित्र समीप खड़े बूढ़े की उंगलियों के पोर,
माला के मनके गिनते हो आये थे अब सुन्न कठोर;
और जबकि घनतर होता तुषार में उसका श्वासोच्छ्वास,
बिन टूटे, उड़ता जाता था अंतरिक्ष की ओर अयास :
मानो किसी पुरातन धूपदान से लेकर अँगड़ाई,
पावन धूम्र-शिखा सौ सौ बल खाती चढ़ती इठलाई।

२

पूजन के पश्चात्, वृद्ध तापसी सहज धीरज के साथ,
उठता घुटनों के आसन से, लेकर अपना दीपक हाथ;
नंगे पैर, शीर्ण आनन से, धीरे-धीरे चलता है
गिरजाघर के पार्श्व सहारे; और सोचता जाता है,
यह जो दोनों ओर मूर्तियाँ, सुभटों की, महिलाओं की,
(जो बंदी काली पालक नाशिनी छड़ों के घेरों की
लगतीं मानो निजी स्तब्ध गिरजों[3] में वे करतीं पूजन)
शीत हिमानी में ये भी होती जातीं हैं निश्चेतन :

---

१. २१ जनवरी का दिन। रोमन कैथोलिकों की सबसे बड़ी देवी का पर्व। देवि ऐग्निस रोम की एक सुन्दरी कन्या थी, जिसने इटली के क्रूर नृपति 'डाइक्लेशियन' के अत्याचार सहकर शहादत प्राप्त की। बाद में उसके नाम का एक गिरजा भी उसकी समाधि पर बन गया। देवि के समान उसकी उपासना होने लगी। इस देवि के विषय में यह विश्वास प्रचलित था कि इसकी उपासना की विधियों का पालन करने से कुमारी युवतियों को अपने भावी पति के दर्शन हो सकते हैं।

२. विरजिन मेरी (प्रभु ईशू की माँ)।

३. चूँकि वे पाषाण-मूर्तियाँ हैं, इसलिये कवि ने गिरजों को 'स्तब्ध' कहा है।

इनके पास गुजरता : दुर्बल आत्मा सोच नहीं पाती,
हिममय शिरस्त्राण कवचों में ये सब कैसे जड़ियातीं ?

३

अब वह उत्तर ओर मुड़ गया; पार किया छोटा सा द्वार,
तीन कदम ही चला, कान में पड़ी मधुर गायन-झंकार,
जिसने रह-रह छुआ मर्म को, सजल हो गये वृद्ध नयन;
किन्तु नहीं—उसने अपने मृत्यु के घंट का नाद श्रवण
किया कभी का—जीवन के सुख सकल हो गये उसे अतीत,
त्यागा माया-मोह सभी, अब केवल एक लक्ष्य से प्रीत,
देवि ऐग्निस की संध्या पर तप में होना घोर विलीन;
गया दूसरे पथ से, फिर निज भस्मासन पर हो आसीन,
आत्म-शुद्धि के हेतु किया उसने सारी रजनी भर जाप,
किया पापियों के पातक-मोचन हित उसने पश्चाताप।

४

मृदु साँगीतिक उपक्रम का रस ले पाया बूढ़ा तापस,
क्योंकि खुले रह गये, गढ़ी के द्वार अनेक शीघ्रतावश :
सत्वर, आने लगा समीर-तरंगों के ऊपर तिरता,
रजत-तूर्य्य का तीव्र नाद, रजनी-अन्तर गुँजित करता;
चौरस बृहतकक्षि मदमाते, अपनी धज में दमक रहे,
अनगिन दीपों के प्रकाश में, गर्व भरे वे गमक रहे;
करते भव्य-छटा से अपने अतिथि जनों को अभिनंदित;
आतिशदान उठाये शिर पर, देवदूत वे उत्कीर्णित,
ताक रहे चिर आतुर-दृगमय—पीछे उड़ते थे कुंतल,
और रखे थे पंख गुणितवत उनके सीने पर निश्चल।

५

धारे कलगी, छत्र, विभव के प्रसाधनों से जगर-मगर,
उत्सव की मादकता से मुखरित करते रजनी-अन्तर;
घोर हर्ष का रोर उठाते थे अनेक जन दिखलाई,
जैसे किसी तरुण मानस में भरी हुई हों नई-नई
पौराणिक अद्भुत रोमानी शौर्य्य-विजय की तस्वीरें,
जो परियों सी मँडरातीं। इनको छोड़े, आगे होलें

एकाकी तन्मय होकर, उस महिला के समीप जिसका
चित्त कर रहा था चिन्तन अविरत निज प्रणयी की छवि का,
और पंखिला देवि ऐग्निस के शुभ अनुग्रह की थी चाह,
बड़ी-बूढ़ियों ने जिसके पाने की बतलाई थी राह।

६

जाना उनसे कैसे हर्ष दृश्य अवलोकन कर पायें,
देवि ऐग्निस की संध्या पर, युवा कुमारी कन्याएँ;
कैसे पा सकतीं प्यारों से वे जी भर कर पूजा प्यार,
मधुमय निशीथिनी में चुम्बन से भीगी प्रिय की मनुहार;
अगर कहीं वे इन विधियों का पूरा पालन कर पायें,
जैसे, निराहार रह कर वे अपनी शैया पर जायें,
ऊर्ध्वमुखी हो सोयें सित नलिनी से अपने अंग पसार,
किन्तु न पीछे मुड़कर डालें अपनी नज़र एक भी बार;
केवल ऊपर रहें देखतीं, और धरें प्रभु का ही ध्यान,
सकल इष्ट वर होवें पूरे, मागें उससे यह वरदान।

७

इसी सनक ने किया भावप्रवण सुन्दरि-मन पर अधिकार;
था संगीत व्यंजनातुर, ज्यों व्यथित देवता का चीत्कार;
सुना स्यात् ही इसको उसने, उसके क्वाँरे दिव्य नयन
जमे फर्श पर रहे, गुजरते रहे युगल करते नर्तन;
दिया न उसने ध्यान, लिये सहनर्तन की मन में अभिलाष,
आये युवक सुभट कितने ही, लौटे होकर किन्तु निराश;
नहीं अप्रतिभ उनको उसकी तीव्र उपेक्षा कर पाई,
पर सच तो यह था कि उन्हें उसने न नजर भर देखा ही;
चित्त पड़ा था कहीं, सोचती वह व्याकुल रह-रह यह बात,
कब देखेगी देवि-स्वप्न, कब होगी मीठी आधी रात?

८

वह बेमन थी नृत्य-रता, सूना उसके दृग का आकाश,
अधरों के ऊपर आतुरता, उत्तेजित उसके उच्छ्वास:
पावन घड़ी समीप आ गई, वह भरती है साँस गहन,
चारों ओर हो रही उसके है 'टिम्ब्रेलों' की छन, छन:

उठते जन संकुल के रोष भरे, या क्रीड़ामय मर्मर,
राग-विराग, घृणा, अवहेलन भरी दृष्टि पड़तीं उस पर;
उसकी नयन-यवनिका पर, कल्पन-परि की क्रीड़ा अभिराम
होती थी, तब जिसने किया, सुन्दरी को सबसे निष्काम;
सिवा देवि ऐग्निस के, और अनवधे मेष-शावकों के[1],
औ' अगले प्रातः से पहले मिलने वाले सब सुख के।

९

सोच रही थी शयन हेतु जाने की ही, वह बारम्बार,
तो भी जा न सकी। इतने में आ पहुँचा कछार के पार,
तरुण पोर फीरो विदग्ध उर में भर मैडेलिन का प्यार :
सिंहद्वार के पास दुर्ग—सह-प्राचीरों में छायाकार
खड़ा माँगता है संतों से, केवल एक यही वरदान,
मिले प्रिया की एक झलक बस, पूरा हो दिल का अरमान :
इस नीरस निशीथ में पाऊँ, देख प्रिया को पल भर ही,
प्रेम-कुसुम से करूँ अर्चना, पड़े किसी की नजर नहीं :
वचन, विनति, चुम्बन, आलिंगन का भी अवसर पाऊँ स्यात्,
अनहोनी क्या, पहले भी तो घटित हुई है ऐसी बात।

१०

वह प्रवेश करता है कोई मर्मर, भन-भन की आवाज,
हो न कहीं पर, वर्ना सौ तलवार गिरेंगी बन कर गाज
उसके दिल के ऊपर, जो कि प्रणय की तप्त गढ़ी है एक,
उसके लिये भरे कक्षों में बर्बर खूनी झुण्ड अनेक;
क्रूर शत्रु, उतप्त रक्त लार्डों के दल, कुत्ते जिनके,
उसके वंश विरुद्ध अनवरत, 'शाप' 'शाप' ही भोंकेंगे।
उस पातकी भवन में कोई नहीं एक ऐसा इंसान,
जो कर सके तरुण को अपनी आश्रय-छाया, दया, प्रदान,
सिवा' एक बूढ़ी नारी के, जो है कम्पवत, निरुपाय,
दुर्बल, शिथिल आत्मा उसकी, काया से नितांत असहाय।

---

१. यह पंक्ति इस बात का संकेत देती है कि देवि ऐग्निस की उपासना के लिये दो अनवधे मेषशावक अर्पित करने की प्रथा थी।

११

आह, सुखद संयोग ! आगई बूढ़ी काया तभी वहीं,
जो निज गजदंती मूठी-छड़ के आश्रय पर ररक रही,
उसी ओर को, मशाल की लौ से छिपकर वह खड़ा जहाँ,
चौड़े कक्ष-स्तम्भ-पार्श्व में, नहीं श्रवित हो रहा वहाँ
उत्सव का आनंद-रोर, मदमत्त समूहों का गाना।
पहले बुढ़िया उसे देख चौंकी, तुरन्त फिर पहचाना;
और काँपते कर में थामी, तरुण उँगलियाँ बुढ़िया ने,
बोली हो भयभीत, "भाग ! क्यों यहाँ आ गया है मरने ?
भाग ! पोरफीरो ! न ठहर ! छिप जा ! वरना, मरना अनिवार !
आज रात को यहाँ जुड़ा है झुण्ड भेड़ियों का खूँख्वार !"

१२

"भाग ! यहाँ से ! वामन हाइल्ड ब्रांड यहीं है ! जल्दी भाग !
जिसने कल ज्वर में तुझको, तेरे घर, जर, जमीन, औ' बाग
सबको जी भर कोसा, और यहीं पर है वह निर्मम क्रूर;
श्वेत केश लॉर्ड मॉरिस भी : भाग प्रेतवत, जल्दी दूर !"
"आहा ! दादी ! फिक्र न कर तू ! क्यों तू ऐसी कम्पित म्लान ?
"यहाँ कौन आयेगा ? व्यर्थ हृदय में होती है भयमान !
आ, जा ! बात करें इस कुर्सी पर ! पहले बतला मुझको
कैसे..." पर भय से आशंकित, बुढ़िया ने रोका उसको
"यहाँ नहीं ! संतों की शपथ ! तुरत पीछे आ ! ठहर नहीं !
वर्ना तेरी कब्र वत्स ! होंगे सत्वर यह पत्थर ही !"

१३

वह पीछे-पीछे चला एक महराबी पथ में से होकर,
पुँछ-पुँछ जाते मकड़ी-जाले उसकी कलगी से अक्सर;
और बड़बड़ाई वह ज्योंही, "यह है अशुभ दिवस कैसा !"
एक चन्द्रिका-ज्योतित कमरे में आ पहुँचा वह सहसा;
यह कमरा था छोटा, शीतल, धूमिल, पीला, जालीदार;
बोला वह हो विकल, 'कहाँ है मुझे बता दे मेरा प्यार ?
दिखा मुझे है कहाँ प्रेयसी मेरी, देता तुझे कसम
उस करघे की, कसम तुझे है, जो है दैविक पावनतम;

मरियम की प्रच्छन्न पुजारिन,[1] केवल जिसे देख सकतीं,
जब वे पावनता से ऊन देवि ऐग्निस का हैं बुनतीं[2] ।"

१४

देवि ऐग्निस ! आह, यही है देवि ऐग्निस की संध्या !
है यह मंगल पर्व, किन्तु इस पर भी होगी नर-हत्या;
शुभ्र दिवस के ऊपर, आज लगायेंगे निर्दयी कलंक;
पहले ठहरा जल जादूगरनी की चलनी में निश्शंक;[3]
कर ले वशीभूत तू 'ऐल्व'[4] और 'फे'[5] जैसे असुरों को,
ऐसा साहस तभी कर सकेगा, अचरज होता मुझको
तुझे देख कर यहाँ तरुण ! प्रभु करें, हाय ! रक्षा तेरी ।
देवि ऐग्निस की संध्या ! खेलती खेल स्वामिनि मेरी,[6]
आज रात को ही ! हे देवो ! निश्चय छलो आज उसको;
पर मैं पल भर हँस लूँ, ढेरों समय पड़ा फिर रोने को ।

१५

क्षयशः शशि उजियारी में, मुस्काती है वह धीमे से,
जबकि पोरफीरो निहारता है उसका आनन ऐसे,
मानो नटखट भ्रमित बाल, उस बुढ़िया को तकता सायास,
कौतुकमयी पहेली-पोथी, बन्द रखी हो जिसके पास,
जब चिमनी के कोने में, बैठा करती चश्मा पहने;
पर चमके उसके दृग सत्वर, बतलाया जब बुढ़िया ने
अपनी स्वामिनि का आशय उसको, तब रोक नहीं पाया
अपनी आँखों के आँसू, जब ध्यान उसे सहसा आया

१-२. स्त्री-उपासिकाएँ, जो पवित्र और एकान्त वातावरण में रहती थीं । इनका काम अर्पित मेष-शावकों का ऊन कतर कर बुनना था, पोर फीरो उसी करघे की शपथ दिला रहा है ।

३. जादूगरनी के अति मानवीय कार्यों की सूची में चलनी में पानी ठहराना भी है ।

४-५. रोमन दंत-कथाओं के 'ऐल्व' और 'फे' उपद्रवी असुरों में प्रमुख गिने जाते हैं ।

६. देवि ऐग्निस की कृपा प्राप्त करने के लिये व्रत, अनुष्ठान इत्यादि रखती है ।

उन तांत्रिक विधियों के पालन में सहती होगी वह शीत,
पौराणिक अनुश्रुतियों के अंक में शयत होगी सम्भीत ![1]

१६

सहसा एक विचार सकल-मुकुरित-पाटल जैसा आया,
लाजारुण हो उठे कपोल, व्यथित उर के ऊपर छाया
उत्तेजन का ज्वार : रखा वृद्धा के सम्मुख एक विचार;
सुन जिसको झल्लाई; देने लगी तरुण को यों धिक्कार,
'तू है निर्दय, और नराधम एक मनुज, समझी इस बार,
हट जा अब मेरी स्वामिनि को, सोने दे तू भली प्रकार,
जा, हट दूर और करने दे, उसे देवि का अब पूजन,
करने दे शिव सुर दूतों के साथ, स्वप्न में उसे रमण;
अच्छा है वह दूर रहे, तुझ जैसे मलिन-हृदय-नर से,
तू हरगिज वह नहीं, दिखाई देता है जो ऊपर से।

१७

"सब संतों की शपथ, कभी जो उसे हानि मैं पहुँचाऊँ,"
कहा पोरफीरो ने, "नहीं कभी महिमामय हो पाऊँ,
"जब अपनी अन्तिम प्रार्थना कहे मेरी दुर्बल वाणी,
"अगर करूँ जो उसका एक बाल भी बाँका, कल्याणी!
"या पशुता से उत्तेजित हो डालूँ दृष्टि एक भी बार,
"उसके सौम्य सुघड़ आनन पर, तो मुझको सौ सौ धिक्कार!
"प्यारी दादी! सच मानो, इन अश्रुकणों की शपथ हजार,
"तुम विश्वास करो, वर्ना मैं करके भयद्रावक चीत्कार,
"एक निमिष के भीतर अभी सजग करता हूँ अरि के कान;
"ललकारूँगा, फिर चाहे हों रीछ, और भेड़िये समान!"

१८

"अरे! व्यर्थ क्यों यह दुर्बल काया करता है भीति-मलीन?
"यह तो कम्पग्रस्त, श्लथ, अब मसान का मुर्दा है श्री-हीन;
"जिसका मरण घंट बज सकता, पूर्व कि होवे आधी रात,
"करती जो तेरे मंगल हित, पूजा-अर्चा संध्या-प्रात।"

---

१. मधुर अन्ध-विश्वासों में खोई हुई।

ऐंगेला के शिकवा भरे वचन से नरम हुआ सत्वर,
तरुण हृदय में उठा हुआ आवेश-ज्वार अब गया उतर,
और पिघलते उर से फूटे, ऐसे करुणाविगलित बोल,
जिनकी विह्वलता से गया वृद्ध नारी का हठ भी डोल;
"अच्छा, वत्स ! करूँगी ही अब, सब तेरी इच्छा अनुसार,
चाहे कितनी पड़े आपदा," कहती बुढ़िया आखिरकार।

१९

पहुँचायेगी उसको अतिशय गोपित, उसने दिया वचन
मैडेलिन के कक्ष तलक ही, और उसे करने प्रच्छन्न
एक कक्षिका में इतने एकाकीपन से, ताकि अयास
वह विलोकता रहे वहाँ से प्रियारूप की अनुपम राशि,
और जीत ले स्यात्, रात में उस अनूप दुल्हिन का मन,
जबकि असंख्य अप्सरायें, उसके दुकूल पर करें भ्रमण;
जब उसके शयनिल लोचन पर, पीला अभिमंत्रण छाये;
ऐसी मायाच्छन्न निशा में, कभी न प्रेमी मिल पाये,
जब से मायावी 'मरलिन' ने[1] अपना सकल दानवी ऋण,
दिया उतार 'असुर' को, जिससे पाया करता वह प्रेरण।

२०

बोली बुढ़िया, "अच्छा, अब होगा तेरी इच्छानुसार,
"आज जश्न की रात, वहाँ स्वादिष्ट व्यंजनों की भरमार
"होगी, और सजेंगे अनगिन मादक पेय पदार्थ सुवास;
"रखी मिलेगी उसकी बीन कशीदे के साँचे के पास;

---

१. यह पंक्ति कीट्स की अस्पष्ट अभिव्यक्तियों में से एक है। मरलिन इंग्लैण्ड के मध्ययुगीन नरेश, आर्थर के समय का एक प्रसिद्ध जादूगर था, जो स्वयं अपने जादू का शिकार हो गया था। मरलिन अपने जादू के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए एक असुर की सहायता लेता था। अतः वह ऋणी था। जब वह स्वयं अपनी प्रियतमा के कहने से अपने जादू का शिकार हो गया, तो उसका ऋण उतर गया। कीट्स इस अनुश्रुति के प्रयोग के बारे में स्पष्ट नहीं है। उसका आशय उस रात के तूफान के विस्तार को बताने का है, क्योंकि जब मरलिन की मृत्यु हुई थी, तो ब्रोसेलियेण्ड के वन में घोर तूफान आया था।

"मैं तो अब चलती हूँ, मेरे पास नहीं है अब अवकाश,
"मैं परोस भी पाऊँगी यह भोज, नहीं मुझको विश्वास,
"क्योंकि बड़ी दुर्बल हूँ; यहीं ठहर तू तब तक धीरज धार,
"और प्रार्थना कर, बेड़ा अवश्य ही हो जायेगा पार :
"आह ! करेंगी पति स्वरूप में मेरी स्वामिनि वरण तुझे,
"या न क़ब्र में भी मुर्दों के संग मिलेगा चैन मुझे।"

२१

यों कहकर, एंगेला ने प्रस्थान तुरत ही किया सभीत,
प्रणयी की अनंत घड़ियाँ भी, धीरे-धीरे हुई व्यतीत :
बुढ़िया आई लौट, युवक के कानों में की फुस-फुस बात,
किया इशारा पीछे आने; वृद्ध नयन थे भय से आर्त्त :
शायद लगा न कोई पीछे, इससे थे वे घोर सशंक;
पार अनेक स्याह गलियाँ की, तब वे कहीं हुए निश्शंक :
आये प्रमदा के प्रकोष्ठ में, जिसमें सजे रेशमी साज,
चारों ओर धवल, सित, पावन, नीरवता थी रही विराज;
गही तरुण ने शरण, प्रफुल्लित हुआ हर्ष से हृदय-कमल;
पर पीछे मुड़ गई तुरत, पथ की प्रदर्शिका भय-विह्वल।

२२

निज कम्पित कर, धर सोपान-रक्ष पर, बुढ़िया छू-छू कर,
खोज रही सीढ़ियाँ, खड़ी हो गई तभी सहसा आकर
वह सुन्दरि युवती, जो देवि ऐग्निस की अनुचरी अनूप,
जैसे वहाँ विराज उठा हो, किसी दिव्य आत्मा का रूप :
शमाँ रुपहली लिये हाथ में पावन भाव हृदय में भर,
मुड़ी, और उस बुढ़िया को नीचे ले आई सँभाल कर,
रक्षित चौरस एक चटाई पर : हो पोरफीरो तैयार,
अब तू और निहार प्रिया की शय्या जीभर बारम्बार;
हौले-हौले पग धरती वह आती है, लो ! वह आती,
ज्यों कोई वन्या गलगल विहगिनि भयार्त्त उड़-उड़ जाती।

२३

बुझी शमाँ की बाती सहसा, ज्यों ही उसने किया प्रवेश,
उसका हल्का धूम्र पीत चन्द्रातप में हो गया निःशेष;

द्वार लिये थे मूँद, साँस थी उत्तेजित, पर थी तैयार,
सकल वायवी प्रेतों, स्वप्नों को निहारने भली प्रकार :
जड़े हुए अधरों पर ताले, नहीं एक भी निकला शब्द,
उमड़ रहे थे भाव हृदय में, पर तो भी रहना था स्तब्ध;
कितना था यह कठिन, दबाये रखना उर की प्रबल उमंग,
यही विवशता दुखा रही थी, उसके प्यारे कोमल अंग;
जैसे एक बेज़ुबाँ बुलबुल, कण्ठ फुलाती हो निष्फल,
और तलहटी में मर जाये रुद्ध हृदय, गायन विह्वल !

२४

उच्च, और त्रय-चापित एक गवाक्ष वहाँ था, जो ग्रंथित—
दूर्वा[1] के गुच्छों से, और फलों-फूलों के शिल्पांकित
चित्रों के हारों से सज्जित, औ' प्राचीन प्रणाली के
शीशों से था हीरक-विजड़ित, जो थे अगणित झलकाते
धब्बे, उज्ज्वल वर्ण, छटाएँ, जैसे चीत-पतिंगे के
हों गहरे चितकबरे पर : औ' बीचोंबीच झरोखे के
सजी हुई थी ढाल, बने अस्त्रों के जिस पर लाल निशान,
राजा रानी के शोणित की सजल दे रही थी पहचान,
जिसके चारों ओर अस्त्र-शस्त्रों के धूमिल चित्र-विचित्र,
मंद-ज्योति में दर्शित होते थे, संतों के चित्र-पवित्र !

२५

चमक रहा था शिशिराई का चाँद झरोखे के उस पार,
शुभ्र वक्ष पर करती उसकी मादक अरुणिम किरण विहार,
जब वह झुकी, विनयवत, पाने को प्रभु का मंगल-वरदान,
उसके विनय बद्ध हाथों पर, हुई गुलाबी शोभामान :
उसके रजत क्रॉस के ऊपर, झलक रही थी बनफ़शई,
संत सदृश हो महिममयी, उसकी अलकावलि दमक रही,
जैसे कोई देवदूत परिधान नवल धारे तन पर,
पंख न हों बस-दिखलाई पड़ती थी बस इतनी सुन्दर :
ऐसा रूप निहार, तरुण प्रेमी ने सुधि-बुधि खोई सब,
विनयावनत पुनीत देह थी मलिन मरण से कलुषित कब ?

---

१. एक प्रकार की जंगली घास ।

२६

होता है चैतन्य तुरत वह : निज संध्या पूजा कर शेष,
मोती की लड़ियों से मुक्त कर रही अपने कोमल केश;
एक-एक कर खोल रही है, अपनी मणियाँ भरकीली,
और कर रही अपनी महक-भरी रेशम चोली ढीली :
सरक सरसरित चले जानु पर, धीरे-धीरे भव्य वसन;
मानो जलधि कौस से उठती, जल की परी अर्द्ध-प्रच्छन्न,
तनिक भाव में मग्न, जगी है, फिर भी स्वप्नाविष्ट नयन,
और कर रही है कल्पन में, देवि ऐग्निस के दर्शन
निज शैया के ऊपर; करती अपनी पीछे दृष्टि नहीं,
भय है यह मायावी छवि हो जाये ना विच्छिन्न कहीं।

२७

तुरत नरम, औ' कोमल अपने नीड़ मध्य में कम्पमयी,
जगी-जगी बेहोशी में वह उद्विग्ना-सी लेट गई,
जब तक नहीं नींद की मादक गरमाई से हुए त्रसित
उसके कोमल अवयव; जब तक हुई नहीं चेतना थकित
उड़ी न जब तक एक भाव सम, वह अगले दिवसोदय तक;
हर्ष व्यथा के रागों से हो मुक्त, रही सुखमय तब तक
विधर्मियों के बीच प्रार्थना-ग्रन्थ जकड़ ले ईसाई,
जैसे, वैसे ही वह निद्रा की बाँहों में अलसाई;
जैसे वंचित रहकर धूप और पावस जल, दोनों से,
कोई पाटल मीलित होवे, कलिका बन जाये फिर से।

२८

ऐसे स्वर्ग बीच में चोरी-चोरी से प्रवेश पाकर,
रहा गढ़ाये मदिर दृष्टि, उसकी रिक्ता वसनावलि पर :
कान लगाये रहा साँस पर, मन में धर कर यह अभिलाष,
स्यात् सुनाई पड़े हृदयरानी का शयनिल सुख उच्छ्वास;
पाया जब उसने ऐसा क्षण, हुआ उसे अतिशय संतोष,
ली तब सुख की साँस वहाँ से, आया सरक तुरत खामोश,
जैसे व्याप्त वन्यता में, आया करता सुख सहम-सहम,
त्यों वह शान्त स्तब्ध फर्श पर, धरता अपने पग थम, थम;

श्रौर द्वार के पटल हटा कर, झाँका तनिक सेज की ओर,
कितनी गहरी सुख निंदिया में, पड़ी हुई सुन्दरी विभोर !

२६

बिखराता था जहाँ चाँद निष्प्रभ निज धूमिल रजत प्रकाश,
हौले-हौले एक मेज उसने रक्खा, शय्या के पास;
उस पर अर्द्ध-विकल-उन्मन हो, एक वसन का किया प्रसार,
जिसमें कढ़े हुए रक्तोज्ज्वल, स्वर्णिम, श्यामवर्ण के तार;
स्वप्न देवता का ताबीज़, काश, जो होता उसके पास !
तो वह करता गहन शयन में तुरत प्रिया को भग्न अयास :
दूर उठी मृदंग की थापें, शहनाई की गुंजित तान,
आधी रात कान में भरती भय, यद्यपि थी अब म्रियमान :
व्याकुल अंतर लिये, मुँद चला, लो ! फिर बृहत-कक्ष का द्वार;
शनैः शनैः थम गया शून्य में, अर्द्ध-निशा का हा-हा कार ।

३०

श्रौर अभी तक नील शिरामय पलक-झँपे, वह शयत रही,
लैवेण्डर सुरभित, सित, स्निग्धित रेशम चादर ओढ़े ही,
जबकि कक्षिका के भीतर से वह लाया भर-भर कर ढेर,
शकर-पगी लौकी, श्री-फल, मधुसिक्त सेब, अमृतमय बेर,
मक्खनदार दही से चिकनी, धरीं चटनियाँ विविध प्रकार,
तेजपात-रससिक्त चमकते शरबत, बड़े ज़ायकेदार;
फ़ैजनगर के वणिक्-पोत से आये मेवा, श्रौर खजूर,
थे सुस्वादु अनेक व्यंजन, भरे मसालों से भरपूर;
रेशम नगरी समरकंद से लेकर, देवदारु-विख्यात
लेबनान तक से, हरेक जिनमें से किया गया आयात ।

३१

सजा रहे थे तरुण पोरफीरो के जगमग-जगमग हाथ
स्वर्ण पात्रों, श्रौर रुपहली टोकरियों में सभी पदार्थ;
खचित रजत तारों से वे टोकरियाँ चम-चम चमक रहीं,
जिनकी सौरभयुक्त दमक से निर्जन रजनी दमक रही,
गरिमामयी ज्योति से भर, वह शीतल कक्ष मुस्कराता,
तरुण पोरफीरो व्याकुल धीरे-धीरे कहता जाता :

आह ! प्राण, अब जाग ! शुभ्र देवी ! अब अपने लोचन खोल !
खड़ा हुआ है दीन पुजारी तेरा, कुछ मुख से तो बोल !
बोल, शपथ ऐग्निस की, वर्ना मैं भी होऊँगा तंद्रिल,
तेरे पास, तड़पती पीड़ा, मुझे कर रही है बोझिल।'

३२

यों मर्मर करते व्याकुल, उसका उष्मिल उत्तेजित कर,
गढ़ा सुन्दरी के तकिये में, छाया जिसके सपनों पर
धूमिल पटलः—अर्द्ध रजनी का था यह इंद्रजाल ऐसा
जो न पिघल सकता था किंचित बर्फीले झरने जैसा;
रजत चंद्रिका में चमकीले थाल कर रहे जगर-मगर
चमकीले कालीनों पर झलमला रही स्वर्णिम झालर;
लगा उसे, वह कभी नहीं, हाँ कर पायेगा, कभी नहीं,
प्राण-प्रिया के नयन-मुक्त, इस छवि के आकर्षण से ही,
इस पर भी न तज सकीं, स्वप्निलता प्रिय के नयनों की कोर,
वँह कल्पन की माया में कुछ देर तलक हो गया विभोर।

३३

सुधि आने पर, ली उसने हाथों में उसकी पोलीबीन,
आलोड़ित था हृदय—छेड़ने लगा एक रागिनी प्राचीन,
सबसे कोमल लय-ज्याओं में, सुना न जिसको अरसे से,
जो कि 'प्रान्त' में कहलाती, 'सुन्दर वनिता बिन ममता के;'
बहने लगा राग मर्मस्पर्शी, सुन्दरि-कर्णों के पास,
जिससे नींद खुल गई उसकी, निकला मुख से मृदु उच्छ्वास;
वह रुक गया, लगी वह कँपने तीव्र वेग से भय-विह्वल,
और पड़े सहसा दिखलाई, उसके लोचन नीलोत्पल,
विस्मिल, विस्फारित; घुटनों में छिपा लिया गायक ने सिर,
पीला पड़ा, लग रहा ज्यों कोई चिकना, शिल्पित प्रस्तर।

३४

नयन खुले थे उसके, पर अब और अधिक वह चेतनसात्
देख रही सम्मुख अपनी निद्रा का सुख-सपना साक्षात्;
पर था दुःखमय परिवर्तन, हो गये विलय जिसके कारण
उसके धीर पवित्र स्वप्न के समस्त सुखमय आकर्षण :

जिसे विलोक सुन्दरी तरुणी के दृग में भर आया नीर,
अधरों से फूटे सिसकी स्वर, मानो उठे कलेजा चीर;
तो भी नहीं पोरफीरो से अपनी दृष्टि हटा पाई
जो था झुका हुआ, कर-जोड़े, आँखों में करुणा छाई,
हिलने, डुलने, अधर खोलने में भी उसको भय लगता,
क्योंकि प्रिया के नयनों में थी अभी स्वप्न की विह्वलता।

३५

"आह, पोरफ़ीरो !" वह बोली, "पर अब तक भी स्वर तेरे,
मधुर-मधुर थरथरा रहे हैं, जिनको तेरे प्रणय भरे
प्रण ने मीठे राग बना कर मुझे किया था अभी विकल,
तेरे करुण नयन थे कितने, आह, अलौकिक और विमल !
पर अब तू कितना परिवर्तित ! कितना है पीला, शीतल,
भय से विह्वल; लौटा दे फिर वही रागिनी सजल, सजल;
लौटा दे फिर वही अमर चितवन, वे शिकवे प्यार भरे;
आह ! छोड़ कर मुझे न जा तू, इस शाश्वत दुःख में प्यारे !
क्योंकि अगर तू ही तज देगा, प्राण, पोरफीरो ! प्राणेश !
पता नहीं देखना पड़ेगा, मुझे कौन अनजाना देश !

३६

उत्तेजित हो उठा अत्यधिक, ऐसे प्रणय भरे रसमय
वचनों को वह सुनकर, और उठ खड़ा हुआ तुरत वायव
प्रेत सदृश, आभायित, जैसे हो कँपता तारा कोई,
जो पड़ता है नील निलय की गहन शान्ति में दिखलाई;
अपनी प्रेयसि के सपने में तत्क्षण वह हो गया द्रवित,
ज्यों गुलाब निज सौरभ, बनफ्शई में कर देता मिश्रित;
बन जाता तब मधुर द्रवण : इस बीच तुषार पवन बहता,
मानो प्रेम डगर की भावी विपदा की इंगति करता :
औ' गवाक्ष के शीशों पर वह तीव्र उपल कड़काता है :
चाँद ऐग्निस का मेघिल परदों में छिपता जाता है।

३७

यह है अंधकार, झंझा बरसाता तीखे उपल कठोर;
नहीं स्वप्न यह; मेरी दुल्हिन ! अंधकार है चारों ओर,

अब भी बाहर गरज रहे हैं, क्रुद्ध पवन के शीत झकोर;
नहीं स्वप्न यह; आह, दे रहा मेरे उर को पीड़ा घोर;
यहाँ पोरफीरो छोड़ेगा मुझे, हाय करने क्षय, मौन,
भार दुःख का धरने; क्रूर ! बता मुझको वह द्रोही कौन,
जो तुझको यों लाया अंदर ? हाय नहीं दे सकती शाप
तुझे, क्योंकि यह हृदय निगोड़ा, तेरा ही तो करता जाप;
यद्यपि तू तज रहा उसे, है जिसको सबने दिया बिसार,
रोग शीर्ण, पड़कुलिया, पंख बँधे, उड़ने से जो लाचार।

३८

"मेरी मैडेलिन ! मीठे सपनों की दर्शिनि ! कल्याणी !
"मुझे बना लेगी क्या अपना वरद दास, मेरी रानी ?
"अपनी सुन्दरता की ढाल, हृदय-आकृत, सैन्दुरवर्णी ?
"आह, रुपहली वेदी ! अब मैं थकन मिटाऊँगा अपनी,
"इतने घंटों के श्रम और शोध के बाद, तीव्र भुक्षित
"एक तीर्थ-यात्रीवत, चमत्कार-बल से जिसके रक्षित
"प्राण हुए, यद्यपि मुझको मिल गया बसेरा है तेरा :
"पर तू रह निश्चिन्त, नहीं लूटूँगा, आश्वासन मेरा !
"मुझे चाहना केवल तेरी, हो मुझ पर तेरा विश्वास !
"नहीं असभ्य, अशिष्ट प्रिये मैं, मुझे बना अपना प्रिय दास।"

३९

"सुन, यह है आसुरी प्रभंजन, परिस्तान से आया है :
"ऊपर से है उग्र, मगर वरदान हमें यह लाया है :
उठ जा ! उठ जा ! देख फूटने ही वाली है भोर-किरन,
"जान सकेंगे कभी नहीं, यह आकण्ठित मदपायी जन :
"देर न कर, प्रेयसि, उठ जा, चल भाग चलें, हम दोनों दूर,
"सुनते कोई कान नहीं अब, नहीं देखतीं आँखें क्रूर;
"सब पर अंगूरी मदिरा, शरबत का छाया हुआ खुमार;
"जाग, और उठ, प्राण ! यहाँ से चलने को हो जा तैयार !
"उठ, हो जा निश्शंक, निडर तू और छोड़ यह निर्दय वास,
"क्योंकि दक्षिणी प्रान्तर में है तुझे एक घर मेरे पास।"

४०

सुन प्रेमी के वचन, तुरत सुन्दरी हो उठी भय-विह्वल,
क्योंकि वहाँ सब ओर पड़े थे, सुप्तिमान तक्षक के दल;
जो सतर्क चौकन्ने, शायद अपने भालों से तत्पर,
एक अँधेरी राह उन्होंने पाई, नीचे सीढ़ी पर :—
सकल भवन में कहीं नहीं थी गुंजित इंसानी आवाज़;
साँकल-बँधा दीप झिलमिल, हर ड्योढ़ी पर था रहा विराज :
द्वार-पटल जिनके ऊपर, अनेक चित्रावलियाँ सोही,
श्वान दौड़ते, श्येन झपटते, लपक रहे अश्वारोही;
उद्धत झंझा के झकोर से, रह-रह त्रस्त फड़फड़ाये,
झोंकों से लम्बे कालीन फर्श से ऊपर उठ आये :

४१

सरक रहे हैं प्रेत सदृश, वे बृहत कक्ष में सरक रहे,
वे प्रेतों की तरह लौह ओसारे को हैं सरक रहे :
अपने पैर पसार सो गया, पहरेदार जहाँ उन्मन,
साथ बगल में लिए हुए, निज मदिरा का खाली बरतन :
जगा पड़ा था खूनी श्वान, देख उनको लपका तत्काल,
पर फिर अपनी त्वचा हिलाता, बैठ गया वह गर्दन डाल :
क्योंकि गई घरवासी को पहचान, श्वान की तेज़ नज़र,
एक-एक कर द्वार-अर्गलें खुलतीं गईं सहज सत्वर :
जंजीरें निस्पंद पड़ीं पद-श्रान्त प्रस्तरों के ऊपर :
घूम रही है कुँजी, द्वार चूल पर करता चरर-मरर।

४२

और चले वे गये, अरे ! सदियाँ बीतीं वे चले गये,
क्रुद्ध, गरजते अंधड़ में, वे दोनों प्रेमी भले गये।
रहा देखता अशुभ स्वप्न, कितनी ही रातों तक सामंत :
उसके योद्धा अतिथि रहे यों, बहुत दिनों तक ही उदभ्रांत :
उनके सपनों में मँडराते रहे, दैत्य-दानव विकराल,
कब्रों के कीड़े पिशाचिनी-छायाओं से थे बेहाल;
और एक दिन ऐंगेला बुढ़िया भी पहुँची यम के द्वार,
हुई वात से विकृत मुखाकृत : गाकर अपने भजन हज़ार
बूढ़े तापस ने भी एक दिवस, आलिंगन किया मरण
शीतल भस्मासन के ऊपर, किया सदा के लिये शयन।

निंदिया औौर कविता

(Sleep & Poetry)

रचना-काल १८१७

"मैंने तुम्हारी 'निंदिया श्रौर कविता' पढ़ी—यह दामिनी की दमक के समान लोगों को उनके व्यापार-कर्मों से संकुलित करेगी, श्रौर तदानुवर्तित गर्जन के घोष से उनको विकम्पित रखती रहेगी।"

—बी० श्रार० हेडन—(कीट्स को पत्र मार्च १८१७)

आता कभी-कभी, जैसे भीषरण गर्जन का ताली घोष,
कभी-कभी ज्यों फूटा करता है पृथ्वी का अंतर-रोष :
कभी किसी अद्भुत पदार्थ के, (जो कि हमारे चारों ओर
श्वासित होते शून्य वायु में) सकल रहस्यमता के शोर
सदृश मर्मरण करती : ताकि चतुर्दिक् भेदक दृष्टि सहित
देखा करते हैं हम चारों ओर स्यात् अवलोकन हित
द्युति-आकृतियाँ, वायव चित्रण : औ' हम आकर्षित करने
क्षीण-श्रुत स्तवन से कोमल हरित वस्तुएँ : निहारने
विजय रत्न-माला को जो लटकाई किसी उच्च ऊपर,
यानी अपना नाम उजागर करने जीवन की इति पर।
कभी-कभी तो इससे असीम गौरव मिलता वाणी को
और फूटता हृदय-उत्स से, "सुखी रहो, आनन्द करो"
औ' वे स्वर, जो सकल पदार्थों के सृष्टा तक जायेंगे,
और तीव्र अस्फुट व्यंजन में मर कर परिणति पायेंगे !

और न कोई जिसने एक बार देखा है दीप्त भास्कर,
सकल बादलों का दल, और किया है निर्मल अपना अन्तर,
निज महान निर्माता के विराजने, केवल वह ही परिचित
होगा मेरे आशय से, औ' गौरवाभ से होगा दीपित
उसका अंतस : अत : न जिसका आत्म करूँगा मैं अपमानित,
दैशिक प्रतिभा से जो कुछ वह देख रहा, कर उसको वर्णित।

हे, कविते ! मैं तेरे लिये लेखनी अपनी उठा रहा हूँ,
यद्यपि तव विस्तीर्ण स्वर्ग का भव्य निवासी अभी नहीं हूँ,
तो क्या तब तक शैल-शिखर के ऊपर, नमन करूँ मैं जाकर,
जब तक, नहीं सहजता से ही मैं इसका अनुभव पाऊँ कर,
कि एक दीप्त गौरव की आभा मुझे चतुर्दिक् करती विवृत,
और अछोर गीत तेरी रसना के कर पाऊँ अनुगुंजित।

हे, कविते ! मैं तेरे लिये गह रहा हूँ लेखनि निज कर में,
यद्यपि तव विस्तीर्ण स्वर्ग का, अभी नहीं हूँ गौरवधर मैं
एक निवासी-तो भी बदले में, मेरे हार्दिक अनुनय के,

बहने दे तू अपने मन्दिर से निर्मल समीर के झोंके,
जो स्निग्धित, उन्मद, पुष्पाच्छाय खड़ियों के श्वासन से,
ताकि सुखी हो सकूँ एक ऐश्वर्य्यपूर्ण मरणालिंगन से,
और अपोलो तक मेरी यह तरुण आत्मा पर प्रसराये,
एक सद्यः बलि-सी बालारुण किरणों की अनुगत हो जाये :
अथवा यदि मैं यह सब माधुर्य्यातिरेक कर सकूँ सहन ही,
तो समक्ष मूर्त्त कर देगी, सब जगहों के भव्य सपन ही :
एक कुञ्ज शरणस्थल होगा, मुझको तो वह स्वर्ग सदृश, रे !
एक चिरन्तन ग्रंथ, नकल कर लूँगा जिससे कथन मधुभरे,
कथन अनेक, प्रीतिकर कथन, पत्र, औ' कलिकाओं के विषयक,
कानन, और निर्झरों में वे परियों की क्रीड़ाएँ रोचक,
छाया के बारे में, जो है नीरवता फैलाया करती
चारों ओर शयत कामिनि के ; औ' मधु कविताएँ अनगिनती
जो जगती ऐसे विस्मयकारी प्रभाव से, हमको विस्मय
होता सतत कि कैसे, और कहाँ से हुईं प्रस्फुटित सब यह ;
दृश्य कल्पना के, मेरे अलाव के चौतरफा विहरेंगे,
और कदाचित शान्त रूप की तरुवर-पाँतों को ढूढ़ेंगे ;
जहाँ कि मैं भटका था सुखमय नीरवता में जैसे निर्झर
निर्मल बहता है अपनी निर्जन उपत्यका में से होकर ;
और जहाँ पर मैंने पाया, गहन छाँह-तल, अथवा मंत्रित
गह्वर या हरियाली शैलिनि, ओढ़े जो वसनावलि पुष्पित,
और भीत इसकी मोहकता के कारण, कर देंगे अंकित,
मेरे स्मृति-पट के ऊपर, वह सब जिसकी मुझको थी अनुमति,
रहा जो कि अनुरूप हमारी मानवीय ऐन्द्रिकताओं को ;
मैं तब जकड़ूँगा इस व्यापक जगती-तल की घटनाओं को
महामनुज-वत, तब तक मेरे प्राण नहीं होंगे परितोषित,
जब तक इनके कंधों पर न जुड़ेंगे, पर अमरत्व-शोध-हित ।
ठहर ! और तू सोच, कि जीवन एक दिवस का है त्यौहार,
जीवन है तरु की फुनगी से गिरती हुई क्षीण नीहार
अपने संकट-पथ पर ; उस दरिद्र 'इण्डियन'[1] की निद्रा घोर

---

१. रेड इण्डियन ।

त्वरित वेग से मौन्ट मोरेन्सी[1] के दानवी ढाल की ओर
बही जा रही जिसकी लघु तरणी। क्यों सिसकी भरी उदास ?
जीवन है अब तलक अनखिले उस पाटल-प्रसून की आश :
जीवन है शाश्वत परिवर्तनमयी कहानी का पाठन;
किसी रूपसी का यह हौले-हौले उठता अवगुण्ठन :
जीवन एक कपोत जो कि निर्मेघ ग्रीष्म की बयार में
मस्त विभोर मगन अपनी नभचारी क्रीड़ा-विहार में :
जीवन अल्हड़-छात्र, न जिसको कोई दुःख या दुश्चिन्ता,
चढ़ा हुआ 'ऐल्म' के वंसती वृंतों पर, खिल-खिल हँसता।

दश वर्षों के लिये काश, जो अपने को निमग्न कर पाऊँ
कविता-रस में : ताकि यशस्वी कार्यों को पूरा कर जाऊँ
जो निर्दिष्ट हुए मेरी आत्मा के द्वारा : मैं गुजरूँगा
तब उन देशों में कि जिन्हें देखता दीर्घ दृष्टि में : करूँगा
आस्वादन उनके विशुद्ध झरनों का अविरत : पहले सबसे
यात्रा का रस लूँगा, 'फ्लौरा' और 'पैन' के प्रान्तर में से :
हरित मखमली दूर्वासन के ऊपर, मैं सोऊँगा जाकर,
औ' निर्वाह करूँगा लाल सेब पर, मीठी रसभरियों पर,
और चुनूँगा सुख प्रत्येक, हुआ मेरी कल्पन को गोचर,
पकड़ूँगा मैं श्वेत-पाणिमय परियों को छायामय-स्थल पर,
और करूँगा मैं तब अनुनय उनके हटे हुए चेहरों से
मधु-चुम्बन का, औ' खेलूँगा उनकी कोमल अंगुलियों से :
और अधर की यथाशक्ति मैं कठोरता से, करके स्पर्शित,
उनके धवल-स्कंध, जिन्हें वे बड़ी अदा के साथ संकुचित
कर लेंगी : जब तक सहमत हों नहीं, पढ़ेंगे हम सब मिलकर
मानवीय मोहिनी कहानी, मधुर प्रेम की कथा प्रीतिकर :
औ' सिखलायेगी कोई पालित कपोत को, सर्वोत्तम वह
कैसे झलके शीत समीरण मेरे श्रान्ति-हरण पर रह-रह,
अन्य नमित हो अपने द्रुत पद-मर्दन पर, निज शिर के ऊपर
ओढ़ेगी चहुँ ओर लहरता हरितवसन, तो भी नर्तन कर

१. मृत्यु का घाट।

सतत बदल कर सरल-सरल पग, मुस्काकर फूलों-कलियों पर;
ललचायेगी मुझे तीसरी, बादामी कलियों में होकर,
अल्हड़ता से मस्त सुगंधि दालचीनी की मुझे सुँघा कर:
नहीं जब तलक हम हरते हों अपनी क्लान्ति एक पल्लवमय
जगती के अंक में शान्त नीरव होकर, जैसे रत्न द्वय
पड़े हुए हों बिना सजे मुक्ता-सीपी के गर्भ-गृह में।

क्या इन सौख्यानंदों को दे सकता कभी विदाई हूँ मैं?
हाँ, इनको तजना अवश्य है, पाने मुझको शुचितर जीवन,
जहाँ पा सकूँ मानव-मन की पीड़ाएँ, उत्कट संघर्षण;
वह लो! देख रहा सुदूर मैं, नीलम शैलिनियों पर तिरती
प्रवह अयालों वाले अश्वों की वह रथिका, और सारथी
पवमानों की ओर सगौरव भय के साथ निहार रहा है;
औ' अब एक विराट मेघ के छोर सहारे, गूँज रहा है
अनगिनती अश्वों की टापों का हल्का-हल्का-सा कम्पन;
औ' अब द्रुत घूमते चक्र के साथ कर रहे हैं अवरोहण
स्वच्छ गगन आंगन में, जो कि रजत-स्पर्शित हैं दिनकर के
दीप्त चक्षु से: औ' विस्तीर्ण भँवर के साथ अभी तक सरके
नीचे, और हरित पर्वत-पार्श्व में हुए अब मुझको गोचर
समीर सुख से शीश हिलाती बालों के बीच में पहुँच कर।
और सारथी घूर-घूर कर साश्चर्य्य करता है बतियाँ,
पर्वत से, पेड़ों से, और तुरत हो रहीं उदित आकृतियाँ
सुख की, रहस्य, भय की, जो एक शरण-स्थल के समक्ष से
जिसे वृहत 'बाँझों, ने किया विनिर्मितः गुजर रही धीरे से,
मानों किसी चिर-पलायित गायन का हैं वे पीछा करते,
अपनी यात्रा में। लो! कैसे मर्मर करते हैं, औ' हँसते,
मुस्काते, औ' रोदन करते: औ' कुछ अपने हाथ उठाकर,
गम्भीर मुख से: कुछ कानों तक अपना मुख बाँहों में ढककर,
कुछ अपनी तारुण्य-दीप्ति में निखरे मुदित-मुदित हैं जाते,
और उदास भावनाओं को, हटा रहे हैं वे मुस्काते;
कुछ पीछे को देख रहे हैं, औ' कुछ होते ऊर्ध्व-दृष्ट हैं;
हाँ, सहस्र मार्गों के द्वारा, बढ़ते ही जाते सहस्र हैं,

आगे ही आगे—अब मोहक युवतिजनों का करता है दल
नर्तन, गूँथ-गूँथ घुँघराली अपनी कुन्तल राशि सुकोमल ;
और खुल गये पंख चौड़ कर। हुआ अतीव दुःखी संकल्पित
वह अश्वों का सारथि अपना शीश कर रहा आगे विनमित,
मानो सुनता-सा लगता है ; काश, पता चलता मुझको यह,
अपनी त्वरित प्रभा से, वहाँ लिख रहा है अब जो कुछ भी वहः
सपने सब उड़ गये—उड़ गया है रथ स्वर्ग ज्योति के भीतर,
औ' उनके बदले में सत्य पदार्थों की चेतना उभर कर
आती दुहरी शक्ति लिये है : और बनेगी निश्चय वाहक
पंकिल झरने-सम मेरी एकाकिन आत्मा की, सूने तक :
पर समस्त संदेहों के विरुद्ध मैं यत्न करूँगा निश्चय,
याद रखूँगा, रथ को और अनूठी यात्रा, की उसने तय।

क्या इतना हो गया क्षेत्र सीमित पौरुष के सम्प्रत बल में,
कि है अबंध विहरना कल्पन को दुस्तर उसके अंचल में,
जिस प्रकार प्राचीन युगों में वह होती थी विमुक्त विचरित ?
अश्वों की करना तैयारी, ज्योति विरुद्ध चढ़ाने के हित ?
क्या दुर्वह हो गये मेघ पर, करना कार्य कीर्त्ति के अद्भुत ?
क्या उसने इन सब बातों को पहले किया न सफल प्रदर्शित ?
निर्मल शून्य क्षेत्र से लेकर, लघु मुकुलों के निश्वासों तक ?
'जव' के विराट भ्रू-आशय से, 'ऐप्रिल' 'चरही-हरीतिमा तक ?
हुई वेदिका उसकी इसी द्वीप पर दर्शित थी : हो सकता
था प्रतिद्वंद्वी कौन, उष्ण गायक-दल का, जिससे था उठता
संगतरव, जिस तक साधेगा प्रबल आत्म ध्वनि का, जो लहरिल
अपना, विराट-ग्रह-सा ऐसे ही चकराता, शाश्वत, बोझिल
शून्य चतुर्दिक् : अरे, उन दिनों थी संगीत देवियाँ 'तोषित
आदर से, गाने, अलकें सँवारने से ही थी कब फुरसत ?

क्या यह हो सकता विस्मृत ? हाँ, किया अपोलो को लज्जानत
एक मूढ़ रूढ़ावरोध ने, बर्बरता, हिंसा से पोषित
जो कि हुआ था, अपने इस प्रदेश के ऊपर झोटे खाता,
जोर लगाता शिशुवत, मन में 'पेगासस' पर चढ़ा समझता।

आह ! प्राण में दर्द समेटे, बहे व्योम के पवन-समीरण
महासिंधु ने निज संकुलक हिलोरों को लिपटाया जिस क्षण,
किन्तु नहीं तुमने जाना यह—सूनी की निज गोद गगन ने,
ग्रीष्म-रजनियों के नीहार-बिन्दु, भोर को छविमय करने
संचित होते रहे अब तलक भी, पर व्यर्थ तुम्हारे आगे:
रूप रहा था जाग उस घड़ी, किन्तु नहीं थे क्यों तुम जागे ?
हाँ, तुम तो निर्जीव हो गये थे, उन सत्य पदार्थों के प्रति,
जिनका तुमको पता नहीं था—बड़े निकट ही से तुम ग्रन्थित
हुए रूढ़िगत विधियों के संग, जिनको असद अशुभ नियमों ने
औ' जड़ नपी तुली रेखों ने किया विनिर्मित ; अतः तुम्हीं ने
मूढ़ों के निकाय को सिखलाया चिकनाना, काँट-छाँट कर
तराशना, फिट करते रहना, नहीं जब तलक होवे गोचर
उनकी कविता 'जेकब' के चुटकिलों सरीखी ; सरल कार्य था:
एक सहस्र शिल्पकारों ने कविता का नक़ाब पहना था।
अशुभ, अभागी जाति ! तुम्हीं ने देव अपोलो, वीणावादक
लज्जित किया, न हाय, रहा अपने कुकर्म का तुम्हें ज्ञान तक:
पड़े रहे निकृष्टतर, घिसे-घिसाये अपने स्तर के ऊपर,
अति कृत्रिम, कुछ उद्देश्यों की रेखाओं में जड़मत होकर,
औ' उस 'बोयल' के नामांकित चिह्न-पटल को तुम धारे ही।

ओ, तुम जिनका काम हमारी मनभावन शैलिनियों के ही
चारों ओर विहरना, भर देती जिसकी गरिमा एकत्रित
इतने मेरे सीमित आदर को, कि नहीं कर सकता शोधित
मैं हूँ नाम तुम्हारे पावन, इस अपुनीत ठौर के भीतर,
उन इतने साधारण-स्तर के जन-संकुल के निकट : नहीं पर
क्या तुम हुए भीति-अभिभूत, बताओ उनकी लज्जाओं से ?
हुए न क्या प्रफुल्ल तुम अपनी शिकवा करती हुई 'टेम्स' से ?
क्या तुमने न लिपट 'ऐवन' से करुणा भरी रागिनी गाई ?
अथवा माँग चुके हो तुम उन क्षेत्रों से आखिरी विदाई,
नहीं जहाँ होता, पहले की तरह कीर्ति का बिरवा विकसित ?
या तुम रुके रहे एकाकी आत्माओं के अभिनंदन हित
जो कि सगर्व जवानी भर गाती गायन, औ' मर, मर जाती ;

ऐसा भी था ; जो उन दुर्दिवसों की मुझको है स्मृति आती
मुझे भूलने दो ; अब तो पहले से ऋतु है अधिक सुहानी ;
तुमने हम पर सुख-आशिष, उच्छ्वसित किया है मंगलदानी ;
और हमें ताज़े-ताज़े गजरे भी तुमने पहनाये हैं :
क्योंकि अनेक स्थानों पर से हम मधु गायन सुन पाये हैं—
एक हंस की कृष्ण-चंचु के द्वारा : कोई नहीं विमोहित
सरवर के अपने स्फटिक-निवासन के बाहर, विकीर्णित
करता है बुलबुले नली से घनियारे काँस के पुँज में,
हो नीड़स्थ, और शान्त मनहर उपत्यका के निकुँज में :
उत्तम, सुमधुर ध्वनियाँ, भ्रान्त धरा के चारों ओर विहरतीं ;
और तुम्हारे आनन पर, आनंद बदलियाँ भी हैं घिरतीं ।

यह बातें संदेहरहित : यथार्थत : पास हमारे तो भी
थी गायन के पौरुष से विचित्र गर्जन-ध्वनियाँ ; जो कुछ भी
मधुर, और सुदृढ़ गरिमा से वास्तव में था मिश्रित : लेकिन
स्पष्ट सत्य यह है कि कथा सामग्रियाँ हैं वह कथा अशोभन
जिनसे 'पोली फेमस'[1] कवि करते सागर की भंग शान्तता ;
काव्य ज्योति का है अविरत निर्झर : सर्वोच्च यही है सत्ता :
यह है शक्ति अर्द्ध-शायित, अपनी दक्षिणी बाहु के ऊपर ।
अपनी पलकों की सिकुड़न तक से वह सम्मोहित कर सकती,
सहस्त्र इच्छुक अभिकर्त्ताओं से आज्ञा-पालन करवाती,
और, तदपि उदारतम ढंग से, यह करती है शासन अपना ;
किन्तु शक्ति केवल, संगीत देवियों से ही क्यों न जन्मना,
पतित फरिश्ते के समान है : वृक्ष उखड़ते, औ' अँधियारा,
कीट, कफ़न, क़ब्रें ही इसके लिये खुशी का रहे सहारा,
क्योंकि जिन्दगी के शूलों से, पथरीली डगरों से पोषित
यह होती ; कविता के महत लक्ष्य को करते हुए विस्मरित
कि इसको सुहृद होना है, हरने दुःखमय चिन्ताओं को,

---

१. माउण्ट एटेना की गुहा का वासी एकाक्षी दैत्य, जिसके भय से देवता विचलित हो जाते थे। यूलीसिस ने सोते में इसकी आँख फोड़ कर इसका वध किया था ।

और उठाने हेतु उच्चतल पर, मानवी भावनाओं को।
तो भी मैं आनंद मनाता: एक हिना ऐसी सुन्दरतर
जैसी कभी न पैफस[1] में भी उगी, उठाती अपना प्रियतर
शीश कंटकाकीर्ण काँस से, और कर रही है पोषित अब
एक ठौर, चिर-फुल्ल हरित से कोमलतम विहगों के दल सब
पाते वहाँ यवनिका मनहर, रेंग रहे छाया में होकर
फड़-फड़ करते, निगल रहे लघु-लघु पुष्पों को वे कलरव कर।
आओ! तब हम इसके कोमल वृंत इधर से, और उधर से
स्वच्छ-विमुक्त करें सत्वर ही चुभते जहरीले शूलों से।
आगामी कालों में पैदा होने वाले शिशु-कवियों को,
जब हम तो उड़ चले कभी के हों, जी भर कर सुख पाने दो,
ताजे-ताजे हरित, सुकोमल तृण दल का ही नीचे इसके,
सरल, सुवर्ण, सुमन के यूथ प्रफुल्लित हुए चतुर्दिक् जिसके:
प्रेमिक के विनमित घुटनों के सिवा' और कुछ वहाँ नहीं हो
वस्तु रोरमय: और न कोई वस्तु अधिक अनुदार वहाँ हो,
उस विनम्र दृष्टि के सिवा' जो झुकती एक बंद पुस्तक पर,
दो शैलों के मध्यवर्त्त ढालों से, दूर्वामय न अधिकतर।
प्रसन्नतादायक आशाओ! अभिनंदन कर रहे सभी जन:
जैसी थी वह अभ्यासिनि, सो चली जायेगी ही वह कल्पन
अति प्रिय भूल-भुलैयों में ही, और चढ़ेगा नाम उन्हीं का
कवि राजाओं में, जो कह सकते बातें, जिनसे अति हल्का
हो जाता है भार हृदय का। काश, कहीं पहले ही मेरे
मर जाने से, हर्ष और आनंद सभी हो जायें पूरे।

क्या न कहेंगे ही कुछ जन कि बड़ा है यह दुस्साहस मेरा
कि मैं छिपा लेता, बेहतर था, भरा मूर्खता से यह चेहरा,
इस द्रुत असम्मान की तुलना में? कि पूर्व इसके कि भयावह
गर्जन मुझ तक पहुँचे, सादर विनमित हो कराहता शैशव?
कैसे? यदि प्रच्छन्न करूँ मैं जो अपने को, तो निश्चय ही,
कविता का आलोक प्रतिष्ठित होगा उस देवालय में ही:

---

१. 'एफ्रोडाइट' या वीनस देवि का मूल स्थान।

अगर कहीं मैं गिरा, मुझे कम-से-कम लिटा दिया जायेगा
चिनार की नीरव छाया में, मेरा तन आश्रय पायेगा ;
होगी मेरे ऊपर दूर्वा हौले-हौले समतल कर्तित,
और वहाँ पर होगा एक दयामय स्मारक चिन्ह् विनिर्मित :
किन्तु दूर हो जाओ, ओ नैराश्य ! अभागे शाप ! न तुम को
वे जानें, महान लक्ष्यों के पाने की है तृष्णा जिनको,
और तृषित हर घड़ी ! हुआ ही क्या, जो हुआ नहीं धनशाली
मैं मेधा के कुँज-नीड़ में, यद्यपि द्रुत प्रचंड, बलशाली
झंझाओं से मैं न सुपरिचित, जो मानव के सब परिवर्तक
भावों को हैं इधर-उधर छितराते ; कोई नहीं सहायक
महान तर्क स्वच्छ, स्पष्ट धारणाओं में छाना करता
आत्माओं के अंध-रहस्यों को : तो भी है सतत घुमड़ता
एक विराट भाव है मेरे सम्मुख, और मुक्ति मैं उससे
अपनी संचित करता हूँ, मैंने भी है अवलोका तब से
लक्ष्य, और उद्देश्य काव्य का। यह है एक स्पष्ट सत्य ही,
जैसे हो सकता कोई भी : जैसे रचना वत्सर की ही
होती चार मौसमों से है—बिल्कुल ही निर्भ्रांत कि जैसे
बृहत 'क्राॅस' हो उठा पुरानी 'कैथेड्रिल' महराबी छत से
धवल बादलों की दिशि में; अतएव, बनूँगा मैं, केवल
कापुरुष, पंगु यह कुत्सित भाव मुझे करता है अतिशय विह्वल,
मेरी पलकें तक फड़काता, कहना ही जिसका साहसकर
मैंने सोचा। आह, बल्कि उन्मद-वत किसी ढाल के ऊपर
मुझे दौड़ने देना ! उष्ण भास्कर को अब पिघलाने दो,
मेरे उलझे पंख : रुग्ण शिर के बल मुझको गिर जाने दो !
ठहरो ! एक अचेतन का भ्रू क्षेप आंतरिक देता मुझ को
है आदेश कि तनिक घड़ी भर, करो लब्ध विश्रान्ति, शान्ति को।
एक धुमैला महासिंधु, जिसमें द्वीपों की माला अनगिन
छिटकीं, फैल रहा मेरे सम्मुख, प्रचंड प्राभाविकता बन।
कितना अधिक स्वेद-श्रम ! कितने दिवस ! निराशामय आलोड़न !
कैसा ! पूर्व कि इसकी व्यापकता का, मैं कर पाऊँ शोधन।
आह ! कार्य है कैसा यह ! इन मेरी नमित जानुओं पर अब।
काश, उन्हें करता अनकहा ! नहीं, असम्भव, है असम्भव !

मृदुमय शान्ति-हरणहित, मैं हूँगा निर्भर हल्के चिन्तन पर,
और इस अनोखे शोधन को, अब ऐसे ही जाने दो मर,
जो आरम्भ हुआ मृदु कोमलता में। मेरे अन्तस्तल से
अब भी सब तुमुलालोड़न हो रहा क्षीण; सम्पूर्ण हृदय से
मैं मुड़ता मैत्रीमय अवदानों की ओर कि जिनसे होता
गौरवमय स्निग्धित; करते भाईचारा, और मित्रता,
एक दूसरे का कल्याण, और वह पावन हृदय-ग्राह्यता
मानस में करती है प्रेरित एक गीत की जो मनहरता,
पूर्व कि उस पर कोई सोचे, और विचारे, औ' नीरवता,
जब न किसी कविता के छंद फूटते हैं अधरों से बाहर,
और जब कि हो गये व्यक्त वे, जुड़ी गोष्ठी बड़ी मनोहर:
और संदेशा, जिसको पूरा करना है आगामी कल पर,
और कदाचित् यह भी, लेना हमको सुखमय वापस होकर
एक ग्रंथ अनमोल, आवरित करने, जब हम मिलें दुबारा।
मुश्किल से ही मैं घसीट सकता हूँ, क्योंकि समीरण प्यारा
मृदुल फाख्तों के जोड़े-सा कमरे में है फड़-फड़ करता,
उस आनंद दिवस की कितनी ही स्मृतियों में जागृति भरता,
पकड़ सकीं उनका मृद निपतन, जबकि प्रथम मेरी ज्ञानेन्द्रियाँ,
औ' इन वायु-लहरियों के सँग, आती आभा की आकृतियाँ,
एक अश्व के पृष्ठांग पर वे झुका रही हैं कंधे अपने
निश्चिन्तित, औ' भव्य-गोल, औ' कोमल उनकी उँगलियों ने
उलझाये अलकों के घूँघट, और उछाल त्वरित 'बेकस' की
अपने रथ के ऊपर से, जब करतीं थीं वे आँखें उसकी
'ऐरियादन्' के गाल लाल। अतएव, स्मरण है मुझको पड़ता,
शब्दों का प्रवाह सम्पूर्ण, जबकि खुल पड़ता कोई बस्ता।

ऐसी ही वस्तुएँ सतत प्रवेक्षिणी हैं प्रशान्त रूपों की
क़तार की: 'रश' के पौधों के बीच अगोचर एक हंस की
ग्रीवा का कम्पन: है चारों तरफ वीथियों के विहराती
श्याम चिरैया: अपने सोने से चमकीले पर चमकाती
विलग हुई सुखमय गुलाब से, मानो ऊब गई हो सुख से,
काश, कहीं अपने को मैं विलीन कर सकता निश्चितता से,

अधिक, और ऐसे ही अधिक, विलास वस्तुओं के ढेरों से ;
तो भी नहीं कदापि करूँगा निद्रा देवी को विस्मृत मैं,
जो निज पोस्त-मुकुट को नीरव धारे; क्योंकि शेष जो कुछ भी
है इन सतरों में: श्रेयस्कर भाग, अंशतः है उसका भी
और इस तरह, मैत्री के स्वर की रागिनियों के बदले में
मधुर शान्ति छा गई, सेज पर सुख से फैला पाँव जबकि मैं
खोज रहा था सुखी दिवस को। यह था कवि का भवन जहाँ पर
थे चारण भक्तों के गौरव नक़्श कि अन्य युगों में निज स्वर
गुंजित किये—परस्पर प्रति शीतल पुनीत वक्ष मुस्काते।
वही सुखी है जिसको है भावी को—अपनी प्रिया कीर्ति को,
निर्मल रखने का विश्वास, यहाँ पर अपना लक्ष्य बनाकर
पकते सेबों को वे हास्य व व्यंग उछाल रहे अपनी भर,
और चलाने निज अँगुलियाँ द्राक्ष-पत्र-संकुल के भीतर;
दृष्ट हुआ फिर वहाँ एक रेखांकित संगमर्मरी मंदिर,
वहाँ सुघर परियों की पाँत, उतरती आती हरित भूमि पर:
उन परियों में एक सुन्दरी फैलाती निज आभायित कर
अरुणोदय की ओर: सौम्य बहनों की जोड़ी विनमित करती
निज भव्याकृतियाँ, न जब तलक वे शिशु-पग-नर्तन पर मिलती,
और सुन रही हैं उनमें से कुछ अति आतुर-उत्सुक होकर,
तुहिनसिक्त वंशी से बहते द्रवीभूत होकर प्रमत्त स्वर।
देखो, चित्र दूसरा, जिसमें वे सब परियाँ अब प्रच्छालित
करती 'डाइना' के सिकुड़े अवयव आदर विनति प्रदर्शित
कर उसके प्रति—एक दूर्वायित, मखमली वसन संचारित
करता है फव्वारे स्नान-पुलिन पर, रखता एक सहज गति
विलयमान स्फटिक सहित: जिस तरह महासागर है भरता
अपने निःश्वासन में विराट फूली एक प्रशान्त स्निग्धता,
अपने पथरीले तट के ऊपर: करता संतुलित पुनः अब
निज सुधीर खर-पतवारों को: और कर रहे हैं अनुभव सब
कम्पन, फेनिलकरण-संकुल से स्वच्छ हुए अपने भवनों का।

वहाँ नास्ति पर मुस्काता था, अर्द्ध-विनम्र शीश 'सेफो'[1] का :
मानो अतिशय चिन्तन का भ्रूक्षेप तीव्रतम उसी निमिष पर
लगता था उसकी भ्रू से गत, निपट अकेला उसे छोड़ कर,
आतुर, और करुण लोचन 'अलफ्रेड' महान उस घड़ी लगता,
मानो सतत निपीड़ित जग की मर्मभेदिनी आहें सुनता :
औ' 'कोशिस्को'[2] का भी शिर, जो भीषण पीड़न से था जर्जर,
परित्याजित सशक्त वह । छायामय हरियाली से हो बाहर,
पैर बढ़ाता कवि 'पीटार्क' दृष्टि पर 'लारा' की, न हटा वह
सकता है अपनी आँखें उसके प्यारे मुख से । असम्भव !
वे कितने प्रसन्न ! थी क्योंकि मुक्त क्रीड़ा उन पर विहराई,
और उन्हीं के बीच काव्य का आनन पड़ता था दिखलाई :
निज सिंहासन से बाहर, दृष्टि से अतीत किया उसने सब
उन बातों को, जिनके कहने में हो मुझको कठिनाई अब ।
मैं था कहाँ ; चेतना तक ही इसी बात की, मुझको वंचित
कर सकती निद्रा से ; किन्तु अधिक इससे भी हुए प्रवर्तित
मेरे सीने में विचार पर विचार, करते ज्वाल प्रज्ज्वलित :
अतः किया प्रातः प्रकाश ने मुझको विस्मित, और विनिद्रित
रजनी से भी, और उठ खड़ा हुआ, ताजगी से भर प्रमुदित,
आल्हादित, औ' उसी दिवस मैंने इन सतरों के लिखने का
निश्चय किया, और जैसे भी हो पाया है लेखन इनका

छोड़ रहा वैसे ही इनको
जैसे पिता छोड़ता सुत को ।

---

१. इटली की प्राचीन कवियित्री, जिसने अत्यन्त मधुर प्रगीति-काव्य की अतीव कीर्ति पाई ।

२. एक प्राचीन यवन कवि ।

इज़ाबेला

अथवा

तुलसी का पात्र

(Isabella)

or

(The Pot of Basil)

रचना —१८१८

प्रकाशन—१८२०

"इस कविता में उसकी कल्पना और अभिव्यंजना दोनों की ही शक्तियों ने संयम और दृढ़ता पाई है, और उसके काव्य के चमकीले आवरण से उसके सृजन अपने आपको सजीव आकृति, क्रिया और उद्देश्य में दर्शित और अनुभूत कराते हैं।"

—थोर्प

१

सुन्दरि इज़ाबेल, बेचारी इज़ाबेल, अति सरल हृदय !
लौरेंजो था एक, प्रणय के लोचन में, जो पथिक तरुण;
नहीं रह सके एक सदन में ही वे बिना किये अनुभव
किसी हृदय-स्पन्दन का, या विह्वलता का यह प्रेमीजन;
बैठ न सकते भोजन पर भी, बिना भाव के निःसंशय,
'है संतोषजनक कितना यह साथ-साथ का रहन-सहन;'
नहीं कभी सो सके एक ही छत के नीचे, वे निश्चय,
यदि न लखें स्वप्न में परस्पर, करें न वे रोदन निशिमय।

२

हर प्रभात के साथ प्रेम उनका होता था कोमलतर,
हर संध्या के साथ, और गम्भीर, और भी यह कोमल;
चाहे घर में, या कि खेत, उपवन में ही वह रहा विहर,
प्रिया-मूर्त्ति ही उसके नयनों के समक्ष रहती प्रतिपल;
प्रियतम की अविरत वाणी होती जाती मनभावनतर,
तरुओं या झरनों के स्वर की तुलना में उसको प्रतिपल;
नाम पिया का ही झंकृत करते उसकी वीणा के तार,
ऐसे ही अधकढ़ा कशीदा अपना एक, किया बेकार।

३

द्वार करें प्रस्तुत उसके दृग के सम्मुख, इससे पहले
उसे ज्ञात था किसका मृदुल हस्त था अर्गल के ऊपरः
उसके कमरे की खिड़की से ही वह आँखों-आँखों से
पान रूप का करता, खाती मात बाज़ की तेज़ नजर।
उसकी सांध्य-प्रार्थना का वह सदैव ही दर्शक रहता,
क्योंकि उसी नभ-छोर ओर वह निहारता विह्वल होकर,
सुनने प्रातः प्राणप्रिया के चरणों की मीठी आहट,
तड़प-तड़प कर, रात-रात भर, शय्या पर लेता करवट।

४

ऐसी करुण दशा में ही, सम्पूर्ण मई के महीने ने
जून शुरू होने तक, गालों की अरुणाई धुँधलाई :
"अपने हर्ष समक्ष झुकूँगा, जाकर कल अवश्य ही मैं,
कल अपनी रानी से माँगूँगा, वरदान सुनिश्चय ही:—"
"लौरेंजो ! तेरे अधरों से नहीं प्रेम की लय फूटे,
तो मेरी आगामी निशि तक जीने की कामना नहीं !—"
अपने सिरहानों से दोनों बातें करते यों; लेकिन
उसने निष्फलता में यूँ ही बिता दिये सब नीरस दिन।

५

जब तक मुरझाये न इज़ाबेला के गाल अनछुए जो
अपनी सुर्खी से विकसित पाटल को करते थे फीका,
पतले अब पड़ गये, तरुण माता के तुल्य, बना करती
जिसकी हर लोरी शीतल मरहम अपनी शिशु-पीड़ा का :
"कितनी वह बीमार" कहा उसने, "कर सकूँ न मैं वर्णन,
तो भी मैं अवश्य अपना सब भेद बताऊँगा जी का;
यदि नज़रों से प्रेम नियम होते प्रकटित, तो लोचन-नीर
मैं उसका पी लूँगा—चिन्ता से तो होगी नहीं अधीर।"

६

एक शुभ्र प्रातः यों बोला वह, दिल उसका उतराया
अपने पहलू में विषाद के हलकोरों से भर-भरकर,
अपने अंतरतम में वह प्रार्थना-भाव भरकर बोला
"कहने की दो शक्ति मुझे," पर कंठ रह गया रुँध-रुँधकर,
उत्तेजन के लाल ज्वार से : निश्चय उतर गया मन से
ऐसी दुल्हिन का विचार भी हुआ उसे उच्च शुचितर :
और तुच्छतर जाना अपने को उसने शिशु-सा ही तब,
आह ! दुःख ! वासना नम्र, वन्या होती हैं दोनों जब !

७

यों ही एक बार फिर जगकर, करवट बदल-बदलकर वह
लेता काट रात आगामी, प्रेम विरह के सपनों में,
अगर न इज़ाबेल के सतर्क लोचन, हो जाते थिर ही

लौरेंजो के उच्च भाल पर अंकित हर प्रतीक पर वे;
उसने देखा इसे निरंतर पीला होता, औ' सहसा
होते लाल; अतः बोली वह एक दिवस.कोमल स्वर में,
"लौरेंजो !" रुक गई यहीं पर सारी क्षीणशोध उसकी
पर उसकी चितवन में, औ' कहने में बाँच गया बाकी।

८

"आह, इज़ाबेला ! मैं देख तुझे यह करता हूँ अनुभव,
"अपने मन की पीड़ा ढाल सकूँगा कानों में तेरे;
"अगर कभी तूने विश्वास किया हो किसी बात पर तो,
"करना यह विश्वास, पात्र तू रही प्यार की है मेरे।
"कर विश्वास कि मेरी सकल नियति इस पर ही निर्भर है:
"कष्ट न दूँगा दबा अनिच्छा से मैं तेरे कर प्यारे;
"प्यार जताने तेरे नयन न घूरूँगा, पर सुन इतना,
"अगली रात न जीऊँगा, जो स्वीकारूँ न प्यार अपना।

९

"प्यार ! शीत जड़ता से मुझको दूर लिये जाता है तू,
"ओ, सुन्दरि ! सुखमय प्रान्तर में तू ले जाती है निश्चय,
स्वाद चखूँगा कली-कुसुम का, जो परिपक्व ऊष्मा से
करती ऐसे स्वर्ण सवेरे को सुखमय औ' गरिमामय।"
इतना कह हो गये क्षीण से सक्षम उसके युगल अधर,
रचे प्रिया अधरों के साथ, छंद नीहार सिक्त रसमय :
बड़े सुखी थे दोनों, दोनों के मन थे आनंद-भरे,
ऐसे बढ़े कि जून मास में कुसुम ईप्सामय निखरे।

१०

लेते विदा लगे मानो मर्दित करते समीर को वे,
जुड़वाँ पाटल वायुझकोरों से हो गये विलग, जैसे
मिलने और निकटतर, आकर भरने अपने अंतर को
एक दूसरे के अंतस्तल के मनहर सौरभ-रस से।
अपने कमरे के अन्दर जाकर, तरुणी ने तैरायी
समीरणों पर एक रागिनी, सिक्त मदिर कोमल मधु से :
युवक मंद मंथर चरणों से चढ़ा पश्चिमी पर्वत पर,
विदा किया अस्तंगत रवि को, मोद मनाया जी भरकर।

११

पूर्ण निकट वे मिले तिमिर, जब तलक नहीं समेट पाया,
अपना मनहर दामन, व्योम-सितारों के ही ऊपर से;
पूर्ण निकट वे मिले, सभी संध्याओं को, जब तक न तिमिर
उठा सका अपना सुखदायक अवगुण्ठन नभ-तारों से;
'हायसीयंथ' और 'कस्तूरी' के कुंजों के निकट मिले,
जान न कोई पाया, दूर रहे वे लोक-हँसाई से।
उनका दुःख अलसित लोगों का पात्र, हाय ! ऐसे बनता,
तो इससे अच्छा था यह क्रम ऐसे ही चलता रहता।

१२

तब क्या वे थे व्यथाग्रस्त ? यह बात नहीं हो सकती है,
प्रेमिक जन के लिये बहाये गये अश्रु के इतने कण,
शुल्क रूप में इतनी आहें हम उनको देते आये,
बाद मृत्यु के उनकी, हमने किया दया का है व्यंजन
सुनते तो हैं इतनी अधिक विषादमयी हम गाथाएँ,
जिनका स्वर्ण अक्षरों में ही सर्वोत्तम होता पाठन;
उस पन्ने के सिवा, जहाँ 'थेसियस[1]' की है दुल्हिन दुखिया,
जिसने अपथ हिलोरों[2] पर से अपने प्रिय को नमन किया।

१३

है सामान्य नियम कि प्रेम से पैदा हुई तिक्त कटुता
हो जाती है दूर अल्प सी मधुराई से निश्चय ही;
यद्यपि 'डीडो' सोती कुंज-गर्भ में है खामोशी से,
यद्यपि इजाबेल तरुणी ने असह भयंकर विपद सही,
यद्यपि नहीं युवक लौरेंजो पर भारतीय लौंग का उष्ण
चढ़ा प्रलेप, नहीं हो जाती है कम इससे सच्चाई—
वासंती कुंजों की भिक्षुणि, ममाक्षियों तक को यह ज्ञान,
जहरीले फूलों में ही होती, सर्वोत्तम मधु की खान।

---

१. थेसियस ऐथेन्स नरेश, पोजिडन का पुत्र था, जिसने मोनस की पुत्री ऐरियाद्न से विवाह किया था। उसकी सहायता से अनेक वीरता के कार्य किये, पर बाद में नेक्सोस के द्वीप में उसे परित्यक्त कर दिया।

२. उसी द्वीप के लिये प्रयुक्त हुआ है।

१४

अपने भ्रातृ-युग्म के संग, यह रहती थी सुन्दर महिला;
पैतृक पारम्पर्य्य वणिज से हुए धनी-औ' समृद्धतर :
जलती खानों, और शोर से भरी हुई फैक्टरियों में,
चकनाचूर हुए थक-थककर, जिनके हित अनगिनती कर :
कभी सगर्व धारतीं जो तूणीर, कमर हो गईं द्रवित
शोणित में दंशित चाबुक से; औ' अनेक जन दिन-दिन भर
खड़े रहे प्रद्युत सरिता में, लेकर निज खोखले नयन,
प्लावन की रेणु से इकट्ठे करने को सुवर्ण के कण।

१५

उनके लिये सिंहली गोताखोर रोक कर अपनी साँस,
भूखे शार्क मत्स्य के आगे बिल्कुल नंगा चला गया;
उनके लिये कान से उसके उमड़ा शोणित : बरछी से
उनको ही तो मत्स्य सिंह 'सील' को बर्फ पर तड़पाया
आह, उन्हीं के लिए उबलती रही व्याप्त तममय भीषण
विपत्तियों के गहवर में कितनी ही तो मानव काया :
अर्द्ध-अज्ञ, उसने मोड़ा था सहज चक्र जिसके पैने
दाँत जमे थे श्रम पर दारुण क्रूर यातनाएँ देने।

१६

क्यों था उनको गर्व ? क्योंकि उनकी मर्मर की निर्झरिणी
दुखिया के अश्रु की अपेक्षा अधिक गर्वमय फूट रही ?
क्यों था उनको गर्व ? क्योंकि चमकीले नारंगी सोपान
कोढ़ी भिखमंगों की सीढ़ी से थे कोमल अधिक कहीं ?
क्यों था उनको गर्व ? यवन वत्सर के गीतों की 'पेक्षा
अधिक मूल्य वाली थीं उनकी लाल रेख-अंकिता बही ?
क्योंकि था उनको गर्व ? बताओ, पूछ रहे हम चिल्लाते,
किस 'गौरव' के कारण वे गर्व में रहे थे मदमाते ?

१७

तो भी ये फ्लोरेन्टाइन जन थे नितान्त आत्म-रत ही,
भूखा गर्व, और लाभार्जक कायरता से पूरित उर,
जैसे दो कंजूस यहूदी, भिखारियों की नज़रों से
बचने यरूशलम में द्राक्षगुल्म में बैठे हों छिपकर :

वणिज-पोत-वन के ये बाज़—न थकने वाले ये टट्टू
स्वर्ण और झूठ के लादने में—ये भोले पथिकों पर
फुर्तीली बिल्ली सम तत्क्षण देते देह नखों से चीर;
स्पेनिश, टस्कन, मलाय भाषाओं का था ज्ञान गंभीर।

१८

निज बहियों में लिप्त मनुज कैसे आखिर कर सकते थे
पीछा सुन्दरि इज़ाबेल का उसके सुखद नीड़ में वे ?
कैसे लौरेंजो के लोचन में उनको मिल सकता था
पता कि भाग रहा निज श्रम से; तप्त मिश्र के रेते से
उनकी खूनी और लालची आँखें अंधी हो जायें !
ये रुपये के थैले पूरब, पश्चिम लख सकते कैसे ?
तो भी किया उन्होंने ऐसा—हर सच्चे व्यापारी को
वध्य शशक की भाँति—देखना भी पड़ता है पीछे को।

१९

बोकाचियो ! ओज, और गौरव के अनुपम स्वामी तुम !
तुमसे ही वरदान क्षमा का माँग रहे हैं हम याचक :
और तुम्हारी सौरभयुक्त हिना से, जो बहती सुरभित
और तुम्हारे गुलाब से, जो शशि-सम मधुर स्नेह स्त्रावक,
और तुम्हारी नलिनी से, जो पीली पड़ती जाती है,
क्योंकि नहीं सुन पातीं अब वे तव सितार की लय मादक,
क्षमा माँगते हैं, ऐसी सकरुण गाथा के कहने में
करते शब्द प्रयोग, जो कि कटु लग सकते हैं कानों में।

२०

करो प्रदान यहाँ हमको तुम क्षमा और फिर सरल-सरल,
प्रवह रहेगा यही कथा-क्रम जैसे होना इसे उचित :
इससे बढ़ अपराध और पागलपन क्या, नव छंदों में
जो प्राचीन गद्य को सोचे करने और मधुर-मिश्रित ?
पर यह तो हो गया—कहो तुम इसे सफल अथवा निष्फल
हो सम्मान तुम्हारा इससे, तव आत्मा हो अभिनंदित :
अंग्रेजी कविता में हम अवतरित तुम्हारी कविता कर,
दुहरायें उत्तर मारुति में, आज तुम्हारे मधुमय स्वर।

२१

लौरेंजो है प्रणयातुर उनकी भगिनी के प्रति कितना,
अनगिन चिन्हों से वे दोनों भाई इसको समझ गये;
और प्यार वह भी करती अति, यह भी रहा नहीं गोपित
विषमय भाव प्रकट करते यों आपस में, उन्मत्त हुए,
सोच कि उनका अदना नौकर करे धृष्टता करने की
प्रेम बहन से उनकी, जबकि हर्ष में निमग्न सोच रहे
कि कर विवश बहन को शनैः शनैः रच ही देंगे परिणय
किसी उच्च सामंत और जैतूनी पेड़ों से निश्चय।

२२

और उन्होंने किये अनेक ईर्ष्यायुक्त सम्मिलन तब,
कितनी बार अकेले ओष्ठ काटते वे हो-हो क्राधित,
इससे पूर्व कि कोई सोचें सबसे निश्चित उपाय वे
जिसके द्वारा करें तरुण लौरेंजो का अपराध शमित!
और अंत में निर्ममता-मिट्टी से बने युगल-जन ने
किया 'दया' को एक तेज़ चाकू से ही नृशंश वधित;
क्योंकि हो गये वे घनघोर अँधेरे कानन के भीतर
लौरेंजो को वधने, और वहीं दफनाने को तत्पर।

२३

अतः एक मनहर प्रभात में, वह होकर अति आत्म-विभोर,
सूर्योदय में, झुका हुआ अपने सोपान-रक्ष पर जब,
उसकी ओर बढ़े दोनों भाई, प्रवंचना छल की मूर्ति
दूर्वादल को दलते हुए पगों से, दोनों बोले तब,
"तुम तो बड़े शान्त, संतोषी जीव दीखते हो भाई!
लौरेंजो! हम नहीं करेंगे भंग तुम्हारी प्रशान्ति अब,
पर यदि तुम हो समझदार, तो अश्वारोही हो आओ,
जब तक रहे गगन पर शीतलता, तुम एड़ लगा जाओ!

२४

आज हमारा है निश्चय कि इसी घंटे हम चढ़े चलें
तीन मील 'ऐपीनाइन' पर्वत की ओर सैर करने,
पूर्व कि सूर्य गिने मनकों-से बेलों पर के ओसिलकण,
आओ, तुम भी साथ हमारे, चलें सैर का सुख लेने।"

लौरेंजो ने बड़ी शिष्टता से, जिसका था अभ्यासी,
झुक कर किया हर्ष-अभिनंदन, नाग-सुतों को सुख देने,
और तुरत वह चला गया, करने को तैयारी अपनी
पेटी कसी, लिया भाला, शिकार की सब सज्जा पहनी।

२५

वह आंगन की ओर चला, रुकता पग-पग पर, सुनता-सा
निज प्रेयसि की ओर रागिनी, या पग की चापें मंथर,
हुआ इस तरह जब उद्विग्न वासना में, सन पड़ा उसे
उच्च हास्य सहसा, प्रमोद-पावस की मानो हो झर-झर,
लगा देखने वह ऊपर, खिल गये नयन बरबस उसके,
देखी अपनी प्रेयसि की छवि, तब वातायन के भीतर
अंग दमकते थे जाली से, मानो छन-छन कर आता,
हर्ष स्वयं सम्पूर्ण भवन-प्रांगण तब जगर-मगर करता।

२६

"प्रिये, इज़ाबेला !" बोला वह, "बड़े सोच में था मैं अब
होना पड़े न विदा, बिना ही किये हुए तेरे दर्शन।
अह, खोदूँ यदि तुझे प्रियतमे, फिर कैसे जीऊँगा मैं !
जब कि तीन घंटे का वियोग ही करता इतना उन्मन !
'पर अब विदा प्रिये! सहकर हम दिन भर का वियोग भारी
शीघ्र रजनि का श्यामल अंचल ओढ़ करेंगे प्रीति-मिलन :
आऊँगा मैं शीघ्र लौट कर! "विदा!" कहा उसने रुककर,
और एक मृदु रागिनी छेड़ी, अपने प्रिय के जाने पर।

२७

अस्तु, भ्रातृ दोनों, औ' उनका वधित मनुज अश्वारोही
हो, चल दिये छोड़ फ्लोरेन्स, जहाँ जलधारा आर्नो की
पथरीले कूलों पर होकर बबल रही है, और स्वयं
पर पंखा झलती नर्तित नरकुल से, व ब्रीम मछली
लघु जलधारों के विरुद्ध सिर उठा रही है। मुरझाये
रोगी से दोनों के मुख करती प्रतिबिम्बित नीर तली,
लेकिन लौरेंजो का आनन प्रेमदीप्त। वे लाँघ गये
नाला औ' वन के भीतर वध करने हेतु प्रविष्ट हुए।

२८

किया गया वध लौरेंजो का, वन में दफनाया उसको,
उसी सघन वन में खामोश हुई मुहब्बत की धड़कन;
आह ! आत्मा कोई जब उपलब्ध मुक्ति करती है यों,
तो निर्जनता में कराहती, नीरवता में भर सिसकन
ऐसे पातक के पीछे खूनी श्वानों-सी विहराती;
उसने खून भरी तलवार डुबाई जल में, और गमन
किया अश्व पर बैठ, भवन की ओर, न थे वे चेतन पर,
इस हत्या के बाद, पाप का भार चढ़ गया दोनों पर ।

२९

आकर बोले इज़ाबेल से, कैसे जल्दी में सहसा
लौरेंजो को करना पड़ा विदेश-गमन होकर मजबूर;
क्योंकि एक अनिवार्य कार्य के लिए चाहिये था सत्वर
ऐसा जन जो हो विश्वस्त; अतः लौरेंजो गया सुदूर :
बेचारी लड़की ! तू पहन अशोभन निज वैधव्य वसन,
और शीघ्र आशा के अभिशापित प्रान्तर से जा अब दूर;
आज नहीं उसको पायेगी, उसे न कल देखेगी ही,
और दिवस आगामी भी होगा तुझको विषादमय ही ।

३०

वह रोती है उन अघटित होने वाले आनंदों पर,
रजनी होने तक न रुक सका किंचित उसका अश्रु-प्रवाह :
फिर उसने प्रेम की जगह, प्रेम की सुखद स्मृतियों में ही,
डुबा लिया मन अपना, जिनसे थी वह अब तक वंचित आह!
श्यामलता में देख रही वह अपने प्रिय का छायाकार,
और अगाध शून्य नीरवता में भरती है विकल कराह ।
अपनी पूरी बाँह, वायु-लहरों पर फैला रही वहाँ,
तड़प रही सेजपर बिलखती, "आह, प्यार! तुम कहाँ, कहाँ?"

३१

किन्तु स्वार्थ, प्रेम का भ्राता, नहीं अधिक दिन रख पाया
उसके एकाकी अंतस में निज उत्तेजित सतर्कता;
शीघ्र हो उठी विकल भेंट करने प्रिय से, औ' अशान्ति से
कटने लगी अवधि उसकी, विह्वलता-पीड़ित आतुरता—

क्योंकि शीघ्र उसका मानस भर गया उच्चतर भावों की
तीव्रता वासना के आवेगों की भीड़ से, दुःखित करता :
हुई जागरित अदमनीय वासना हृदय में उसके प्रति;
यात्राओं के कष्ट, आह! प्रिय सहता होगा, हुई व्यथित।

३२

शिशिराई के अर्द्धकाल में, उसकी साँझों के ऊपर,
बह कर आता है सुदूर से हेमंती का पवन-झकोर,
और रोगिणी प्रतीचि दिशि, करती अविरत है वसुधा को
स्वर्ण-स्पर्श से हीन, और मृत्यु का रूप धर कर चहुँ ओर,
झाड़ी और कुंज-पत्रों में खूब लगाती है चक्कर,
जाड़े के उत्तर-गह्वर में से आने के पूर्व कठोर,
करती नग्न उजाड़ सभी कुछ! सुन्दरि इज़ाबेल यूँ ही
धीरे-धीरे क्षय से मुरझा गई, और श्रीहीन हुई।

३३

क्योंकि नहीं आया लौरेंजो वापस, वह भी कभी-कभी
लेती पूछ भाइयों से, आँखों में पीलापन भरकर,
संभ्रम का कर यत्न, बताओ कैद किया है इतने दिन
किस विदेश के तहखाने ने ?" कही कथा उससे गढ़कर
मिथ्या उन दोनों ने उसको चुप रखने कुछ काल तलक।
आखिर उनके पाप आ गये उभर, कि आता ज्यों उठकर
धूम्रानल 'हिन्नोम'[1] तलैटी से : वे दोनों सपने में
नित प्रलापते, देख बहन को लिपटा कफन हिमानी में।

३४

मर जाती यूँ ही, न जान पाती प्रेमी की नियति, अगर
आती वस्तु न उसके सम्मुख, जो भरती थी भीषणता;
आई वह ज्यों तीव्र घूंट हो मद का, पिया अचानक ही,
जो रोगी को कुछ क्षण, यम की गोदी से रक्षा करता;
वह था भाले के समान जो निर्ममता से बिंध करके
एक 'इण्डियन' के शरीर में, है चेतनता भर देता

---

१. यरुशलम की एक घाटी, जहाँ मोलोच असुर की पूजा में माँ-बाप अपने बच्चों की बलि चढ़ाते थे।

अपने मेघिल प्रकोष्ठ से, स्मृत उसको करता पल-पल,
दिल-दिमाग के भीतर जलती दाह दर्द की तरल-तरल।

३५

यह थी विस्मयकारी ध्वनि, जब बोली यह पीली छाया;
क्योंकि प्रकट करने की कोशिश करती उसकी गिरा करुण,
जैसे वह करती, जब थी वह पार्थिव भूतल पर जागृत,
बड़े ध्यान से इसका गायन इज़ाबेल ने किया श्रवण:
इसमें थकन, कँपकँपाहट थी, मानो किसी बात से ग्रस्त
'ड्रयूड'[१] की वीणा होगई शिथिल, औ' होता था निःसृण
इसमें से प्रेतवत करुण रागिनि की सिसकी सी लय का
कब्रगाह की झाड़ी से ज्यों गुजरे रजनी का झोंका

३६

इसकी आँखें, यद्यपि वन्या, तो भी प्रणय-ओस-कण से
भींगी थीं, चमकीली थीं, औ' हुई नहीं जिसके कारण
प्रेत-भीत वह युवति, छा रहा उनकी आभा का जादू,
जबकि विगत खोलता रहा उन अँधियारे दिन के भीषण
ताने-बाने, गर्व द्वेष की हत्यापूर्ण घृणा-वन में
चीड़ों की काली छत औ' हिमकण से भीगे दूर्वासन
से लदी-फदी उपत्यका वह, जिसमें न एक शब्द भी मुखर,
कर सके अधर उसके किंपूर्व गिर गया क्षुरा का व्रण खाकर

३७

कहा प्रेत ने और, "सुनो! ओ, इज़ाबेल! मेरी प्यारी!
लाल लाल झरबेरी टपका करतीं हैं मेरे सिर पर:
और धरा रहता है सिर पर एक बड़े पत्थर का भार:
देवदारु औ' मूँगफली के पेड़ों से आते झर-झर
शुष्क पत्र औ' मींग नुकीली हरदम मेरे चारों ओर:
आया करता एक भेड़ का रेवड़ पार नदी को कर,
मेरी सेज समीप: चलो, तुम आसूँ एक गिरा आओ,
मेरी झाड़ी पर: मेरी आत्मा में शान्ति रमा जाओ!

---

१. प्राचीन इंग्लैण्ड के पुजारियों का एक सम्प्रदाय।

३८

आह, आह ! मैं तो रह गया, एक परछाईं ही केवल,
मानव जीवन के स्वभाव के कूलों से हो गया परे :
पावन आत्माओं के साथ वार्ताएँ मैं करता हूँ
जबकि बजी जीवन की लघु ध्वनियाँ चारों दिशि में मेरे,
चमकीली मक्खी खेतों की ओर दुपहरी में जातीं,
और समय-सूचना अनेक चर्च के घंटे देकर, रे !
मुझको पीड़ित करते : मेरे लिये अजनबी ध्वनियाँ सब,
और प्रियतमे ! तू अति दूर ! दूर मानवता में है अब !

३९

मुझे ज्ञात है क्या था, खूब मुझे है यह अनुभव, क्या है,
यदि पागल हों प्रेत, मुझे पीड़ा पागल कर जाती है ;
यद्यपि भूल गया, मैं स्वाद पार्थिव सुख का बिल्कुल ही,
तो भी तेरी विवर्णता मेरी समाधि गरमाती है,
जैसे वधूरूप में मैंने स्वर्ग-ज्योति से थी कोई
देवांगना चुनी : विवर्णता तेरी मुझे लुभाती है :
तेरा रूप छा रहा मुझ पर, मुझे हो रही है अनुभव,
उत्कटतर प्रेमाग्नि और भी निज अस्तित्व सकल में अब ।

४०

आत्मा ने अति व्यथापूर्ण 'अलविदा' कहा, औ' हुई द्रवित
और गई मद्धिम-से आलोड़न में छोड़ तिमिर के कण;
जिन्हें कि हम पाते तकिये में, अपनी आँख गढ़ाकर के,
जब निष्फल श्रम की नीरस घड़ियों पर करते हैं चिन्तन,
सुखद निशीथिनि के होते भी, नींद हमारी उड़ जाये,
तब हम करते ज्योति-त्रस्त तम के मेघों का अवलोकन,
उठते, औ'र उबलते ; हैं जो ; तरुणि-पलक थे भाराक्रान्त
इससे, और उषारम्भन के साथ हो उठी विस्मय-भ्रान्त ।

४१

'हा! हा!' बोली वह,'न कठिन इस जीवन का था मुझे पता,
इस निकृष्टतम को समझी थी मैं तो केवल व्यथा सरल,
समझी थी कि नियति ने हमको दुख या सुखवश किया विलग
समझी थी या तो सुख पाऊँगी, या मृत हूँगी निष्फल;

पर यह है अपराध—हाय ! मेरे ही भ्राता का चाकू !
मधुर आत्मा ! तूने हटा दिया शैशव का ज्ञान-पटल :
आऊँगी मैं तेरे पास : करूँगी तेरा दृग-चुम्बन,
और सवेरे-साँझ करूँगी जाकर तेरा अभिनन्दन।

४२

जब हो गया सवेरा उसने किया विचार योजना पर,
किस प्रकार वन के भीतर अति गोपनता से वह जाये ;
किस प्रकार पाये मिट्टी वह, जो उसको इतनी प्यारी !
एक नई ताजी लोरी वह किस प्रकार जाकर गाये :
जबकि परीक्षा करे स्वप्न की सच्चाई की वह वन में,
उसकी अल्पावध अनुपस्थिति नहीं तनिक शंका लाये :
निश्चय किया, और एक बूढ़ी दासी को साथ लिया ;
और उदास गहन कानन में जाने को प्रस्थान किया।

४३

देखो ! कूल, कूल सरिता के कैसे सरक रहे हैं वे
कैसे वह बूढ़ी दासी से है मर्मर स्वर में कहती,
और डालकर एक दृष्टि वह खुले क्षेत्र के चारों ओर,
चाकू उसे दिखाती है वह ; कैसी तुझमें है जलती
बेटी, तप्त लाल ज्वाला यह ! किस सुख की प्रत्याशा में
तू रह-रहकर मुस्काती ? अब साँझ निकट आती चलती ;
और कब्र पर लौरेंजो की, दोनों आखिर पहुँच गईं ;
था चकमक पत्थर ऊपर, झरबेरी सिर पर टपक रही।

४४

कौन नहीं भटका हरियाले कब्रगाह के है भीतर ?
एक दानवी-गंध-मूष सम उसकी आत्मा के दर्शन
करने दो मिट्टी को, कठिन भूमि को खोद-खोद करके।
चुपके से लखने दो अर्थी, हड्डी और कपाल, कफन;
मृत्यु-विकृता हर आकृति पर दिखलाने दो इसे दया,
और पुनः मानवी प्राण का करने दो तुम संचारण !
आह, इज़ाबेला के मानस को थे ये अति क्षुद्र विचार,
जबकि खड़ी कब्र पर प्रणयि की, भरे हृदय में शोक अपार।

४५

उसने घूरा सद्य-संकुलित-ढेरी के भीतर, जैसे
एक दृष्टि-निक्षेप कह गया इसके गुप्त रहस्य सकल ;
उसने देखा स्पष्ट, दूसरे नयन जान सकते जैसा
एक स्फटिक कूप की तली पर पीले अवयव ; वध्यस्थल
पर प्रतीत-सी हुई इज़ाबेला जैसे उगती कोई
एक वनैली नलिन तलैटी में ; फिर अकस्मात भूतल
किया खोदना शुरू इज़ाबेला ने अपने चाकू से,
कृपण मनुष्यों से भी अधिक तीव्रता, और व्यग्रता से ।

४६

सत्वर, उसे मिला दस्ताना, मिट्टी सना, कढ़े जिस पर
रेशम के तारों से नीलिम लोहित विविध कल्पनाकार,
पत्थर से भी शीतल तर अधरों से इसको चूमा फिर
छिपा लिया वक्षों में, जिनसे थमते थे शिशु के चीत्कार,
और जमाया हड्डी तक इसको; फिर काम किया आरंभ,
खोद रही वह मिट्टी बाहर, मन में था चिन्ता का भार,
श्रम-रत थे उसके कर अविरत, तनिक न चिन्तन से उपराम,
पीछे बिखरी हुई अलक को कभी-कभी लेती थी थाम ।

४७

वह वृद्धा दासी अचरज करती समीप थी खड़ी रही,
जब तक हुआ न द्रवीभूत, करुणा से उसके उर की कोर,
देख-देखकर ऐसे पीड़क श्रम को, वह भी हुई प्रणत,
अपने केश सहित, जो सभी श्वेत, और अपने कमजोर
हाथ रखे उस भयकारी पदार्थ के ऊपर : और किया
उन दोनों ने पूरे घंटे तीन, परिश्रम कठिन कठोर;
आखिर दिखी कब्र की मींग,तरुणि ने दिल को किया कड़ा,
पैर न पटके, फूट न रोई, धीरज उसने रखा बड़ा ।

४८

अरे, किसलिये यह सब है वीभत्स परिस्थिति का चित्रण ?
खुली कब्र के ऊपर इतनी देर तलक क्यों अटक रहे ?
अरे, पुरातन प्रेमकथा की मृदुता के हे, आकांक्षी !
चारण के गीत की सरलता-श्री में, ओ, रमने वाले !

प्रिय पाठक ! अब डाल नज़र तू उसी पुरानी गाथा पर,
क्योंकि यहाँ तो बतलाने को बस यह कुत्सित दृश्य रहेः
इसीलिये तू डाल नज़र, अब उसी पुरानी गाथा पर,
और पीत सपने के गायन का जाकर, आस्वादन कर।

४९

'पेरसियन' कृपाण से कम मोंथरी धार के चाकू से
किसी निराकृत दानव का न शीश था धड़ से अलगाया,
पर उसका, जिसकी उदारता झलकी मरने के भी बाद,
जैसी थी वह जीवन में—प्राचीन चारणों ने गाया,
प्रेम न मरता कभी, सदा जीता है, अमर देवता है :
पर जिसमें यह बसा, नष्ट हो गई यद्यपि भंगुर काया,
तो भी पीली इज़ाबेल ने चूमा, सिसकी ली, गाकर;
"यह था उसका प्रिय,यथार्थ में मृत्त,शीतअ—पदस्थ न पर।

५०

चिन्तातुर गोपनता से वह इसे ले चली घर अपने,
और उसी में व्यस्त रही आई सुन्दरी इज़ा दिन भर
सोने के कंघे से मृत के वन्य केश सब शान्त किये,
बरौनियों से ढँके दृगों के श्यामल समाधिवत गह्वर,
और नयन के जल से, जो था निर्झर-पारि सदृश शीतल
स्वच्छ किये रज के कण,जोकि सने थे प्रियतम के मुख पर :
और काढ़ती रही सकल दिन मृत्त शीश,भर-भरकर आह,
उसे चूमती, लिये घूमती, विलख बुझाती उर की दाह !

५१

फिर रेशम के वस्त्र खंड से——जो कि अरब के पुष्पों से
खींचे गये इत्र के सौरभ से उसको अभिसिक्त किया,
शीतल सर्पाकृत नलियों से छाने सद्य सुरभि-रस को
इस पर छिड़का, और शीश को सहज लपेटा, सँजो लिया;
और चुनी इसकी समाधि के लिये जगह उपवन का पात्र
जिसमें अतिशय कोमलता से प्रियतमका सिर लिटा दियाः
और ढँका मिट्टी से तब, औ' तुलसी का पौधा प्यारा
इस पर रक्खा, और बहाती रही अश्रु की ही धारा।

५२

और भूल वह गई सितारों को, चंदा को, सूरज को,
और तरुवरों के ऊपर के नीलम को वह भूल गई :
और भूल वह गई वादियाँ, जिनमें जलधारें धावित,
और हिमानी हेमंती बयार भी उससे बिसर गई,
उसे पता ही नहीं हुआ, अवसान दिवस का कब होता ?
और न देखा नवल प्रात उसने, लेकिन प्रशान्ति में ही
झुकी रही हर समय प्राण-प्यारे तुलसीदल के ऊपर,
और सींचता इसकी जड़ को अविरत आँसू का निर्झर ।

५३

और क्षीण आँसू जल से ही, उसने यह पौधा पोसा,
जिससे यह हो चला पुष्ट, हरियाला, और नयनभावन
अस्तु, हुआ फ्लोरेन्स नगर के समकक्षों से यह बढ़कर
अधिक सुरभि,शीतलप्रद पौधा, क्योंकि खींचता था पोषण
अपना, इज़ाबेल-आँसू से और शीघ्र क्षयशः सिर से
जो था निहित पात्र में, पड़ें न जग के वधिक-नयन ।
अतः रत्न जिसको कि पिटारी में मूँदा अवधान सहित
बाहर आया,और किया लघु सुरभित किसलय में प्रसरित।

५४

आह, देवि करुणे ! थोड़ी सी देर यहाँ पर तुम ठहरो !
ओ, संगीत! गीत!तुम भी अब थोड़ी सी तो भर लो आह!
ओ, अनुगूंज, गूंज, अँधियारे किसी द्वीप से आ जाओ,
अनजाने, लीथियन ! हमारे लिये भरो तुम आह-कराह !
व्यथाग्रस्त आत्माओ ! अपने शीश उठाओ, मुस्काओ !
शीश उठाओ अपने, मधुर आत्माओ ! ले बोझिल छाँह
निज पीली 'मर्मरी कब्र रँग दो सब चाँदी के रँग में,
रचो पाण्डु-द्युति, अपनी उदास साइप्रस की छायाओं में !

५५

यहाँ सिसकियाँ भरो, सभी तुम व्यथा-व्यंजन रह-रहकर,
करुणामय दुखांत-देवि के गहन कण्ठ से उठ-उठकर
उसकी कांस्य-बीन की करुण रागिनी में से होकर तुम
फैलाओ रहस्य का आवह, इसके तारों को छूकर :

भरो सिसकियाँ वायु-लहर पर, हौले-हौले बजो करुण !
क्योंकि आ रही मृत्तक जनों से मिलने इज़ाबेल सत्वर
मुरझाती है वह, उस ताड़ वृक्ष की तरह, जिसे कर्तित
किया किसी भारतवासी ने रसमय प्रलेप के ही हित ।

५६

आह, ताड़ को छोड़ो, इसे स्वयं ही अब मुरझाने दो !
त्वरित शरद इसकी मरणोन्मुख घटिका को न करे शीतल!
किन्तु नहीं यह हो भी सकता ! उन सुवर्ण के भक्तों ने,
उनके भ्राताओं ने देखे उसके निष्प्रभ नयन-युगल
सकते न अश्रु पल भर : आतुर हो उठे अनेक बाँधवजन
पाने भेद, कि जो उपहार जवानी का पाकर उज्ज्वल,
होना जिसे किसी सामंत धनी की दुल्हिन एक दिवस,
हुई दशा क्योंकर उसकी यों शनैः शनैः अब करुण विवश ।

५७

और अलावा इसके, उसके भ्राताओं को अचरज था,
क्यों वह झुकी समीप हरे तुलसी के बैठी रहती थी;
क्यों यह पनप रहा था इतना, मानो जादू से स्पर्शित;
यही बात उनके मन में रह रह विस्मय उपजाती थी,
था विश्वास न उन्हें कि ऐसी क्षुद्र वस्तु में शक्ति निहित,
ऐसी जिसके वशीभूत हो सब सुख भूले बैठी थी,
जिसने वंचित किया सुघर रूप से और उल्लासों से,
और जवानी की प्रणयिक विलम्ब की समस्त यादों से ।

५८

अतः ताक में रहे एक अवसर की, जब वे शोध सकें
छिपी सनक यह; दीर्घ काल तक व्यर्थ प्रयास रहा उनका;
क्योंकि विरल ही वह जाती थी गिरजाघर के पूजन को,
और विरल ही अनुभव होता, उसको किसी बुभुक्षा का;
और छोड़ जाती वह इसको, तुरत लौटकर आती थी,
इतनी त्वरित कि अंडे सेने होता आना चिड़िया का;
और धीरता से इतनी, जितनी तमचुरा, बैठती वह
निज तुलसी समीप, रोती केशों में, रह-रहकर अह रह ।

५६

तो भी किया प्रबंध उन्होंने, तुलसी-पात्र चुराया ही,
और गुप्त-स्थल पर ले जाकर किया परीक्षण फिर उसका;
वस्तु हुई दुर्गंधपूर्ण, नीली विकृत, तो भी उसको
वे पहचान गये कि यही तो था चेहरा लौरेंजो को :
छोड़ गये फ्लोरेंस नगर को पल भर ही में वे दोनों,
फिर न कभी वापस आने,—तत्क्षण अपने इस कुकर्म का,
यही पारितोषिक पाया—औ' किया उन्होंने दूर गमन,
अपने सिर पर खून लगाये, लिया उन्होंने निर्वासन ।

६०

हे, करुणा की देवि ! फेर ले दूर यहाँ से निज लोचन !
ओ, संगीत, गीत ! तू भी नैराश्यपूर्ण भर लेना आह !
ओ, अनुगूँज ! गूँज ! तू किसी दूसरे दिन भरना आहें,
किसी लीथियन' द्वीपमाल से प्रकटा देना उर की दाह !
ओ, विषाद की आत्माओ! मत करुण विहाग सुनाओ निज!
क्योंकि इज़ाबेला ने स्वयं वरण की आज मरण की राह,
हाय, अत्यधिक एकाकी व अपूर्ण मरण वह बेचारी !
छीन ले गये उससे निर्मम वधिक, हाय, तुलसी प्यारी !

६१

करुणाभरी दृष्टि से उसने मृत्त, अचेत पदार्थ लखे,
बात लुप्त अपनी तुलसी की पूछ रही वह रससिक्ता,
औ' अपनी खोई वाणी के तारों में वह कभी-कभी
चीख-चीखकर पूछा करती थी वह होकर विक्षिप्ता,
तीर्थयात्रि से जो कि भटकता आ जाता फ्लोरेंस नगर
'देखा मेरा तुलसी-पात्र कहीं पर ? कैसी निर्ममता
है यह ? मेरा तुलसी-पात्र छिपाया! है वह कितना क्रूर,
है नृशंसता, इसे चुराकर करना मुझको इससे दूर ।"

६२

और इस तरह व्यथित रही वह, और मर गई एकाकी,
अंत समय तक अपने तुलसी दल का करती उलाहना ।
कोई हृदय न था फ्लोरेंस नगर में, जिसको दुःख न था
इतने व्यथा-घनों से ढके प्रणय पर उसके ! थी करुणा

उपजी इसी कहानी से, तब फैली एक व्यथित रागिनि,
सकल देश में एक दूसरे के मुख से अप्रयत्नमना :
अब भी भरी टेक गीतों में, "ओ, यह निर्ममता, है क्रूर !
चोरी कर ले जाना मेरा प्रिय तुलसीदल मुझसे दूर !"

हाइपैरियन*

एक काव्यांश

(Hyperion : A Fragment)

---

* यूनानी पौराणिक गाथाओं में वर्णित एक टाइटिन—यूराइनिस (आकाश देवता) और गेवा (पृथ्वी देवि) का पुत्र। इसका उच्चारण हाइपीरियन भी है।

रचना-काल—१८१९

"हाइपैरियन से ज्ञात होता है कि यदि कीट्स अधिक दिनों तक जीवित रहता, और यदि उसे विषय मिल जाता, तो वह एक महान् काव्य की रचना करता। उसके पास रचना की सहजात प्रवृत्ति है, काव्यिक ओज है, शब्द है, संगीत है। मिल्टन को छोड़कर, किसी अन्य अंग्रेजी कवि के लिये यह बात नहीं कही जा सकती।"

—ऑलीवर ऐल्टन

पड़ी हुई थी शनि की बाहु दक्षिणी, बूढ़ी शीर्ण,
क्लान्त, मृत्त, निश्चेष्ट, और थी राज्य-दंड से हीन ;
प्रान्तहीन दृग बन्द[1] : शीतनत सुनता-सा था बात,
पृथ्वी की जो थी उसकी प्राचीन स्नेहिला मात :
मानो तनिक विराम हेतु हो गया चेतनातीत,
कोई शक्ति न जगा सकेगी, ऐसा हुआ प्रतीत,
लेकिन आई एक वहाँ, जिसने प्रणाम पश्चात्,
(यद्यपि उसके प्रति, जिसको यह हुआ न ज्ञात)
शनि की क्लान्ति-ग्रस्त निद्रा का करने शायद अंत,
छुए बांधवी-कर से उसने पृथुल-स्कंध तुरन्त :
वह थी शिशु जगतीतल की ही कोई 'देवि'[2] महान,
जिसके सम्मुख दीर्घ 'अमेजन'[3] भी वामनी समान;
इतनी थी सशक्त, 'ऐस्किलस'[4]—केशों को दुर्दान्त,
पकड़ उमेठ मोड़ ग्रीवा को, कर सकती थी अन्त,
या 'इक्जियन'[5]—चक्र' उँगली से कर सकती निरुपाय,
उसका मुख 'मैंफीय-स्फिंक्स' सदृश था विराटकाय।
शायद किसी सौध-प्रांगण में स्तम्भित निश्चेष्ट,
जबकि मिश्र देता मनीषियों को सुज्ञान की भेंट :
किन्तु संगमर्मर असदृश था उसका मुख अपरूप,
स्वयं रूप से अधिक रूपमय इसका भव्य स्वरूप,
क्योंकि व्यथा का चढ़ा हुआ था अद्भुत शीत प्रलेप,
चिन्ताकुल भय से पूरित था उसका दृष्टि निक्षेप,
मानो हुआ अभी केवल आरम्भ विपद का काल,

---

१. अर्थात, उसका राज्य छिन चुका था।

२. 'थीया' या देवि—यह हाइपैरियन की पत्नी थी।

३. यूनानी दंतकथाओं में काकेशश पर्वत और काले सागर के तट पर बास करने वाली एक लड़ाकू स्त्री-जाति।

४. ट्राय-युद्ध के विपक्षी योद्धाओं में सबसे भयंकर नृपति।

५. यूनानी 'लेपीथे' का राजा, जिसे 'जव' की गर्जना की नक़ल करने के अपराध में अनवरत चलने वाले एक चक्र से बाँधा था।

जैसे कुसुमय के मेघों की अग्रगामिनी माल,
शेष कर चुकी हो अब तक अपना सब संचित रोष,
पर इसके पीछे आती विपदा का भारी कोष
अभी फूटने, बह उठने को होता है तैयार,
अभी प्रसारित होने को इसका असीम विस्तार।
उसने एक हाथ से थामा पीड़ा का वह स्थान,
जहाँ धड़कनें अपने उर की गिनता है इन्सान,
यद्यपि अविनाशी अमर्त्य था उसका दिव्य शरीर,
तो भी ठीक वहीं पर उसने जानी तीखी पीर:
शनि की नत ग्रीवा पर रक्खा उसने दूजा हाथ,
और कान में किये मर्मरित शब्द व्यथा के साथ,
उसके मुक्त ओष्ठों से फूटी मधुमय झंकार,
ओजपूर्ण गम्भीर शब्द का करती जब उच्चार:
आदिम देवों के विशाल अभिव्यंजन सम्मुख, आह!
लगते हम मर्त्यों की भाषा में कितने असहाय!

"शनिदेव, देवलोक के सुरेश, पुराचीन!
आह, एक बार टुक ऊपर निहारना!
कैसे कहूँ हतभाग्य, आज सो रहा है क्यों,
तेरे लिये मेरे पास सुख है न सांत्वना?
कैसे तुझे धीर दे सकूँगी, नहीं जानती मैं
जबकि स्वर्ग आसन से तेरे हुई वंचना;
पहचानती न मेदिनी भी तुझे अब, वरंच,
देवराज! तेरी करती है अवमानना!

तेरे यश-गौरव की धवलाई से हो रिक्त,
घूमती हवायें तुझे चिढ़ाती हैं दुर्निवार;
तेरे राज्य-दण्ड से विमुक्त रुद्र-सिन्धु का भी
अभिमान व्यर्थ आज करता है निज प्रसार:
तेरी गर्जना भी आज दासी नये राज की हो
भग्न भवनों को कड़काती हाय! बार बार,
आज क्रूर अशनि हमारे शान्त प्रान्त पर
भोंकती अनभ्यस्त कर से ज्वलित कटार।

ओ, कराहते समय, कि तुल्य वर्ष के समान
निमिष विराट ! ज्यों-ज्यों होते तुम विलीन हो :
करते प्रचंडतर, यह दुखांत सत्यमात्र,
श्रान्त वेदनाएँ और करते मलीन हो :
आह, अविश्वास में कि हार सिर्फ दृष्टि-भ्रान्ति
रहता नहीं है उर एक पल लीन हो !
सोये रह ! शनि ! तेरे चरणों में रोऊँगी मैं,
तुझे न जगाऊँ, सोये रह ! भावहीन हो !

जैसे, जब सम्मोहित ग्रीष्म-यामिनी पर वे
दीर्घ 'बांझ'[१] जो प्रबल वनों के हरित-वसन-युत 'सीनेटर[२]' से
प्रखर तारकों से शाखा-विमुग्ध, सपनाते,
औ' यों सपनाते भर रजनी, नहीं एक भी होता स्पंदन,
केवल एक कम्प जो उठता एकाकी मद्धिम झकोर से,
जो प्रशान्ति पर आता, और मृत्त हो जाता,
ज्यों मृण्मय समीर में केवल एक लहर ही शेष रही हो,
त्यों आये यह शब्द, गये भी; उसने आँसू से भर-भरकर,
अपने शुभ्र विशाल भाल से छुआ भूमि को,
ठीक जहाँ उसकी निपतित केशावलि प्रसरित
एक मृदुल रेशमी चटाई बनी वहाँ शनि के चरणों को।
मंद कलाक्रम सहित चन्द्रमा गिरा चुका था
अपनी चार रुपहली ऋतुएँ निशि के ऊपर,
और अभी तक यह दोनों निस्पंद चित्रवत,
ज्यों 'कैथेड्रिल'[३]—गह्वर में प्राकृतिक शिल्पन :
हिम आच्छादित देव अभी तक था लेटा पृथ्वी के ऊपर,
और उदास देवि उसके चरणों पर रोती :
जब तक आखिरकार वृद्ध शनि ने न उठाये

१. ओक (Oak) वृक्ष।

२. इटली की विधान सभा के सदस्य को सीनेटर कहते हैं।

३. प्राकृतिक गुहा के अन्दर उठी हुई चट्टानों का चित्र। कीट्स ने अपनी स्कॉटलैंड की यात्रा में 'फिंगल'—केव देखी थी, उसी का यहाँ स्मरण है।

अपने निष्प्रभ नयन, और देखा अपने खोये प्रदेश को,
और उस जगह की सब करुणा और व्यथा को,
और उस विनत सुघर देवि को; फिर वह बोला,
जैसे लकवाग्रस्त जीभ हो, और जबकि हिल उठी भयंकर
'ऐस्पिन'[1]-व्रत इस रोग-कम्प से उसकी डाढ़ी;

"स्वर्णिम हाइपैरियन की कोमल प्रियांगना, बाले !
करता तेरा अनुभव तेरे मुख-दर्शन से पहले !
ऊपर देख, दिखा मुझको भी, जिसमें छिपा विनाश
और बता मुझको, जिसका होता तुझको आभास
क्या लगती है शनि की काया, सच कहना कल्याणी ?
बता, तनिक जो तू सुनती है, शनि की ही है वाणी ?
यह जो भ्रू तू देख रही, जो नंगी गरिमाहीना,
क्या शनि का समक्ष लगती है, देवी, सचसच कहना ?
कौन शक्तिशाली था ऐसा, जिसने यों असहाय
मुझे बनाया, और किया है मुझको यों निरुपाय ?
शक्ति कहाँ से उसने पाई, करने यों विस्फोट
शक्ति हुई वह चुपके-चुपके पोषित किसकी ओट,
जबकि नियति मेरे कठोर पंजे में थी असहाय ?
पर यह सत्य कठोर : हुआ दुर्भार-ग्रस्त मैं हाय !
दफन हो गये शनैः शनैः सब मेरे दैविक कर्म,
वे सब कार्य कि जिनका करना देवराज का धर्म;
जिनके करने से हल्काता उसके दिल का भार,
आज हो गया हूँ मैं वंचित उससे सभी प्रकार;
जैसे, करना शासित पीले ग्रह-उडुओं का देश
अपने सुप्रभाव से, और स्वयं देना निर्देश
पवनों, और सिन्धुओं को, सब पर ही करना राज,
शान्तिपूर्ण संचालित करना मानव कृषि के काज :
पर छिन गया सभी कुछ मेरा, सब कुछ हुआ विलीन
अपना दृढ़ व्यक्तित्व खो चुका, निजत्व से भी हीन !

---

१. एक प्रकार का पेड़, जो काँपता रहता है ।

आना, शुभे ! तनिक अपनी शुभ-दर्शी दृष्टि पसार,
मुझे खोज ले, शनि को खोज, देवपति को इस बार,
यहीं जहाँ पर बैठा मैं, इस सिंहासन के पास,
अपने शाश्वत नयनों से तू लख पृथ्वी, आकाश,
सब जगहों को देख, सितारों भरी, भरा अँधियार,
प्राण-वायु से भरे प्रदेशों में तू दृष्टि पसार,
वंध्या सूनेपन में, नारकीय गह्वर की ओर,
देवि, ध्यान से तनिक जमाना निज नयनों की कोर,
और बताना क्या दिखलाई देती कोई छाँह,
या परवाली, अथवा बना रही हो कोई राह
और स्वर्ग की, रथारूढ़ हो, कोई भीषणकाय
फिर पाने सिंहासन, जो कि छिना उससे असहाय ?
लो ! वह लग्न समीप, आ रही है वह बेला पास,
वह होगा सुरपति शनि, दिखता उसका भव्य प्रकाश ?
हाँ, वह होगा शनि ही, अरि-देवों की होगी हार,
और बजेगी शान्त विजय की दुन्दभि, जयजयकार
गूंजेगा कनकाभ मेघ-प्रान्तर में, चारों ओर
कोमल ध्वनियाँ तिरती होंगी, होगा उत्सव-रोर;
रौप्य कम्प गुंजरित करेंगे सीप-वाद्य के तार,
दिग-दिगंत में प्रार्थन-गीतों का होगा गुंजार;
सकल वस्तुएँ सुन्दर होंगी, होंगी नवल अनूप;
विस्मित होंगे व्योम-पुत्र सब, निहार जिनका रूप;
मैं तब सिंहासन पर से, दूंगा सबको आदेश !
आह ! किन्तु अब कहाँ ? कहाँ शनि ? कैसा उसका वेश ?

इस ईप्सा के वशीभूत हो, वह उठ गया पैर के बल,
और वायु में करने लगीं भुजाएँ उसकी संघर्षण;
हुई विकम्पित, स्वेदमयी उसकी ड्रूयडवत केशावलि,
स्तब्ध हुई वाणी उसकी, हो गये नयन भी अग्निवरण :
खड़ा हो गया, वह न देवि की सुन पाया गहरी सिसकी,
फिर कुछ थमा, और फूटी यों अधरों से वाणी उसकी;

"धिक्कार ! शोक जो करूँ मैं इस बात पर कि
छीन लिया सुख-स्वर्ग मेरा राज-पाट सब :
क्या न कर सकता नवीन विश्व का सृजन,
रच नहीं सकता क्या भुवन विराट अब ?
कहाँ गया रे ! प्रलय ![1] रचना करूँगा नई
व्यर्थ होगा जोहना पुराने की यों बाट अब ;
कहाँ गया अब प्रलय ? नई सृष्टि जन्म लेगी,
फिर से बनेंगे वही मेरे ठाठ-बाट सब;

'कहाँ' 'कहाँ' का घोष औलम्पस[2] तलक तब छा गया;
विद्रोहियों की त्रयी[3] में सहसा विकम्पन भर गया;
तब देवि के मुख पर गमकती शुभ्र आशा की किरन,
(भयभीत थी, तो भी) अधर से फूटते थे यों वचनः—

"तेरे इन वचनों से शनि, यह सौध हमारा आज,
"गमक उठा आनंद किरन से, हुआ हर्ष का राज।
"आ, शनि, उठ ! अपने मित्रों के चल समीप तत्काल,
"पराभूत, नैराश्य तिमिर में ग्रस्त पड़े बेहाल :
"चल उन तक तुरन्त आशा, नव बल का ले सन्देश,
"भरे स्फूर्त्ति उनके प्राणों में, पायें पुनः प्रवेश :
"जहाँ पड़े हैं पराभूत सुरगण, पीकर अपमान।
"चल भर दें इनके उर में विस्मृत गौरव-अभिमान।"
इतना कहकर सविनयनयना देवि चली तत्काल,
पीछे-पीछे पग धरती, पहले, फिर बदली चाल;
मुड़ी तुरन्त, सघन पथ में दिखलाने शनि को राह,
चीर चले वे घने पुराने तरु-कुंजों की छाँह :

---

१. प्रलय (choas) यवन पुराणों के अनुसार सकल पदार्थों की सृष्टि से पूर्व प्रलय ही था, इसी से आदि देवता ऐरेबोस (Erebos) और देवि निशा (Night) पैदा हुए, जिनसे वायु और दिवस की उत्पत्ति हुई। फिर सृष्टि चली।

२. ज्यूस-कुल के देवों का वास-स्थान—मेसीडोनियाँ और थिसेली के बीच का पर्वत भाग।

३. जव, नेपच्यून और प्लूटो (क्रमशः आकाश, सागर और आन्तरिक प्रदेश)।

दिया मार्ग दोनों को, ज्यों घन-कुहरे का विस्तार
देता है नीड़ों से उड़ते गरुड़ों को अनिवार।

तब तक अन्य प्रदेश वृहद अश्रु से गये भर,
इससे हुआ विषाद और परिताप तीव्रतर,
इतना अधिक कि मर्त्य जीभ या लेखनि ही से
सम्भव हो सकता न इसे प्रकटाना, ऐसे;
भयद, स्वयं-गोपी, कारा के बन्दी, 'टाइटन'
तड़प उठे पाने फिर से सम्बन्ध पुरातन;
बड़ी कसक से सुने देवपति शनि के वे स्वर,
रहे दबाये वे उर में पीड़ा का सागर:
पर इन महाकाय जीवों में एक अचंचल,
उसकी प्रभुता, शासन-गरिमा अब तक अविचल,
वह था हाइपैरियन, ज्वलित वृत्त पर शोभित,
सूंघ रहा था गंध अगुरु की, होती धावित
जो आदित्य देव को धरती के प्राणी से,
तो भी रहा अरक्षित अजान आशंका से;
जैसे हम मनुजों को घेरा करते असगुन,
चिन्ता से हम भरते, बढ़ता उर का कम्पन,
वैसे ही था वह भी अतिशय कम्पित भय से,
श्वान भूँक[1] से नहीं, न घुग्घू की चीखों[2] से,
या न सुपरिचित प्रेत छाँह ही के दर्शन[3] से,
जो आता निज बन्धु-महायात्रा-घंटी के
प्रथम नाद को सुनकर, अथवा अर्द्ध-निशा पर,
दीपक से उठते भविष्य-वक्ता के जब स्वर,[4]
नहीं, हाइपैरियन, नहीं कम्पित इन सबसे,
उसके भय तो उसके बल के ही समान थे।
उसका दीप्त महल जो सधा हुआ चमकीले
आभायित विराटतर सोने के स्तूपों से,
औ' काँसे के शंकुल स्तम्भों की छाया से

१, २, ३ और ४ अपशकुन बतलाने वाले विभिन्न चिन्ह।

वह था स्पर्शित; और सहस्त्र प्रांगणों में से,
गुम्बज, महराबों, गैलरियों में से होकर,
रक्तावरण प्रकाश दमकता जगर-मगर कर;
औ' इसके ऊषा के मेघावरण सभी वे,
भरे रोष से लाल-लाल झलमला उठे थे :
भर-भर उठते गरुड़-पंख भी कभी अँधेरा ?
जिन्हें न देवों या विस्मित मनुजों ने हेरा,
और हिनहिनाहट अश्वों की सुनी गई थी,[1]
जिन्हें न देवों ने या विस्मित मनुजों ने ही
कभी सुना था; फिर, जब उसने चाहा इतना
अगुरू धूम की स्वादमयी मालाएँ चखना,
जिनका होता है पवित्र शैलों से उठना,
तो मधु के बदले में पाती उसकी रसना,
सहसा जैसे मलिन धातु का स्वाद कसैला,
पीतल का-सा तीखा कड़ुवापन ज़हरीला;
जब यों सुप्त हुआ शयनिल पश्चिम के भीतर
रम्य दिवस के पूर्ण परिक्रम के तदनन्तर,
पाने सुख-विश्रान्ति दिव्य ऊँची शय्या पर,
और गीतिका की बाँहों में निद्रा सुखकर,
खूँदी उसने सुखमय घड़ियाँ श्रान्ति-हारिणी,
दूर-दूर तक भीम पग-ध्वनियों से अपनी,
जबकि सुदूर प्रत्येक कक्ष, कमरों के भीतर,
खड़े हुए थे उसके सब नभचारी अनुचर,
सिकुड़े-सिमटे विस्मय करते थे भय-विह्वल,
जैसे होते चिन्तित, भयार्त्त, मानवीय दल,
एकत्रित मैदानों में, विपत्ति के मारे,
भू-कम्पित जब उनके गुम्बज औ' घर द्वारे :
अब भी जबकि जागरित था शनि हिम निद्रा से
करता था अनुसरण देवि का वन प्रान्तर से :
हाइपैरियन पीछे ज्योति-प्रभा को तजकर;

१. अपशकुन बतलाने वाले विभिन्न चिह्न ।

सरक उतर आया पश्चिम प्रवेश-स्थल पर,
तब जैसी कि प्रथा प्रासादी द्वार तुरत ही
खुला, अतीव स्निग्ध शान्ति में था सत्वर ही :
केवल मृदुल विहरती ध्वनियाँ मंथर मर्मर,
गीत मधुर बहते अशान्त नलियों से होकर,
जिन्हें प्रतीची का गम्भीर समीर फूंकता,
और द्वार जो पाटलवत सिन्दूरी लगता,
वैसी ही आकृति का, कोमल और सुरभिमय,
और लोचनों को लगता वह शीतल अतिशय,
आतुर है प्रविष्ट करने वह भव्य वेश द्युत,
पूर्ण मुक्त हो रहा देवता के प्रवेश हित।

उसने प्रवेश तो किया, रोष से भरा वदन,
उसकी जलती पोशाक एड़ियों से बाहर,
वह गरजा, ज्यों हो उठा अग्नि का विकट कोप,
हो उठी नम्र घटिका भी तब भय से थर-थर;
भर गया कम्प उसके दोनों खग-पंखों में।
देवता बनाने लगा वृत्त द्युति के अविरत,
वह घूम-घूम राजसी अभ्र गुम्बज-गुम्बज
सुरभित, पुष्पित, ज्योतित कुंजों औ' रत्न-जड़ित,
द्युतिमान, दीर्घ महराबी पाँतों में धावित;
झूमता रहा उन्मत्त रोष से तप्त देव,
जब तक न चषकवत गुम्बज में वह पहुँच गया,
जिसके नीचे हो खड़े जड़ा निज पदाघात,
आमूल स्वर्ण-प्रान्तर उसका डगमगा गया।
इसके पहले कि बन्द हो गुंजित कड़क घोष,
गूंजा दिक्-मण्डल में बाहर उसका निनाद,
दैविक संयम का बाँध तोड़ वह गरज उठा
इन शब्दों में बहकर फूटा उसका प्रमाद :

"ओ, मेरे निशि के, वासर के सपनों बोलो !
ओ, दैत्य सरीखी आकृतियो ! दो मुझे पता !

मेरे विषाद के चित्र सजल कह दो मुझसे,
शीतल विषाद में लिप्त प्रेत, दो मुझे बता!
ओ, अन्ध गह्वरों के पतले कानों वाले
सब भूत प्रेत, तुम कहो, तुम्हें क्यों देख रहा?
क्या मेरा चिर अस्तित्व हुआ विच्छिन्न आज?
यह भय के नव दुर्दान्त रूप क्यों लेख रहा?
शनि का हो चुका पतन, क्या मेरा भी होगा?
क्या मैं भी सुख की सेज छोड़कर जाऊँगा?
आशीषमयी ज्योति का शान्त ऐश्वर्य्य सभी,
स्फटिकयुक्त प्रासाद, सौध, पावन मंदिर,
मेरे चमकीले साम्राज्य के, हुए सभी
मेरी छाया से रिक्त, शून्य नीरव, निर्जन।
मैं नहीं देख पाता आभा, द्युति, संगति को
सब ओर दृष्ट है मृत्यु, और घन-अंधकार;
मेरे विहार के केन्द्र तलक मँडराते हैं,
दुःस्वप्न-चित्र करने को मुझ पर अनाचार,
करने अपमानित, अंध, रुद्ध मम शान-बान?
क्या पतन? नहीं, 'टेलस'[1] की मुझको शपथ रही,
है शपथ लवणमय उसकी सब सज्जाओं की
फैलाऊँगा अपने प्रदेश की भयावही
सीमा के ऊपर, निज भीषण दक्षिणी बाहु;
तब काँपेगा, वह शिशु-गर्जक, विद्रोही 'जव',
चुप खड़ा हुआ भयभीत, और लेने दूंगा
मैं बूढ़े शनि को उसका खोया आसन तब।
वह बोला, थम गया देर कुछ, उसकी यह धमकी गुरुतर,
रही कण्ठ से जूझ, नहीं आ पाई अधरों से बाहर,
जैसे, जब बढ़ता जन संकुल, रंगमहल में बढ़ता शोर,
'चुप' 'चुप' जब करने लगता है, तो बढ़ता ही जाता रोर;
वैसे, हाइपॅरियन के शब्दों से भूत-प्रेत सारे,
पीले पड़े, स्वयं-आन्दोलित, शीत हुए भय के मारे;

---

१. टेलस (पृथ्वी माता)।

और दर्पणी तल पर से वह जहाँ खड़ा, तब उठ आया
एक कुहासा मलिन दलदली पृथ्वी पर से आ छाया।
इस पर उसकी काया में उठ खड़ी हुई धीरे-धीरे,
एड़ी से लेकर छत्र तलक तीखी पीड़ा की झकझोरें,
जैसे कोई लचकीला सर्प बृहत माँसल रेंगा करता
है मंद-मंद पथ पाने को, जब तन पीड़ा से भर उठता।
होकर विमुक्त प्राची द्वारों की ओर तुरत पर प्रसराये;
इससे पहले कि सजल निश्चित ऋतु में ऊषा ही मुस्काये,
उसने पूरे छह ओसपूर्ण घंटे तक श्वास सुदीर्घ लिया;
निद्रालु तोरणों के सम्मुख, भारी वाष्पों से स्वच्छ किया
फिर खोल दिया चौपट सहसा, सागर की शीतल धारों पर,
वह ज्वाला का ग्रह-वृत्त, नित्य वह जिसके ऊपर चढ़-चढ़कर
करता था सैर व्योम मंडल की प्राची से प्रतीचि दिशि में,
था भ्रमणमना अब वह उन मेघों की ही कृष्ण-यवनिका में,
अतएव, पूर्ण आवृत्त, अंध, प्रच्छन्न नहीं था वह, उसमें
थे सतत और द्रुत झाँक रहे, परिवृत्त, परिधियाँ, महराबें,
औ' चौड़ी पट्टी वाले वृत्त हो रहे जिन पर संदीपित,
आवर्त्तक तिमिराँचल ऊपर, आलोक शिरा कर गये खचित;
नीचे के तल से चरम बिन्दु तक तड़ित शिखायें मधु-आकृत,
प्राचीन चित्रलिपिमाला के नाम से हुई हैं जो वर्णित,
जो धरती के वासी संतों के, औ' भावी वक्ताओं के
अपने अविरत सश्रम-चिन्तन-पूरित ही शत-शत वर्षों के
पर्यवेक्षण के द्वारा ही तो जय कर पाये थे वे इस पर;
अब सब विलुप्त; अब शेष रूप में बचे हुए खंडित प्रस्तर,
अथवा काले 'मर्मर के वे वृहदावशेष जिनका महत्व
काल के गाल में हुआ विलय, हो गई बुद्धि गत कब की अब !
इस ज्वलित वृत्त के पास रहे थे भव्य रुपहले पंख युगल,
जो हाइपैरियन के आने पर, ऊपर को उठते तत्पल;
औ' अब इनके लघु पर उठते, लखकर विषाद का यह लक्षण
अतंतः खुल गये पूर्ण; जबकि द्युत मंडल ने था रखा ग्रहण,
कर रहा प्रतीक्षा हाइपैरियन के आदेशों की अविरत,
दे सकता था सहर्ष आदेश, राज्य आसन को भी अविकृत;

वह कर सकता था यह सब कुछ, थी बात अगर परिवर्तन की;
पर यह था संभव नहीं—नहीं, यद्यपि था वह भी आदिम सुर;
वह भंग नहीं कर सकता था पुनीत ऋतुओं का परिक्रम पर।
अतएव, उषा के क्रिया-कलाप रहे सब ही ज्यों के त्यों ही,
जैसा कि हमें बतलाया गया रुपहले पंख परस्पर ही
सहमत हो प्रसरित हो आये, वे वृत्त तिराने को आतुर,
विस्तृत ड्यौढ़ी खुल गई रजनि के धूसर प्रान्तर के भीतर :
उज्ज्वल 'टाइटिन' इन नई व्यथाओं से मानो पागल होकर,
था अनभ्यस्त झुकने का, तो भी विवश हो गया वह सत्वर।
इस कठिन काल के दुख समक्ष; उसने अपने को फैलाया
साथ ही धुआँरे मेघों के, निशि-बासर सीमा पर छाया
दुःख से होकर मर्माहत, निष्प्रभ, मलिन और वह जैसे ही
उस ठौर शयत हो गया, गगन अपने तारों के साथ वहीं
होकर संवेदित, और सदय, वह टाइटिन को देखता रहा,
औ' कानों में, भूमण्डल से यों 'कोलस'[1] का स्वर-स्रोत बहा—

"ओ, मेरे पुत्रों में कोमलतम, वसुन्धरा-जात !
नभ-पोषित ! तू पुत्र रहस्यों का, जो हुए न ज्ञात
उन तत्वों को भी, जो तेरे पवित्र सिरजनहार;
तेरे हर्ष, मृदुल स्पन्दन पर है आश्चर्य अपार,
कैसे पैदा हुए, कहाँ से आये हर्षिल रूप ?
विस्मय मुझे, जनित होते उनसे, जो दृश्य अनूप
बनते उनसे बहुवर्णी जीवन के रूप विचित्र,
जो इस सुन्दर जीवन के उत्कृष्ट प्रतीक पवित्र
जो विकीर्णित हैं उस शाश्वत सूने में अदृष्ट :
इन्हीं नवल निर्मित में से तू, है उज्ज्वलतम सृष्ट !
इनमें से ही तेरी बंधु-देवियाँ देव समस्त :
पर तुम सब आपस में लड़कर हुए परस्पर त्रस्त।
हाय ! आज करता है पुत्र पिता के प्रति विद्रोह;
देखा मैंने पिता और सुत का संघर्ष असोह;
पिता हारकर तजता है राज्यासन, शासन देश,

१. कोलस (आकाश देवता)—देवों का जनक ।

प्रथम जन्मना शनि का कैसा पराभूत था वेश !
हा ! सहाय्य के हेतु पसारी थी मुझ तक भी बाँह,
उसकी सकरुण वाणी ने पाई थी मुझ तक राह।
मैं पीला पड़ गया, हुआ मुख मेरा वाष्पाच्छन्न;
क्या ऐसी ही तेरी भी है पतन-घड़ी आसन्न ?
धड़क रहा है एक अगोचर भय से मेरा प्राण।
देख रहा मैं बहुल देव-पुत्रों को दैत्य समान !
हाय ! सृजे तुम सभी गये थे दैविक और सुधीर,
शासन करते रहे देव सम शान्त, पुण्य, गम्भीर;
पर मैं देख रहा हूँ तुममें भय, आशा, औ' रोष,
लोभ, वासना की प्रवृत्तियाँ, और सभी वे दोष,
जिनसे पीड़ित रहता भंगुर भूतल का इंसान;
पर तुम तो हो देव, इसी दुःख से दहते यह प्राण !
पुत्र ! चिन्ह है यह दुःख के, अतिशय समीप है नाश,
शायद हो कल्याण, शक्ति भर कर तू स्वयं प्रयास !
तू है सर्वशक्तिमय सुर, वायवी शक्ति तू, तात !
संभव है तुझसे बन जाये यह सब बिगड़ी बात;
तू ही है जो मलिन काल से कर सकता संघर्ष,
उन घटिकाओं से, जो लाती यह विषाद अपकर्ष;
मैं तो केवल वाणी, मेरा जीवन आँधी-ज्वार,
मेरा तो उपलक्ष्य यही, ज्वारों का हाहाकार !
पर तू कर सकता है विषम परिस्थिति से उद्धार,
अतः अग्रगामी स्थिति के रथ पर हो तुरत सवार,
पकड़ तीर का सिरा पूर्व हो प्रत्यंचा-टंकार।
चल पृथ्वी की ओर !
वहीं मिलेंगें तुझे वत्स ! शनि, औ' अभिशाप कठोर !
तब तक तेरे दीप्त सूर्य का लेता रक्षा-भार,
और करूँगा तेरी ऋतुओं का पोषण अनिवार !
स्वयं हूँगा कर्तव्य-विभोर !
यह प्रदेश-मर्मर आधी भी हो पाई न समाप्त,
इससे पूर्व कि हाइपैरियन उठा गात अवदात,
नक्षत्रों के ऊपर अपने बंकिम पलक उघार,

जब तक हुआ न बंद मर्मरण, खुले रहे दृग-द्वार,
अब भी वैसे ही चमकीले कम्पित नखत अछोर,
अपना वक्ष प्रशस्त झुकाकर वह नीचे की ओर,
आगे बढ़ वायवी पुलिन पर, नमित किया निज भाल,
और छलाँग भरी गहरी नीरव निशि में तत्काल।

खण्ड २

व्यापक समय-परों की ठीक उसी फड़-फड़ के ऊपर,
सरक गया सरसरित पवन के भीतर हाइपैरियन;
और आ गया साथ देवि के शनि भी करुण स्थल पर,
शोकाकुल थे जहाँ 'सिबेले'[1] औ' आहत 'टाइटिन' गण।
यह थी माँद जहाँ कोई अपमानक आभा आकर,
नहीं जगमगा सकती उनके अश्रुकणों के ऊपर;
जहाँ स्वयं वे अनुभव करते अपनी सजल सिसकियाँ,
पर सुन पाते नहीं, क्योंकि अविराम उँड़ेल रहा था
अपना भार; (नहीं था ज्ञात किस दिशा में यह लेकिन)
घोष प्रचंड कर्कशा जलधारों, गर्जित झरनों का:
प्रलम्बवत होकर कगार से कगार मिलित हुए थे,
और शिलाएँ जो कि सतत ही यों प्रतीत होती थीं,
मानो गहन नींद से अभी उठों लेकर अँगड़ाई;
भिड़ा रहीं मस्तक से मस्तक, जिन पर दैत्य सरीखे
शृंग उठे थे, और सहस्त्र दीर्घ कल्पाकृतियों से
इस विषाद नीड़ के सर्वथा योग्य एक छत निर्मित:
सिंहासन के बदले था, अब कठोर चकमक प्रस्तर
उनका आसन: और बनी थी उनकी शय्या अनगढ़
पाषाणों से, और सिलेटी शैल-कूट से जो था
लौह-संग से और दृढ़ायित: हुए न सब एकत्रित:
कुछ उत्पीड़न-बद्ध, और कुछ घूम रहे थे उन्मन;
'कोयस'[2] और 'गायनिस,'[3] दैत्य 'बाइरिस,'[4] और 'टाइफन,'[5]
'डोलर,'[6] 'पोरफीरियन,'[7] और अनेक प्रहारक दृढ़तम,

---

१. शनि की पत्नी (दूसरा नाम ओप्स), कोलस और टेरा की पुत्री।
२, ३, ४, ५, ६ और ७. टाइटन-देवता, कोलस और टेरा के पुत्र।

सश्रम - श्वासित - प्रान्तरों के भीतर काँप रहे थे :
पिंजरस्थ थे अपारदर्शी तत्व मध्य वे सब ही
अब भी जकड़े रखने अपने दाँतों की जकड़न को,
उनके अवयव सभी हो गये कठिन-कठोर इस तरह
मानो वे सब कसे-भिंचे धात्विकी शिराओं में हों;
निश्चल थे सम्पूर्ण, विराट हृदय था उनका केवल
स्पन्दनमय, पीड़ा से श्वासित और भयावह रोगी;
'नेमोशाइन'[१] देवि कर रही भ्रमण अवनि के ऊपर,
'फोबी'[२] अपनी शशि से दूर भटकती घूम रही थी;
और अनेक विहार कर रहे बाहर स्वतन्त्रता से,
पर अधिकांश शरण पाते थे इसी भयद गह्वर में।
जीवन के प्रतिचित्र विरल थे, इधर-उधर थे बिखरे,
छोर सहारे पड़ीं हुईं उनकी सुदीर्घ कायाएँ,
लगते, मानो 'ड्रयूड[३]-पाषाणों के श्याम-वृत्त जो
किसी व्यक्त-क्षेत्र पर, साँझ भी मुद्रित हो जाती जब,
होती है आरम्भ शीत वर्षा रसहीन शरद में,
औ' उनकी 'चांसिल'[४] छत, स्वयं व्योममंडल भी, होते
अंधे धुंधपटल के भीतर ही सारी रजनी भर।
था प्रत्येक रहस्य-विमूक, नहीं करता था बातें
अपने निकट पार्श्विक जन से भी, न देख पाता था,
या नैराश्य कृत्य का करता नहीं प्रदर्शन था वह।
'क्रेयस'[५] भी था एक वेदनाक्रान्त देवताओं में,
पड़ा समीप एक लोहे का गुर्ज विशाल वहाँ पर :

---

१. (Mnemosyne)—कोलस, टेरा की पुत्री। जुपीटर द्वारा नौ संगीत देवियों (muses) की जननी। यवन-पुराणों में 'स्मृति की देवि' से विख्यात।

२. फोबी (Phoebe)—कोलस, टेलस की पुत्री। यह शशि की देवि की दादी थी, पर कीट्स ने यहाँ (और अन्यत्र भी) शशि के रूप में स्वीकार किया है।

३. ड्रयूड (Druid) पत्थर—स्लेटी पत्थर, जो दूर से भेड़ों के झुण्ड-से लगते हैं।

४. चांसिल छत (Chancel vault)—गिरजे के उस हिस्से की छत, जिस पर वेदी बनी रहती है।

५. एक टाइटन देवता।

और शिला का एक खंड बिखरा टुकड़े-टुकड़े हो।
जो उसकी यों व्यथामग्नता की स्थिति से पहले के
भड़के रोषानल के अभिव्यंजन का प्रतीक था वह।
और दूसरा था 'आइपीटस'[1] पड़ी हुई शोणित से
लथपथ एक व्याल की पिचली ग्रीवा थी जकड़न में,
जिसके आगे निकली दुफली जिह्वा थी नोंकीली,
औ' वह लम्बा कीट वहाँ गुँजल्कहीन था सोया;
क्योंकि नहीं वह अपना तेज हलाहल उगल सका था
जेता 'जव' की ही आँखों में: इसके समक्ष लेटा
सीधी देह किये, था 'कोटस'[2]: ऊँची उसकी ठोड़ी,
मानो वह पीड़ा से विह्वल होकर तड़प रहा था;
क्योंकि रगड़ता पत्थर से अपना कपाल रह-रहकर;
खुला हुआ था मुख उसका, औ' आँखें थी भयकारी;
थी समीप उसके 'एशिया'[3], विराटाकार 'कॉफ' से
जिसका जन्म हुआ: उसके हित कठिन पीर थी झेली
उसकी माँ 'टेलस' ने तुलना में अन्यान्य सुतों की
नारीवत: छाये विषाद से अधिक गम्भीर भाव थे
उसके श्यामल आनन के ऊपर: कर रही क्योंकि वह
अपनी गौरव-गरिमा की भविष्यवाणी: औ उसके
विशद कल्पना-पट के ऊपर, खड़े हुए ताड़ों की
छायाओं में थे मंदिर, वे प्रतिद्वंद्वी, देवालय,
आमू औ' गंगा की पावन द्वीप-मालिकाओं में[4]।
जिस प्रकार, आशा अपने आश्रय पर होती विनमित,
वह भी झुकी दंत पर, (पर न सुघरता से वह इतनी)
जो उसके सबसे विशाल गज से ही हुआ पतित था।
अनगढ़ शिलाखण्ड की ताक बनी थी उसके ऊपर,
जिस पर टेके अपनी कुहनी, सब अवयव प्रसराये,

---

१. और २. प्रमुख टाइटन देवता।

३. एशिया (Asia)—कोलस-टेरा की पुत्री। आइपीटस की पत्नी।

४. कीट्स भ्रमवश गंगा में पावन द्वीपों की कल्पना करता है।

'ऐन्सेलैडस'[1] देव वहाँ धुँधला-सा था दिखलाई :
जो था रहा कभी पालतू और नम्र, चरता ज्यों
कोई वृषभ मस्त खेतों में : किन्तु हुआ था अब वह
बाघ समान भयंकर : क्रुद्ध सिंह-सा निडर भयानक,
अपने दाँव-पेंच में तन्मय, अब भी था रह-रहकर
उलट-पुलट करता था, कुछ ही काल पूर्व तो उसने
किये परास्त शत्रु देवतागण, द्वितीय समर में,
विवश हुए वे पशुओं, विहगों के रूपों में छिपने।

उससे दूर नहीं था 'ऐटलस'[2] : और पास ही 'फोर्कस'[3]
'गोर्गनों'[4] का था जो स्वामी, पड़ा हुआ वह भी श्लथ।
था निकटस्थ 'ओसनस,'[5] वरुणदेव जो ; औ' थी 'टेथस'
समीप ही, जिसकी गोदी में सिसक रही 'क्लाइमैनी ;[6]
उसके उलझे हुए केशदल अबंध थे छितराते।
सबके बीचों बीच मौन लेटी थी देवी 'थीमिस'[7]
'ओप्स'-चरण के ऊपर, मेघावृत्त अगोचर थी वह।
कोई आकृति नहीं साफ दिखलाई देती थी तब,
जैसे चौड़े शिखरों को ढक लेता है अँधियारा ;
और अनेक नाम थे ऐसे जो न कहे जा सकते,
क्योंकि संगीत देवि के पंख वायु की दिशि में ही जब
प्रसराये जाते, तो उसकी उड़ान को कर सकता
कौन विलम्बित ? अब उसको गाते हैं शनि औ' उसकी
पथ प्रदर्शिका के गायन, चढ़ चुके जो कि अब इतने

---

१. ऐन्सेलैडस (Enceladus)—कोलस, टेरा का सर्वाधिक शक्तिशाली पुत्र।

२. ऐटलस—आइपीटस का पुत्र।

३. फोर्कस—एक प्रमुख टाइटन।

४. गोर्गन—फोर्कस और सेटो की दानवी पुत्रियाँ, जिन पर नजर गढ़ाते, पत्थर हो जाता था।

५. ओसनस—आदि वरुण देवता।

६. क्लाइमैनी—ओसनस और टेथिस की पुत्री।

७. थीमिस—ज्यूस की पत्नी।

ऊपर भीगे, और फिसलने वाले तल से जिसकी
गहराई अब भी भय का संचार कर रही दर्शित
उन दोनों के शीश हुए अब काले—शिलाखण्ड पर,
उनके ऊँचे क़द ऊपर को धीरे-धीरे उठते,
नहीं जब तलक उनके पैरों को मिल पाया समतल:
और 'देवि' ने अपनी दोनों बाहों को फैलाया,
इस विषाद-नीड़ की सरहदों के बाहर तब उसने
डाली तिरछी दृष्टि देव शनि के आनन के ऊपर,
जिस पर कठोर संघर्षण की खचित हुई रेखाएँ;
वह सर्वोच्च देवता जूझ रहा था तब पीड़ा की,
और रोष की, भय की, दुश्चिता की, प्रतिहिंसा की,
आशा की, पर सबसे अधिक निराशा की ही सारी
दुर्बलताओं से, उसके प्रयत्न थे असफल सारे
नहीं शमित किंचित कर पाया था वह इन रोगों को;
क्योंकि नियति ने डाला निर्मम उसके सिर के ऊपर,
नश्वरता का तैल अदैविक, औ' अपूत हालाहल:
इससे, उस देवी थीया' का उर भी था भय विह्वल,
पर वह रही शान्त ही, और गुजरने दिया देव को
पहले आगे उन परास्त टाइटन देवों के दल में।

ज्यों हम मरणशील मनुजों का हो जाता है हृदय उदास,
व्यथित, और बोझिल, विह्वल, आता जाता यह जितने पास
उस शोकाकुल गृह के, जिसमें उसी व्यथा से हो संत्रस्त,
तड़प रहे हों अन्य हृदय, त्यों ही शनि और हो उठा त्रस्त;
ज्यों ही उनके मध्य बढ़ा वह, अकस्मात् उसका चैतन्य
हुआ विलुप्त, और वह भी था होने को, जैसे थे अन्य,
कि ऐन्सेलैडस-नयनों पर, उसकी दृष्टि पड़ी तत्काल,
उसके बल, उसके प्रभाव ने दिया शक्ति का दीपक बाल;
उसके खिन्न हृदय में सहसा, हुई प्रेरणा ही साकार,
और तुरत सावेश टाइटनों की दिशि में वह उठा पुकार;
"अरे! टाइटनो! अपना देव निहारो!" सुनकर उसके शब्द,
कुछ कराहते, कुछ चिल्लाते, कुछ रोये, कुछ थे निस्तब्ध;

कुछ ने सुरपति शनि समक्ष ही सादर विनत किया निज भाल,
अपना घूँघट उठा 'ओप्स' ने, दिखलाये निज पीले गाल;
शोभाहीन भाल, उसकी पतली, काली, बंकिम भ्रू दीन,
और गर्त्त में घुसे हुए लोचन मलीन, आकर्षण-हीन।
जैसे होता शीत शुष्क भू पर, उगते चीड़ों में नाद,
जब उठती आवाज शरद की : वैसे ही हो रहा निनाद :
उन अमर्त्य देवों में जब भी करता कोई देव प्रयास,
कि चुप करे उठाकर उँगली, औ' यह दिखलाये सायास
कि वह चाह रहा धरना कैसे, निज जिह्वा पर अनिवार,
अपने अप्रकाश्य भावों का, गायन का, गर्जन का भार,
शुष्क शीत भू के चीड़ों का भी होता है ऐसा रोर,
जब इस पर्वतमय पृथ्वी के ऊपर थम जाता यह शोर,
तब न अन्य ध्वनि होने देता सकल; किन्तु शनि की आवाज
इन विजितों के बीच अटकती, उठी कि जैसे 'आर्गन' साज
बजता है, जिससे कि छिड़ा करती है एक नई ही तान,
जबकि अन्य रागनियाँ, ध्वनियाँ हो जाया करतीं म्रियमान;
तजकर वायु तरंगायित हलचल में रूपायित झंकार,
उठी देवपति की वाणी भी, इसी तरह, तब कहा पुकार;
"अपने व्यथासिक्त अंतस में,
जो अपना महान निर्णायक, और सत्य का करता शोधन,
खोज न सकता हूँ मैं कारण,
तुम क्यों हुए इस तरह दारुण कठिन परिस्थितियों के वश में :
गाथाएँ भी आद्य दिनों की,
जो उस पुराचीन देव विरचित पुस्तक[1] से होती वाचित,
तिमिर पुलिन से जिसको रक्षित
किया सोज्ज्वल उँगली से, जो तारकस्थ सुर 'यूरेनिस'[2] की;
जबकि छिपाती इसे अभी तक,
मंद उतरती हुई तरंगें छिछली श्यामलता के भीतर,
नहीं बता सकतीं हैं तिल भर,

---

१. ऐसी पुस्तक में, जिसमें ज्ञान के सकल रहस्य छिपे हों—यहाँ आकाश के लिए प्रयुक्त हुआ है।

२. कोलस का ही नाम है।

कि क्यों साँस तुम्हारी करती है अवरुद्ध पीर मर्मान्तक;
और पता है तुम्हें कि मैंने
यह दैविक प्राचीन ग्रंथ ही अपना दृढ़ आधार बनाया,
अह, कितना नैराश्य समाया !
नहीं वहाँ भी इस रहस्य का पता बताया मुझे किसी ने :
क्षिति, जल, पावक और समीरण
के तत्वों का चिन्ह, प्रतीक, या कि प्रतिनिधिकर्त्ता ही कोई
बात न बतला सका मुझे ही,
अथवा ज्ञात न हुआ शान्ति से, बता नहीं पाया संघर्षण;
जो इन तत्वों में है होता,
कभी एक तत्व का सभी से, अथवा दो से, या तृतीय से
या समूह का अन्य सबों से,
तीव्र रोष का व्यंजन करता जैसे पावक जूझा करता
साथ पवन के उच्च घोष से,
जब पावस की धार डुबाती है, दोनों को, और मसलती
भू-आनन से, गंधक मिलती
जहाँ, फूटते चतुर्तत्व तब एक साथ ही बड़े रोष से;
सहती जिसे भूमि बेचारी;
यह संघर्षण-विस्फोटन भी नहीं ज्ञान मुझको दे पाया,
तुम पर क्यों यह दुर्दिन आया ?
नहीं, पहेली नहीं सुलझती, मेरी बुद्धि सोचकर हारी :
यद्यपि करता शोध-चिन्तना
मैं अविराम निखिल नैसर्गिक लेखपत्र का करता अध्ययन,
जब तक होऊँ नहीं अचेतन,
कि तुम दिव्य संतानो ! होकर सर्वाकृता, सर्व-सम्पन्ना,
प्रथम जात देवों के होकर,
फिर भी काँपो उसके नीचे, जो तुमसे है सबसे दुर्बल,
पड़े भीति शंका से विह्वल,
चूर्ण-चूर्ण, संत्रस्त, दग्ध हो पड़े 'टाइटिन' हाय, यहाँ पर !
उठो कि तुम रह गये तड़पकर,
'रेंगो !' कहता, फिर भी रहे तड़पते यों ही मुझे बताओ !
ओ, विस्तीर्ण व्योम बतलाओ !

मैं क्या करूँ तुम्हीं बतलाओ मुझे, तुम्हीं हो जनक अगोचर!
देव बंधुओ! मुझे बताओ!
करें युद्ध हम कैसे? फूटे कैसे उर का रोष प्रबल ही,
बोल मंत्रणा-परिषद तू ही!
शनि के कान हो रहे हैं श्रवणातुर, कुछ तो उसे सुनाओ।
वरुण देवता! बोलो तुम ही,
तुम तो चिंतक गूढ़, और करते रहते हो चिन्तन भारी;
देख रहा मैं विस्मयकारी
तव आनन पर तृप्ति कि जो उत्पन्न संगीत चिन्तना से ही;
त्राण हमें दो, हमें बताओ, भेद पराजय का सत्वर ही,
वरुण देवता, बोलो तुम ही!

•

यों शनि ने किया समाप्त; और वह वरुण देव आगे आया,
जिसने सुदूरदर्शी चिन्तन के कारण था यश पाया;
पर न ज्ञान पाया उसने, ऐथेन्स-वीथि में बिता समय,
प्रत्युत, निज जल-छाँहों के बिम्बन में किया गया संचय;
अलकों से बूँद न झरतीं थीं; वह उठा, और आरम्भ किया
अपना मर्मरण, जिसे कि प्रथम प्रयत्नमना उसकी जिह्वा
ने उठा लिया सुदूर फेनिल कगार पर से शिशु के समान,
उसकी सुधीर वचनावलि से अभिव्यंजित अनुपम हुआ ज्ञान।

"ओ, तुम जिनको रोष पी रहा, हँसता है व्याकुल आवेश,
होकर अति विक्षुब्ध हार पर, अपना धैर्य कर चुके शेष;
अपनी तुम ज्ञानेन्द्रिय मूँद लो, अरे, मूँद लो अपने कान,
मेरी वाणी से न तुम्हारे उर में होगा वन्हि-प्रवेश
तो भी सुनो कि झुकना होगा तुम्हें, इसी में है कल्याण,
तुम्हीं झुकोगे, यही सिद्ध करने दूँगा मैं प्रबल प्रमाण;
इसी सिद्धि में भी तुमको अविरत होगा सुख का आभास,
अगर सत्य के पाने को अकुलाते आज तुम्हारे प्राण।
होते हैं निपतित सतत प्रकृति की ही विधि के अनुसार,
'जव' के गर्जन से या बल से नहीं हुई है अपनी हार,

हे, महान शनि ! तूने बाँचा भली भाँति अणुमय ब्रह्मांड,
पर निकट यथार्थ सत्य के पहुँच नहीं पाया इस बार।

क्योंकि रहा तू देवों का सम्राट, इसी का रहा गुमान,
है सर्वोच्च शक्ति तुझमें ही, रहा तुझे इसका ही ध्यान,
इसी दम्भवश, राह रही वह तेरी आँखों से ओझल,
जिस पर चलकर सत्य चिरंतन का हो पाया मुझको ज्ञान।

और प्रथम सुन, जिस प्रकार, तू पहली-पहली शक्ति नहीं,
हे शनि ! सुन ! तू नहीं आखिरी शक्ति रहेगा वैसे ही,
यह हो सकता नहीं, आदि तू नहीं, नहीं वैसे ही इति,
परिवर्तन के अविरत क्रम में तेरी सत्ता भूल रही।

प्रलय और पितृजतम से ही, यह आलोक हुआ उद्भूत,
इनके ही अन्तःघर्षण का, यह पहला परिणाम प्रभूत,
जो पक रहा स्वयं में ही, होकर आलोड़ित मंद मलिन,
लिए हुए उद्देश्य कि होगा किसी वस्तु का सृष्टा-दूत।

वह परिपक्व घटी आई, आई प्रकाश की संग किरन,
आया प्रकाश, अपने सर्जक पर करते हुए स्वयं प्रजनन,
तदनंतर, सब भूत किये, उसने विराट कर स्पर्शित ही
उनको, और किया उन सबमें संचारित उसने जीवन।

उसी घड़ी माँ बाप हमारे, ये धरती-आकाश स्वयं,
प्रकटित हुए; और तब हम सब में तू ही था जात प्रथम,
इससे बाद हमारे देव-वंश ने अपने को पाया,
करते शासन प्रदेश पर, जो सुन्दर, नवल, रम्य अनुपम।

अब आती सत्य की वेदना, जिनको यह वेदना रही;
आह, मूढ़ता यह कि सकल नंगे सत्यों को सहना ही,
और सामना करते जाना धीरज और शान्ति के साथ,
कठिन परिस्थितियों का, सचमुच प्रभुता का है चरम यही।

पहचानो ! जैसे कि प्रमुख थे कभी, शून्यतम, और प्रलय,
इनसे बढ़ भू-व्योम हुए, इनसे बढ़कर करते अतिशय
अभिव्यक्त रूप, औ' गठन, कार्य में मुक्ति, और संकल्प-भाव,
ऐसे सहस्र लक्षण जिनसे होता शोभित जीवन शुचिमय।

अतएव, हमारी एड़ी के पीछे-पीछे होती गतिमय
एक नवल पूर्णता : शक्ति, जो हमसे सुन्दर, शोभामय,
यद्यपि हमसे जात, नियत पर हमसे आगे बढ़ने को,
ज्यों जीवन-स्पर्द्धा में हमने बूढ़े तम पर पाई थी जय।

और अधिक न विजित हम होंगे, निराकार तम-शासन से,
बोलो, "रुक्ष मृदा क्या जूझा करती दम्भी कानन से,
जिसे कि मान अधिक अपने से किया, और करती पोषण ?
क्या दावा करती कि उच्चतर है हरिताभ-कुंज-वन से ?

अथवा, जरा बताओ, क्या तरुओं को ईर्ष्या होती है,
उस कपोतिनी से कि बैठ शाखों पर कलरव करती है,
कि हैं पास में इसके सुन्दर, दुग्ध-धवल, चंचल पर युग्म,
जिससे अंतरिक्ष में यह मनचाही उड़ान भरती है।

सुनो बंधुओ ! हम भी कानन के द्रुमदल हैं ऐसे ही,
किन्तु हमारी सुन्दर शाखों ने पोषित किये नहीं,
पीले एकाकी कपोत, प्रत्युत, स्वर्णिम पर-धारी बाज
जो कि रूप की ऊँचाई में हैं हमसे कुछ चढ़ते ही।

अतः हमें अब करना ही होगा यह अर्पित निश्चय ही,
अपना शासन-दण्ड सभी कुछ, उनको जो हैं बढ़कर ही,
हमसे, क्योंकि यही तो है नैसर्गिक शाश्वत नियम अटल,
जोकि प्रथम सुन्दरता में हैं, बल में होगा प्रथम वही।

हाँ, यह नियम चिरन्तन, जेताओं को भी तो कर सकता,
शोकमग्न, अन्यान्य जाति से, जैसे यह हमको करता;

क्या तुमने मेरा विस्थापक, तरुण वरुणपति देखा है ?
क्या तुमने पलभर निरखी उसके आनन की सुन्दरता ?

मैंने उसे निहारा था निस्तब्ध नीर की धारों पर;
अल्हड़-मस्ती से उड़ता था वह अपने पर प्रसरित कर;
इतना नूर बरसता उसके नयनों से कि किया तब ही
मैंने तय कि राज्य अपने को; करूँ अलविदा मैं सत्वर :

दे दी विदा राज्य को मैंने, और यहाँ पर मैं आया,
यह लखने कि तुम्हें कैसा दुर्दिन ने है हा, तड़पाया !
कि मैं दे सकूँ तुम्हें सहानुभूति तो अपनी सर्वोतम,
करो सत्य स्वीकार, बनाओ तुम इसको अपना मरहम।

चाहे कृत्रिम आस्था से, अथवा अवहेलन से तब
शान्ति रहे वे धारे, वरुणदेव ने बंद किये जब
अपने मर्मर-स्वर, निकले अंतस की गहराई से;
पर था ऐसा ही कि न बोला कोई भी उनमें से
सिवा एक के जिस पर, नहीं किसी ने ग़ौर किया था;
वह थी 'क्लाइमैनी', तो भी उसने उत्तर न दिया था,
केवल शिकवा किया, तप्त अधरों, विनम्र आँखों से,
उठी हुई जो ऊपर, बोली शब्द, लगे वे ऐसे,
उन भीषण आकृतियों में; ज्यों क्षीणकाय अति प्राणी;
"तात ! यहाँ पर मैं ही हूँ बस, सबसे सरला वाणी।"
मेरा संचित ज्ञान-सार है, यही कि बीत गया है,
सभी सौख्य-आनंद और दुःख ने प्रवेश किया है
गहन हमारे अंतस्तल में : मुझको है अति संशय,
कि यह कटे न वास अनंत युगों तक, इसका है भय :
यद्यपि मैं विनोद की भविष्यवाणी नहीं कर रही,
और मुझे है ज्ञान कि मुझ जैसी दुर्बल आतमा ही
कभी नहीं अवरोध सहाय्य-प्राप्ति में बन पायेगी,
उचित न्याय से सशक्त देवों के ढिग जो आयेगी :
तो भी अपनी पीड़ा प्रकटाने दो, कह लेने दो,
जो कुछ भरा हृदय में, अधरों से टुक वह लेने दो :

कह लेने दो, जो कुछ मैंने सुना, जिसे सुन रोई,
रही न एक किरन आशा की, मेरे मन में कोई :
मैं थी खड़ी पुलिन पर, कैसा पुलिन हाय, मनभावन,
जहाँ उच्छलित होता शीतल, सुरभित, मंद समीरण;
तरु-फूलों से लदा-फदा प्रान्तर था शान्त सुगंधित;
मुझमें जितनी व्यथा; फिजाँ थी उतनी हर्षण पूरित;
फैल रही सुर-लहर, और नाजुक कोमल गरमाई,
शान्ति भरे आवह ने मेरे मन में बात जगाई,
कि कोमल विषाद-गीतों से, व्यथा-सिक्त रागों से,
इस एकान्तिकता को कोसूँ, शिकवा करूँ हृदय से;
और गई मैं बैठ हाथ में लेकर शंख सुहाना,
और मर्मरित किया इसी से मीठा एक तराना;
मीठा एक तराना; आह ! कहाँ था मधुर तराना ?
जब निज अल्प दक्षता से, गाया था मैंने गाना;
बिखराया समीर में नीरस शंख-स्वन उतराया,
तब मारुति-झकोर अपने सँग चमत्कार ले आया;
बिल्कुल समक्ष के वीचीमय जलधि द्वीप के तट से,
कान हुए रससिक्त, प्राण में हुआ स्फुरण जिससे;
तब मैंने निज शंख तुरत फेंका बालू के ऊपर,
एक लहर इसमें भर गई, प्रस्फुटित किया मधुर स्वर,
जैसे भरी गई थी मेरी ज्ञानेन्द्रिय, उस सुखमय
अभिनव चमत्कारयुत स्वर्णिम, दिव्यराग से निश्चय
मरण सजीव हो रहा उसकी अँगड़ाई में क्षण-क्षण;
उस मनमोहक दिव्य राग की लय का प्रति अवरोहण,
एक-एक कर होता, एक साथ लगता था जैसे,
मानो टूट-टूटकर गिरता मोती डोरी में से।
एक-एक अवरोहण उस कपोतिनी-सा दिखलाई
पड़ता, जो अपना जैतून-नीड़ तजकर हो आई,
और चर्तुदिक मेरे सिर के, मँडराती रह-रहकर,
स्तब्ध परों की जगह, पंख सस्वर करते फड़-फड़कर,
एक साथ कर रहे प्रदान, हर्ष, पीड़ा, वे मुझको
मिली विजय पीड़ा से, बंद कर रही थी कानों को,

कि तभी हटा तुरत मेरे कम्पित कर की बाधाएँ,
सत्र मधुर राग से मधुरतर शब्द कान में आये,
आती रही पुकार अजानी, "ऐपोलो ! भोरोज्ज्वल !
ओ, ऐपोलो तरुण !" पलायन मैंने किया उसी पल,
पर ध्वनि ने भी किया अनुसरण, हे, ऐपोलो मेरे !
आह, पिता ! क्या उपज सकी करुणा अंतर में तेरे,
जैसी मैं अनुभव कर पाई सुन वाणी दर्दीली;
ओ, मेरे बंधुओ ! हुई क्या तव पलकें भी गीली ?
आह, कहीं तुम भी वह सजल पुकार, काश ! सुन पाते,
तो हरगिज धृष्टता न मेरी, तुम हरगिज़ कह पाते !

उसके स्वर इतनी दूरी तक बहे भीरू उत्स के समान,
जो कि उपलमय तट के साथ ठिठकता-सा होता भय मान
सागर से मिलने में; तो भी सागर से तो मिला ज़रूर,
काँप उठा वह भय से थर-थर; और कर गई इसका पान
विकट 'ऐन्सेलैडस' की भारी सरोष वाणी तत्काल;
उसके मुख से निःसृत बोझिल व्यंजन का था ऐसा हाल,
ज्यों मूँगे की चट्टानों की उन अधपटी दरारों से,
चिड़-चिड़ करती हुई तरंगें पंथ पा रही हों तत्काल :
अब भी टेके था, वह अपनी कुहनी लेकर उर में दम्भ,
यों ही झुके-झुके, उसने ऐसे बोलना किया आरंभ—

यों तो पल्ले पड़े हमारे अतिशय बुद्धिमान प्राणी,
या सुननी होगी हमको इन अतिमूढ़ों की नादानी ?
जब तक चुक जाये न 'जुपीटर' का समस्त ही अस्त्रागार,
चले तड़ित पर तड़ित, धरा जाये मेरे कंधों पर भार
लदें विश्व पर विश्व, न होगी मुझको इतनी हैरानी,
जितनी इस भीषण अपदस्थि मध्य, लखकर यह नादानी
मुझको होती हैं इन शिशुवत शब्दों को सुनकर बार;
उठो ! टाइटिनो ! गरजो ! चीखो ! भरो गगन में अब हुँकार !
जागो ! सोये देव ! भूल क्या गये शत्रु के कठिन प्रहार ?
क्या उस क्षुद्र देवता का भी दंशन तुमने दिया बिसार ?

शर्म ! तरंगों के अधिपति ! क्या रहा नहीं है तुझको ध्यान,
किया गया था तेरा महासिन्धुओं में दारुण अपमान ?
क्या मेरे ये क्षुद्र शब्द धधकाते तेरे उर में रोष ?
तुम अब तक भी अमिट बंधुओ ! मुझको है अपार संतोष !
अब भी तड़प शेष है तुममें, अभी शेष जीवन की चाह,
सुलग रही हजार आँखों में, है प्रतिशोध-वह्नि की दाह;
ज्योंही वह यों बोला, उसका ऊपर उठा विराटाकार,
और खड़ा हो गया, न कहना उसका रुका एक भी बार,

लपट बन गये तुम, तो तुम्हें बताऊँगा जलना अविराम:
सिखलाऊँगा अरि के पवन-पटल के निष्कासन का काम :
भीषणता से परिपोषित करना ज्वाला के टेढ़े डंक :
'जब' के फूले मेघ-खंड को चोट मसल देना निश्शंक;
उसके ही डेरे में उसकी हस्ती करना चकनाचूर,
पाप किये हैं उसने क्या-क्या, उसे पता तो चले जरूर !
यद्यपि प्रबल उपेक्षित करता हूँ मैं वरुणदेव की बात,
तो भी राज्यलुप्ति से अधिक, हृदय को देती है आघात.
इस अनुभव की दाहक पीड़ा : चले गये वे दिवस प्रशान्त;
विनाशिनी रणचंडी से अबोध दिवसों का है अब अंत :
विगत हुए वे दिवस : स्वर्ग से आये थे प्राणी अवदात,
पास हमारे मुक्त-नयन, सुनने 'बोलेंगे हम क्या बात ?'
वे दिन जब न हमारी भ्रू को टेढ़े होन का था ज्ञान,
सिवा गम्भीर शब्द के, नहीं अन्य की थी अधरों की बान :
यह थे दिन, . जब पक्षधारिणी विजय देवि का हमें न बोध,
जीते या हारे हम इसको, दोनों से ही रहे अबोध !
फिर यह ध्यान रहे कि हाइपैरियन हमारा उज्ज्वल भ्रात,
अब तक है अजेय; लो ! उसकी ज्योति यहीं पर रही विराज।

सबकी आँखें ताक रही थीं, 'ऐन्सीलैडस' का ही आनन,
जबकि अभी तक निकल अधर से नाम 'हाइपैरियन' उसी क्षण,
पहुँचा होगा महराबी चट्टानों तक मुश्किल से सहसा
उसके कड़े नक्श के ऊपर, हुआ दृष्ट पिंगल प्रकाश सा;

यह न वन्य था, क्योंकि अनेक देवताओं को उसने देखा,
सबके ऊपर खिची हुई थी, उसी रोष की परिचित रेखा :
सबको देखा, वही एक सी छवि विकीर्णित सबके मुख पर,
गौरव की आभा फैली थी, केवल शनि के ही आनन पर;
उसके धवल केश के गुच्छ, इस तरह से होते गोचर तब;
ज्यों नौका के चारों ओर उफनते फेन, चीरता है जब
नौका-सिर निशीथ का अन्तर : पीली और रजत नीरवता
उन पर छाई, नहीं जब तलक ज्योतिरूप सहसा आ घिरता
उन पर भोर-सरीखा, जिसने उच्च श्यामला शिला-ढाल को
किया आवरित, ठौर-ठौर पर, सब विषादमय दिङ्मंडल को;
किये वेष्टित उसने खाड़ी, विवर पुराने, ऊँचे गिरिवर,
प्रबल विलोड़ित उत्स, घोष से गुंजित, अथवा निःस्वर गह्वर;
किये आवरित उसने सतत—प्रवाहित होते प्रपात सारे;
सभी पास की और दूर की सिर तक ऊँची जल की धारें,
जो इससे पहले लिपटीं थीं, अँधियारी काली छाया में,
अब फैला आलोक सुनहला, ये भर गई अजाने भय में।
यह था हाइपेरियन—उसके उज्ज्वल पग ने एक गिरिशिखर
कठिन शिलामय स्पर्शित किया, और वह ठहरा वहाँ निमिष भर,
अशुभ दैन्य के सबसे अधिक घृणित रूप के करने दर्शन,
उसके तन की उज्ज्वल आभा, जिसका करती रही प्रदर्शन :
छोटे से 'न्यूमिड' घुँघराले, स्वर्णोज्ज्वल, उसके कुन्तल-दल,
गौरव गरिमा की आभा से, उसकी विराट आकृति उज्ज्वल :
उसकी अपनी एक विभा में दर्शित हुई विशद परछाईं,
जैसे धुँधलाते पूरब से, आते यात्री को दिखलाई
पड़ती है परछाईं 'मेमनन्'[1] की मूर्त्ति की दिवसावसान पर;
आह भरी 'मेमनीय' बीन की तरह करुण उसने, उसके कर
जबकि गहन भावोन्मयता में ही निबद्ध हो गये परस्पर :

---

१. मेमनन्—(Memnon)—प्राचीन ट्राय युद्ध का इथोपियन योद्धा—ज्यूस द्वारा वधित—पर बाद में उसकी माँ को संतोष देने के लिए उसे अमरत्व दिया। यूनानियों ने उसके स्मारक में विराट मूर्तियाँ बनवाईं। इन सबसे थीबिस की अति प्रसिद्धि है। उसी का संकेत है।

खड़ा शान्ति से रहा, वह पतित दैविकता पर दृष्टि डालकर,
और गहन नैराश्य छा गया, फिर निपतित देवों के ऊपर :
दिन के साहसहीन अधीश्वर की मुद्रा को परिलक्षित कर,
और ज्योति से छिपा लिये अपने चेहरे अनेक देवों ने,
किन्तु बंधुओं पर डाली निज दृष्टि विकट 'ऐन्सीलैडस' ने,
और दृष्टि पर इसकी 'क्रेयस' 'आइपीटस' तत्क्षण उठ आये,
सिन्धु-जात फोर्कस ने भी तो उसी ओर को पैर बढ़ाये,
जहाँ खड़ा वह ऊँचाई पर : वहाँ पुकारा इन चारों ने
नाम वृद्ध शनि का : चोटी से उत्तर दिया हाइपैरियन ने
उच्च घोष से 'शनि', शनि बैठा पास देव-जननी के, जिसके
चेहरे पर उल्लास नहीं था, यद्यपि उन समस्त देवों के
दल ने अपने रिक्त कण्ठ से ऊँचे स्वर में ही ललकारा,
दिग दिगन्त को गुंजित करता, 'शनि' का उसने नाम पुकारा।

खण्ड ३

कभी रोर उठता, तो कभी शान्ति थी सकरुण,
इस प्रकार विस्मय-अवाक् थे सब टाइटन-गण :
बाणी देवि ! छोड़ इनको अब अपने दुःख में,
तू दुर्बल ऐसे आलोड़न के गाने में :
तेरे अधरों को निस्संग दाह है प्यारा,
औ' एकान्त व्यथा से मिलता तुझे सहारा,
इसमें तू रमती, इसके गायन गायेगी,
छोड़ टाइटनों को : ऐसे तो तू पायेगी
पुराचीन निपतित दैविकताएँ कितनी ही,
जो उद्भ्रान्त तटों के ऊपर रही विहरतीं :
तब तक उठा हाथ 'डैल्फिक' वीणा अपनी,
और छोड़ दे चिरातीत की करुण रागिनी :
ऐसा कोई नहीं समीरण का झकोर ही,
जो वंशी से नहीं डोरियन-लय फूँके ही :
लो ! एपोलो को ही तो करता है अर्पण,
इन सब माधुर्यों से ही अभिसिक्त मदिर क्षण :
बने वस्तु प्रत्येक सिन्दूरी अब आभामय,
चमकें पाटल-पुष्प, अनिल हो सुमधुर रसमय,
साँझ-सबेरे के अल्हड़-बादल-दल सुखकर,
तिरें मदिर ऊनी गालों से शैलिनियों पर :
अरुणिम हाला से भर-भरकर सभी सुराही,
झगझग होते फेनिल शीत कूप के सम ही,
सिकता पर या गहन विवर में क्षीण-अधर-युत,
शंखों की सब भूल-भुलैयाँ हों सिन्दूरित;
पड़े कपोल युवति के नरम लाज से अरुणिम,
जब सहसा आ मादक चुम्बन जड़ दे प्रीतम।
कुंजावृत्त 'साइक्लैडस'[1] के प्रमुख द्वीप, हे !

---

१. ऐजियन सागर की वृहत द्वीपमालिका।

डेलस ![2] अब तू मौज मना अपने हरियाले
जैतूनों, चिनार, बाँझों, ताड़ों के वन में,
ऊँचे स्वर से गीत पवन गाता है जिनमें :
श्याम-वृंतिता, सघन काँस-कुंजों के भीतर,
मौज मना उन्मुक्त : हो गया एपोलो फिर
काव्य-वस्तु स्वर्णिम, पहले वह कहाँ गया था,
जबकि सूर्य का देव समुज्ज्वल खड़ा हुआ था,
अपने व्यथाक्रान्त टाइटन-जन के मंडल में ?
छोड़ गया था वह उनके ही कुँजांचल में,
अपनी शुभ्र जननि, जुड़वाँ भगिनी को पीछे,
और सवेरे भटक रहा था लघु सरिता के
काँस-वनों में : घाटी के घुटने भर गहरे
कमल-दलों में; उसके आवारा पग विहरे;
बंद तराना था बुलबुल का : व्योमांगन पर
अब कुछ उडुगन करते थे, टिम टिम : खग-स्वर
जबकि शान्त-कण्ठित मुखरित था : सकल द्वीप पर
शेष न था कोई शरणस्थल अथवा गह्वर,
जिसमें लहरों के मर्मर स्वर भटक न आये,
यद्यपि उन्हें न हरित श्रान्ति-स्थल सुन पाये
कितने ही, वह सुन पाया, रोया, चमकीले
अश्रु गाल पर छलके, धन्वा पर भी ढुलके,
जो कि करों में सधी हुई थी : अतः अश्रुमय
अध-मुँह आँखों से वह खड़ा रहा भावोन्मय,
जबकि घनी, मोटी शाखाओं के नीचे से
दुःखी देवि आई, वह पग धरती धीरे से,
जिसकी चितवन में या उसके लिए प्रयोजन,
जिसे कि वह लेकर निज चिंतित, आतुर-लोचन,
लगा जानने, बोला मधुवाणी में ऐसे,
अनमर्दित सागर पर तू आई है कैसे ?
या प्राचीन चिन्ह और वसनावृत आकृति

२. डेलस—इसी द्वीपमाला का सबसे छोटा द्वीप, और अपोलो का जन्मस्थान।

घूमी अब तक तलहटियों में कहीं अलक्षित ?
निश्चय एकाकी सूने कानन में मैं जब
बैठा, सुनता था प्रायः खिच-खिच जाते तब
वसन, झरे सूखे पत्तों पर खिचिर-खिचिरकर;
निश्चय, मैंने सुनी विशाल वसन की सर-सर;
और दिखी रेखाएँ, निर्जन दूर्वादल पर,
देखा था फूलों को हिलते, शीश झुकाकर,
जबकि समीप गुजरती थी मधुमंथर ध्वनियाँ;
देवि ! देख मैं चुका, पूर्व ही तो वे अँखियाँ;
वह सब सुख, औ' उसकी अमर शान्ति को पाया
अपने पहलू में : जब तूने उसे बजाया
अपनी कोमल अंगुलियों से, निखिल सृष्टि का
कर्ण अनथका, आतुर हुआ उसे सुनने का
और भर गईं उसमें नव अभिलाष उमंगें,
भरी वेदना, और हर्ष-मिश्रिता तरंगें,
जान कि जन्मा नूतन रागभरा कौतूहल,
क्या यह अचरज नहीं कि तू हो यों शोकाकुल,
इतना प्रतिभामय होकर भी ? मुझसे कहना,
तेरे उर में होता किस पीड़ा का चुभना ?
तेरे अश्रु मुझे करते हैं पीड़ित अतिशय,
इस निर्जन द्वीप में बता तू मुझको निश्चय;
मुझे, जो कि घूमती रही हो तेरी संगिनि,
तेरी नींद, और जीवन-घट की हो प्रहरिन,
तब से, जब तू निपट अजान एक बालक था,
श्लथ-अबोध-सुमनों को तू तोड़ा करता था,
लेकर जब तक, तेरी बाहों में बल आया,
सर्वकाल के शौर्य्य-चाप को मोड़ दिखाया,
तब तक, तेरे साथ रहे मेरे पग भटके !
तरुण ! खोल, तू मर्म-व्यथा सब अब बेखटके,
निस्संकोच उसके आगे, जिसने तेरे हित
की भविष्यवाणी नवजात मधुरता के हित
त्याग दिये प्राचीन और पावन सिंहासन !

उसके आगे कर निज पीड़ा का निष्कासन।"
बोला तरुण समुत्सुक निर्विषाद नयनों से,
जबकि भरी सित ग्रीवा उसकी व्यंजनों से :
"निमोशाइने! मेरी जिह्वा को है परिचित
"तेरा नाम, न जाने कैसे, मुझको अविदित
"कैसे कह दूँ उसे, जो कि है तुझे विदित सब,
"प्रकटित करूँ उसे क्या मैं, बन भेद नहीं जब
"फूटेगा तव अधरों से? कब ज्ञान मुझे है?
"पर अँधियारा, अँधकार का भान तुझे है,
"पीड़क अधम तिमिर मेरे ये नयन मूंदता,
"कारण—शोधन हेतु हृदय में विवश खूँदता;
"मैं क्यों हुआ उदास, सुन्न क्यों है मेरा तन
"होता विषण्ण अनजाने में ही मैं क्यों क्षण-क्षण?
"होकर असफल बैठ दूर्वादल पर जाता,
"अपने भीतर बस गहरी सिसकी सुन पाता,
"पंख कटे खग-सा मैं बारम्बार बिलखता,
"आँसू में प्रस्फुटित हृदय-चीत्कार उमड़ता;
मैं क्यों करूँ आह, अभिशापित खुद को, ऐसे
क्यों मैं भरे हृदय को रहूँ भ्रान्त भावों से
जब है नत मेरे उच्चाकांक्षी चरणों पर
दुर्दम वायु? हरित दूर्वा को दूँ मैं ठोकर
इसके प्रति निज मन में घृणित भावना धरकर?
कोई अलख वस्तु मुझको भी निर्देशित कर,
क्या यह टापू छोड़, प्रान्त अन्यत्र नहीं है?
क्या हैं तारे? दूर वहाँ मार्तण्ड कहीं है?
अतिशय किरणोज्ज्वल, प्रशान्त, मधु है वह शशिधर,
नक्षत्रों के समूह बिखरे गगनांगन पर!
किसी अनूठे उड का पथ कर तू निर्देशित,
अपनी वीणा ले उड़ जाऊँगा, उत्साहित,
इसकी रजत-ज्योति होगी तब सुख से कम्पित;
किया मेघ गर्जन-स्वर मेरे कानों ने श्रुत;
शक्ति कहाँ वह? किसका कर? किसकी वह हस्ती?

किसकी दैविकता इन तत्वों में उपजाती
यह चेतावनि, जिसको मैं सुनता हूँ असमय
तट पर बैठा, निर्भय हो, तो भी, पीड़ामय
अबोधि में? है शपथ तुझे देवी एकाकिन!
उस वीणा की, सुबह-शाम जो करती क्रन्दन।
मुझे बता, मैं क्यों उद्भ्रान्त भटकता हूँ यों,
इन कुँजों में इधर-उधर ही फिरता हूँ क्यों?
हाय! मूक रह गई प्रश्न तू मेरा सुनकर,
मूक! किन्तु तेरे प्रशान्त आनन के ऊपर,
लिखा पाठ अचरजमय, जिसको मैं पढ़ सकता,
विपुल ज्ञान की लब्धि : बन रहा एक देवता
मैं हूँ! नाम, कीर्ति-गाथाएँ, दंत-कथाएँ,
कठिन भीषिकाएँ, बग़ावतें, औ' गरिमाएँ,
पीड़ाएँ दाहक, विध्वंस, और गरिमा सब
एक साथ मेरे मानस में ढुलक रहीं अब,
भरती है इसके विस्तीर्ण खोखलेपन में,
और हो रहा हूँ सुरत्व-मद में उन्मद मैं :
मानो मैंने सोल्लास मद-पान किया हो,
अथवा अद्वितीय चमकीला अमृत पिया हो,
पीकर जिसको हुआ अमर मैं।" अतः देव के
जबकि ज्वालमय थे उसके दृग, धीर-दृष्ट से
उसकी सित कनपटियों के मध्य में रहे स्थित,
स्थिर निमोशाइने पर थे ज्योति-विकम्पित;
तुरत वन्य-आलोड़न ने झकझोरा उसको,
किया विभामय उसके अमर सुघर अंगों को :
मृत्युद्वार पर होते संघर्षण समान अति
था सदृशतर उसके जिसको पानी निष्कृति
पीली अमर मृत्यु से, और दर्द की तड़पन,
जो कि मृत्यु-सी उष्ण, हुई अब शीतल, भीषण
देहकम्प के साथ, मर रहा जीवन में वह;
ऐसे ऐपोलो ने सही वेदना दुर्वह :
उसकी कोमल स्वर्ण यशस्वी अलकें छहरी,

इधर-उधर उसकी उत्सुक ग्रीवा के लहरी,
व्यथा-बीच, उठ रहीं देवि की बाहें ऐसे,
अभी-अभी की उसने भविष्यवाणी जैसे—
किया अंततः चीत्कार ऐपोलो ने : लो !
वह हो गया दिव्य अपने समस्त अंगों से—

रचनाकाल—१८१९
प्रकाशन —१८२०

"लेमिया यथार्थ और प्रेमसिक्त अनुभव का काव्य है; कीट्स ने इसे अपने हृदय से लिखा था।"

—सी० डी० थोर्प

खण्ड १

एक समय की बात, पूर्व परियों के दल से
'निम्फ'[1] व 'सैटिर'[2] हाँके गये समृद्ध वनों से,
पूर्व 'ओबेरन'[3] राजा के किरीट उज्ज्वल से,
दण्ड, व ओसिल मोती से विजड़ित चादर से,
हुए भयार्त्त 'ड्रयाड'[4] व 'फॉन'[5]; किये खाली सब
हरित कुंज, वीथियाँ, और किशुंकी क्षेत्र तब,
चिर-दंशित 'हरमिज़'[6] ने सोने का सिंहासन
अपना खाली किया, और वह रहा तब मगन
अपने मदिर चौर्य्य में; ऊँचे ऑलम्पस से
उसने ज्योति चुराई, भू-नभ के मेघों से,
निज महान आह्वानक की नज़रों से पाने
त्राण : पलायन किया वहाँ से सत्वर उसने
'क्रीट' तटों के वन के भीतर, क्योंकि सुपावन
उस टापू में एक निम्फ का था आवासन
जिसको शीश नवाते सब 'सैटिर' खुरवाले;
जिसके सित चरणों के ऊपर मोती ढाले,

---

१. निम्फ (Nymph)—परियाँ।

२. सैटिर (Satyrs)—यूनानी और रोमन पुराण-कथाओं में वर्णित दैविक जीवों की एक श्रेणी—जो प्रायः परियों की शराब का प्याला हाथ में लेकर नृत्य करते दिखाये जाते हैं।

३. ओबेरन (Oberon)—परियों का राजा।

४. ड्रयाड (Dryad)—द्रुम-देव।

५. फौन (Fauns)—द्रुम-देवियाँ।

६. हरमिज़ (Hermes)—यूनानी देवता ज्यूस और मेया का पुत्र। पैदा होते ही इसने आश्चर्यजनक कृत्य किये। अपोलो के बैल खोले, अपनी गुहा में प्रविष्ट कछुए को मारकर वीणा बनाई। अपोलो ने अपनी दिव्य शक्ति से चोर को जान लिया, और पकड़ लाया, पर उसका वीणावादन सुनकर उसे अपना मित्र बना लिया। पुराण में इसे 'चौर्य्य का देवता' वर्णित किया गया है।

पाण्डुर 'टाइटिनों' ने, जबकि भूमि के ऊपर
वे मुरझाये, पूजित हुए, स्वच्छ वे निर्झर
जिनमें वह स्नान करती थी प्रसन्न होकर,
वे मैदान, भटकती कभी-कभी थी जिन पर
बेशक़ीमती उपहारावलियों से सज्जित,
कोई 'म्यूज'[1] न हो पाई थी, उनसे परिचित,
यद्यपि मंजूषा कल्पन की खुली पड़ी थी,
चयन हेतु ही, उसके पग पर बिछी हुई थी
प्रणयिक जगती कैसी ! यही भावना आई
हरमिज़ के उर में, तब एक दिव्य गरमाई
सपर एड़ियों से दोनों कानों तक आई
श्वेत नलिनिवत मुख पर, पाटल-आभा छाई,
जो था उसके स्वर्ण-कुन्तलों मध्य, बिखरते
डाहभरी अलकावलि में ही इधर-इधर थे
नंगे कंधों के ऊपर, वह उड़ता फिरता
घाटी से घाटी, वन से वन, प्रकटित करता
फूलों के ऊपर, अपनी रंगीन वासना :
होता था उसका सिर के ही बल भँवराना
अनेक नदियों के भीतर, करने शोधन तब
मधुर निम्फ की गुप्त सेज का; व्यर्थ रहा सब;
मधुर निम्फ का पता नहीं पाया उसने पर
हार, किया विश्राम एक जनशून्य भूमि पर,
भावोन्मय, उदास था उसका मन, सुन-सुनकर
वन-देवों, औ' उन्हीं द्रुमों के ईर्ष्यामय स्वर ।
खड़ा हुआ था जैसे ही वह उसी ठौर पर,
चौंका, सुनकर एक करुण स्वर, दर्दभरा स्वर,
कभी सुना था ऐसा ही स्वर, जिसको सुनकर
पीर सकल उर की विलीन हो जाती सत्वर,
और शेष बचती करुणा; बोली ऐसे तब
वह दुखिया एकाकी वाणी : "जागूँगी कब

---

१. संगीत देवि ।

मैं अब ? मुक्ति पाऊँगी कब पुष्पित मज़ार से ?
कब घूमूँगी मधुर वदन में, जो जीवन के
प्रेम, हर्ष से, और अधर उर के शोणितमय
संघर्षण के है अनुरूप; आह, पीड़ामय
कितनी मेरी नियति ! "देवता कपोत पगमय"
सरक चला तब झाड़ी द्रुम-वीथी में निश्चय,
नीरव निःस्वन मर्दित करता खिले सुमन दल,
लम्बी लम्बी दूब, न उसने जब तक श्यामल
झाड़ी में पाई नागिनि चमकीली स्वेदित
पड़ी हुई थी जो दूर्वादल पर गुँजलिकत ।

× × ×

वह थी उज्ज्वलवर्णा, ग्रन्थि-स्वरूपा, सैन्दुर विन्दु, स्वर्णमय,
हरित नील; जेब्रा-सी धारी वाली काया थी चित्तकमय,
लगती एक तेन्दुए-सी थी, मयूराक्षिणी थी, उसका तन
भरा चमकती रेखाओं से, चाँदी के चंदे थे अनगिन
जो उसके उच्छ्वास खींचने से ही या तो वे घुल जाते,
अथवा और मृदुल स्पन्दन से, तरल चमकती लहर उठाते,
अथवा हार समान गुँथ रहीं उनकी चमकीली रेखाएँ
एक दूसरे से विषाद के चित्रित पटलों से, आभाएँ—
ऐसी ही थीं सुर धनु-पार्श्वित, आलिंगन कर रही व्यथा को
ऐसी लगती मानो कोई यक्षिणि साधक हो, भामिनि हो
किसी असुर की, अथवा राक्षसीय आत्मा-सी निज कपाल पर
पहन रही हो क्षीणमना ज्वाला छिटके हों तारे जिस पर,
जैसे वह 'एरियाद्न' देवि की हो कलगी : था व्याल-रूप सिर
उस प्राणी का, कितनी तिक्त मधुरता थी पर उसके भीतर !
उसका था नारी-मुख, जिसमें सभी नगीने थे सम्पूरित,
और नयन उसके थे ऐसे सुन्दर, सुन्दर ही यों जन्मित,
जो सिवाय रोदन करने के, और नहीं था वश में कुछ भी,
जैसे 'प्रोजरपिन' अपने सिसलियन पवन पर रोती अब भी ।
उसका कण्ठ व्याल था, पर जो शब्द फूटते उसके बाहर,
ऐसे लगते जैसे वे बुद-बुदकर आते, मधु से सनकर,

अपने प्रिय के लिये, और लेटा हरमिज़ पाँवों पर ऐसे
बाज़ विहंगम शिकार करने से पहले झुकता हो जैसे।

× × ×

रूपवान हरमिज़ ! तुझको मैंने गत रात विलोका अपने
गौरवमय सपने में, मंथर फड़-फड़ करते तेरे डैने :
मैंने देखा तुझे बैठते हुए स्वर्ण-आसन के ऊपर,
मध्य देवताओं के ही, उस पुराचीन ऑलम्पस गिरि पर
जो था एकमात्र शोकाकुल : क्योंकि न तव कर्णों में छहरी
वीणांगुलिता 'गीत देवियों की मादक स्पष्ट स्वर-लहरी,
नहीं अपोलो को भी, उसने जब गाया एकाकी अपने,
सिसकी भरे कण्ठ की दीर्घ श्वास से, वह भी सुना न तूने;
मैंने तुझे स्वप्न में देखा, नीलिम लोहित, वसना भूषित,
मदिर बादलों से पथ पाते, जैसे होता है अरुणोदित
इतना त्वरित कि एक 'फीबियन' बरछी जैसे हो टकराई
क्रेटीय द्वीप को : तू है यहाँ : उदार देव हरमिज़ ! क्या पाई
तूने तरुणी ? जिस पर नहीं विस्मरण-उडु ने किया विलम्बित
उसका पाटलीय ओज-स्वर, और किया उसने यों सुकथित :

"अहो, स्निग्ध-अधरमय व्यालिनि ! उच्च प्रेरिता निश्चय,
कुसुममालिका रूपवान तू, तव लोचन करुणामय,
बता मुझे दे पता निम्फ का, औ' दूँगा मैं तुझको
अब वरदान एक, जो तू यह पता बताए मुझको—
'कहाँ गई है मेरी प्यारी निम्फ ?' 'चमकते तारे !'
उत्तर दिया सर्प ने, "जो कुछ कहता है तू, प्यारे !
कर दे पुष्ट शपथ से," ली हरमिज़ ने शपथ तुरत ही,
"अपनी सर्प-छड़ी की, तव नयनों की, नखत-मुकुट की
शपथ मुझ है," खिले हुए फूलों में हौले उसके
हार्दिक शब्द उड़ गये, गूंजे सुन्दरि के अधरों के
शब्द इस तरह, "हे, कोमल उरवाले, तेरी प्यारी,
मुक्त-वायु-सी, लुप्त अगोचर, फिरती मारी-मारी
निम्फ, इन्हीं निष्कंटक विपिनों में ही इधर-उधर पर
भटक रही, आस्वादित करती अपने दिवस अगोचर

मनभावन : अदृष्ट क्षीणशः चिन्ह दूब के ऊपर,
कोमल पुष्पों पर, वह चली छोड़ती, और अगोचर,
श्रान्त लताओं, हरियाली शाखों से, तोड़-तोड़कर,
रखती फल, करती है स्नान अलख; निज रूप मनोहर
उसका मेरे बल से है कवचित सैटिर फौनों की
अप्रिय दृग की क्रूर दृष्टि से, और साइलेनस[1] की
सकरुण श्वासन-गति से करने रक्षित उसकी श्रीहत
हुई अमरता, और हुई वह इतनी व्यथा-निपीड़ित
ऐसे सकल प्रणयिकों के दुःख से कि आ गई उस पर
मुझे दया, औ' जादू का रस लेपित किया केश पर,
जिसने उसकी मोहकता को रक्खा, अलख-अगोचर,
तो भी थी स्वतंत्र, विचरण कर सकती थी वह जी भर।
तू देखेगा उसे, तुझे ही होगी, केवल गोचर,
यदि अनुरूप शपथ के, तू करता पूरा अपना वर।"
पुनः मुग्ध वह देव शपथ लेता अछोर रह-रहकर
जो मादक, कम्पित, पुनीत स्तोत्र रूप में होकर
गुजरी व्यालिनि के कानों में, करती थी उत्तेजित
उसने अपना शीश 'सिरसियन'[2] किया निमिष भर उत्थित,
जो था सलज, सजीव जामदानी-सा पड़ा दिखाई,
तब वह व्यालिनि इस प्रकार से त्वरामयी तुतलाई,
"मैं थी नारी एक, पुनः करने दो मुझको धारण
एक नारि की आकृति, पहला सा हो फिर सुन्दर तन :
है मुझको कोरिन्थ देश का एक युवक अति प्यारा,
वरदानी ! वरदान मुझे दे, पाऊँ शीघ्र सहारा,
अपने प्रिय का, पुनः मुझे लौटा दे, नारि काया;
अरे, वहीं लौटा दे मुझे, जहाँ है उसकी छाया !
झुक जा, हरमिज ! ला मैं छोड़ूँ श्वासन तेरी भ्रू पर,

---

१. साइलैनस (Silenus)—हरमिज का पुत्र—सैटिरों में से एक। गायन, मदिरा, शयन इसकी विशेषताएँ हैं। एक प्रकार से यवनीय गंधर्व कहा जा सकता है।

२. सिरसियन (Circian)—सिरस (Circe) से विशेषण—सिरस यवन पुराण की तांत्रिका देवी।

मधुर निम्फ, तेरी अतिशय प्रिय, होगी तुझको गोचर।"
देव मग्न हो गया शान्त, अधमुँदे परों के ऊपर,
और भरा उच्छ्वास, व्यालिनी ने हरमिज-नयनों पर,
फिर दोनों ने देखा, दूर घास के ऊपर रक्षित,
मधुर निम्फ थी खड़ी हुई, औ' आनन, उसका सस्मित:
स्वप्न नहीं था: या कह लो था सपना ही था यह सब,
क्योंकि देवताओं के सपने होते यथार्थ वास्तव,
दीर्घ अमर स्वप्न में सहज उनका सुख बीता करता,
एक मदिर, उतप्त निमिष विहरा, ज्यों वह टकराता
उस वन-परि की सुन्दरता से, त्यों दहता उसका उर
अपनी द्युति बिखराता तब अनचीन्ही हरीतिमा पर:
और उठाकर पीत बाहु, व्याल की ओर, वह मूर्च्छित
बढ़ा, 'कोडुसिय' जादू को, करता उस पर कार्यान्वित:
ऐसा नर, अपनी आँखों में अर्चनाश्रु भर लाता,
और प्रेम की चाटुकारिता भरकर, चरण बढ़ाता,
मधुर निम्फ की ओर, हो गया उसके समक्ष विनमित,
क्षयशः शशि-सी हुई, निम्फ भी उसके आगे श्री-हत।
भय-से सकुचित, रोक न पाई, अपने सिसकी के स्वर,
स्वयं-मुँदे किंशुक समान, जो प्रदोष की बेला पर,
अपने में ही मुरझाता; देव के किन्तु शीतल-कर
स्पर्शन से, वह पाई तब गरमाई का अनुभव कर,
और खिली उसकी पलकें, जिस तरह खिले नव कलिका,
गुँजित होता, जब स्वर, मधु-मक्षिक-प्रभात गायन का,
और लुटाया अलियों के दल को उसने मधु अपना
हरित वन्य प्रान्त में हुआ, जब उनका यों मंडराना:
नहीं मृत्य-प्रेमिकों सदृश, छाया उन पर पीलापन;
होता रहा इस तरह स्वयं व्याल में तब परिवर्तन:
अथवा क्षणिक रक्त का वेग तीव्र उन्मत्त बनाता,
मुख से झाग निकलता, दूर्वादल को है मुरझाता,
जो कि वहीं पर उगा, तुहिन बूँदों के ऊपर गिरती:
मधु, जहरीली थिर पीड़ा उसकी आँखों में भरती
चमक उठीं बरौनियाँ भास्वर, भरी तीव्र स्फुल्लिंग उनमें"

एक न शीतल आँसू, सकल वर्ण ज्वल उसके तन में,
निज परिवर्तन-क्रम में, ऐंठ रही दाहक पीड़न से,
उसके सकल नरम कोमलतर चंद्रित तन की छवि के
बदले उस पर छाया गहन अनलगिरि मुख-पीलापन;
और जिस तरह चरही का होता लावा से मन्थन,
हुए विकृत सब रजत कवच, एवं आभूषण स्वर्णिम;
उसकी चितकबरी धारें, औ' सब रेखाएँ वर्णिम
तमसावृत्त हुईं, नक्षत्र, चन्द्र, धूमिल होते सब;
धीरे-धीरे विलयमान हो गये कुछ क्षणों में तब,
हरित, मूँगिया, जवाहरी, औ' समस्त नीलिम लोहित
वर्ण; हुई नितान्त विवसना, हो इन सबसे वंचित,
सिवा' वेदना के, विरूप के, बचा न उस पर कुछ भी,
लेकिन उसके किरीट के दर्शन होते थे अब भी :
वह भी बिलम गया, ज्यों ही वह सहसा हुई विलीना :
पवमानी झकोर में बजी नवल वाणी की वीणा,
चिल्लाई ज्यों ही वह, "लिसियस, प्यारे लिसियस, प्रियतर !"
उसके मर्मस्पर्शी शब्द रह गये घुलकर, उठकर,
चमकीले कुहरों से, जो सित गिरि को थे लिपटाये,
शब्द कि जिनको कभी 'क्रीट' के कान न फिर सुन पाये।

कहाँ गई लामिया, जो कि अब महिला, दीप्त-स्वरूपा,
एक पूर्णजन्मा सुन्दरता, नूतन, औ' अपरूपा ?
वह उड़ गई उत्तरी घाटी में, जिसमें वे जाते,
जो 'सेन्चरिस'-कूल से, जब कोरिन्थ-नगर को आते :
औ' उन वन्या शैलिनियों के, जो 'परियन'-नदियों के
ऊबड़-खाबड़ स्रोत, और उन सुदूर के टीलों से
जिनकी पार्श्व-भूमि है नंगी-उजड़ी, है कुहरों से
आवृत मेघों के टुकड़ों से, जो दक्षिण-पश्चिम से
'क्लयोन' तलक,—तल पर, तब सारी थकन मिटाई उसने।
खड़ी वहाँ पर सुन्दरि युवती, जहाँ विहगिनी अपने
पर फड़-फड़ा रही कानन में, शुभ्र एक काईमय,
पथ की ढालू हरीतिमा के ऊपर, अतिशय-सुखमय,

एक स्वच्छ जोहड़ समीप, लालसा तीव्र थी उसकी
जल में अपनी सूरत के प्रतिबिम्बन के दर्शन की,
जो सब तिक्त मलिनताओं से बची, जब कि थे उसके,
वसन पवन में झूमे, संग में डेफोडिल के दल के।
आह प्रसन्न लिसियस !—थी वह क्योंकि कुमारी नारी
कोई भी, कुन्तल कुंचित, अथवा उच्छ्वसित, व लज्जित,
या वासंती कुसुमित चरही पर, घाघरा उड़ाती
अल्हड़ मस्त किन्नरी, उससे हुई न अधिक स्वरूपित,
एक कुमारि, शुद्धतम-अधरित, तो भी उसने प्रणयिक
गाथा में सम्पूर्ण हृदय से पाई थी शिक्षा कुल :
बीता एक न याम, तदपि उसने ज्ञानी मानस से
सीखा सुख को करना समीप-पीड़ा से अव्याकुल :

उनके अतिशय क्षुद्र सरहदों की करना परिभाषा,
और मिलन के बिन्दु, व द्रुत विनिमय उनके विलगाना,
विस्तृत गतिरोधन के साथ जाल रचना, औ इसके
अति संदिग्ध कणों को कला सुनिश्चित से अलगाना :
जैसे मधुमय प्रिय स्नातक के सदृश बिताये उसने
अपने कतिपय दिवस कभी 'क्यूपिड'[1] के विद्यालय में,
और अभी तक थी अविकृत वह, करती थी वह पालन,
अपने प्यारे के वचनों का मंद अलस श्लथता में।

इस सुन्दर जीव ने चुना था क्यों इतनी सुघराई से
टिक जाना पंथ के सहारे, यह हम देखेंगे आगे :
पर है उचित, प्रथम, बतलाना पाया उसने कैसे ज्ञान,
औ' सपनाई, जब वह व्यालिन-कारा में बंदी, वह जान
पाई उन सबके बारे में, जो कुछ इच्छा, औ' आनंद,
अनुपम, उनकी आत्मा ने जाना जिस ठौर अबंध
जहाँ कहीं भी, जब भी : चाहे स्वर्ग मूर्च्छित करने, या
जहाँ कि शुभ्र 'नेरियड', 'थेटिस' कुंजों में खाती झोटा

१. प्रेम-देवता—काम।

प्रवाल-सोपानों से, जटा उठाती लहरों से होकर :
अथवा जहाँ देवता 'बेकस' सुख से निज पग फैलाकर,
तले लिसलिसी चीड़ पेड़ के अपना तन है प्रसराता;
हो आनंदविभोर चषक से मदिर घूँट भरता जाता :
अथवा 'प्लूटो' के प्रसाद-उपवनों में, जिनमें दीपित
'मल्सीबिर' के स्तम्भ, दूर विस्तीर्ण पाँत में थे शोभित।
औ' नगरों में कभी-कभी वह सपना करती थी प्रेषित,
दावत और जश्न के आल्हादों को करती थी संचित;
एक बार ऐसे सपने में, नश्वर जन-गण में दर्शन
उसने किये युवक लिसियस के, जो करता निजरथ-चालन
सबसे आगे प्रतियोगी जाति में, सुन्दरी को उस काल
लगा तरुण वह एक अव्यग्र शान्त आननमय 'जव', तत्काल
हुई विमूर्च्छित प्रेमविह्वला : प्रत्यागत वह उस पथ से
होता उस धूमिल प्रदोष के कीट-काल पर था तट से
कोरिंथ को, थी इससे वह परिचिता : क्योंकि पूर्वी समीर
बहती मृदु सद्यता लिये, औ' उसकी तरुणी विकल अधीर,
अपनी कांस्य अग्र-नोंक से टकराती थी प्रस्तर से
सैन्चरस के पत्तन में, हाल ही 'ऐजिना'-टापू से
जिसका लंगर गया उठाया, चाहे थोड़ी देर ठहर,
करता था बलिदान देवता 'जव' को, ऊँचा था मंदिर-
द्वार संगमर्मरी रक्त से स्नात, अगुरु की रही सुवास;
'जव' ने उसकी सुनी व्यथाएँ, की पूरी उसकी अभिलाष :
क्योंकि किसी उन्मद क्षण में, वह छोड़ चला आया अपने
संगी मित्र बन्धुजन, चलने की तैयारी की उसने
शायद कोरिन्थी बातों से, ऊब गया था उसका मन,
शैलिनियों के ऊपर, एकाकी वह करता रहा भ्रमण,
पहले तो निर्भाव, सांध्य-नक्षत्रोदय के पहले, फिर
'प्लेटोनिक'[1] छायाओं की स्तब्ध ज्योतियों से होकर
ढह जाता है तर्क, कल्पना हो जाती है तुरत विलय।

---

१. प्लैटोनिक—ग्रीक दार्शनिक 'प्लेटो' से विशेषण-आशय है निर्दोष प्रेम भरी छाँहों से।

उसे लेमिया ने देखा, तब आता निकट, निकट अतिशय
उसके अति ही समीपतर, भीषण निरपेक्ष-भावनामय,
उसकी नीरव चप्पल पोंछ रही हरियाली काईमय :
अतः निकट उसके, तो भी वह खड़ी, न उसको थी गोचर,
गुज़र गया वह, किन्तु रहस्यों के भीतर, बंदी रहकर,
उसका मानस उसकी चादर-सा लिपटा, प्रेयसि के दृग
करते रहे विरामहीन अनुसरित पिया के उज्ज्वल पग,
उसकी सुन्दर ग्रीवा मुड़ी, और होती तब यों मुखरित,
"आहा, लिसियस ! उज्ज्वल ! क्या तुम कर दोगे मुझको वंचित
अपनी सहचरता से, छोड़ोगे क्या निर्जन इस गिरि पर,
मुझे अकेला ही ? प्रिय तनिक निहारो तो पीछे मुड़कर :
कुछ तो तुम दरशाओ करुणा; लिसियस ने पीछे देखा,
पर न खिंची थी उसके मुख पर, भय या अचरज की रेखा,
उसने देखा, 'औरफियस'[1] वत किसी यूराइडिस[2] पर्वत पर :
क्योंकि शब्द थे मधुर, मुखर करते जिनको थे प्रिया-अधर :
मानो प्यार किया हो उनको, उसने सारी गरमी भर।
और पिया हो रूप प्रिया का, उसने नयनों से जी भर
औ' मदहोशी के प्याले में, छोड़ा उसने एक न कण,
तो भी रहा भरा ही प्याला,—हुआ जबकि भय से उन्मन,
कि यह कहीं न हो विलीन, पहले हो प्रिय-चुम्बन-अर्चन,
और हुआ यों प्रिय के प्रति प्रेयसि का भक्ति समारम्भन :
सलज हुई उसकी मृदु चितवन, इतना निश्चित प्रिय बंधन,
उसने देखा, "तुझे छोड़ दूँ मैं एकाकी, यों निर्जन !
पीछे देखो, प्रिये ! बदल सकती क्या आँखें हैं तुझसे;
दया करो, मैं विवश, मत छलो प्राण हृदय मेरा ऐसे !
तू विलीन हो जायेगी, तो मैं निश्चय जाऊँगा मर।
रुक, जा ! यद्यपि है तू सरिताओं की प्रिय 'नायड'[3] सुन्दर !
तेरे उत्स करेंगे, तेरी सुदूर चाहों का पालन :

---

१. ऑरफियस—यवन दंत-कथाओं में वर्णित होमर से पूर्व का एक कवि।
२. यूराइडिस—(Eurydice)—औरफियस की पत्नी।
३. जलपरी।

रुक ! तेरा आवास बनेंगे, यद्यपि तेरे हरित विपिन,
और पियेंगे वे ही तेरे प्रभात की पावस का नीर :
यद्यपि एक पतित 'प्लीयड'[1] तो भी सुसंगता और सुधीर
तेरी बहनों में से एक, करेगी ना क्या साज सँभाल
तेरे वृत्त-क्षेत्र की, बन वह तव उज्ज्वल प्रतिनिधि तत्काल ?
मेरे उत्तेजित कर्णों में इतना मृदु मधुमय होकर,
आया तेरा अभिनन्दन कि कहीं निष्प्रभ हो जाय अगर
तू, तो तेरी याद मुझे कर नष्ट बना देगी छाया—
हो न दया कर द्रवित ! जा, नहीं मेरी प्रेममयी माया ।"
"रुक ही पाऊँ यहाँ, लेमिया बोली उससे, 'यहाँ अगर
मैं रुक जाऊँ इस मिट्टी औ' धूल भरे तल के ऊपर,
और दुखाऊँ इस असोह पुष्पावलि पर मैं अपने पग,
तो तू क्या कह सकता है, कैसा तेरे जादू का जग,
जिससे तू कम कर सकता, मेरे गृह की स्मृति मनभावन ?
तुझे नहीं है उचित कि करना चाहे मेरे संग भ्रमण
इन पहाड़ियों, उपत्यकाओं में, जो हैं आनन्दविहीन,
सुखाशीष से रिक्त, और अविनश्वरता से नितान्त हीन,
तो तू है विद्वान, ओ, लिसियस ! और जानता भली प्रकार
कि उत्तमतर आत्माओं को, नीचे रहना है दुश्वार,
साँस नहीं ले सकतीं, वे मानवी आवहों के भीतर;
आह, तरुण ! तू दे सकता वायु का कौन-सा विशुद्धतर
स्वाद मुझे ? कौन-से शान्ततर हैं प्रासाद कि परितोषित
जिनमें होंगी मेरी सब ज्ञानेन्द्रिय : होंगी सभी शमित
रहस्यमय मायाओं से मेरी दाहक सौ तृष्णाएँ,
यह हो सकता नहीं ! विदा !" वह बोली, फैला निज बाहें,
और उठी पंजों पर वह; तब उसके शिकवे कामातुर
प्रण खोकर, हो उठा रुग्ण, मूर्च्छित, करते प्रणयिक मर्मर ।

---

१. प्लीयड (Pleiad)—ऐटलस की पुत्रियों में से एक । यह यवन-रतिरानी की अनुचर थी; जिनका ओरियन वधिक ने पीछा किया । उनकी प्रार्थना पर देवताओं ने उन्हें पाषाणी कपोत बनाकर सितारों में बिठा दिया । यहाँ नक्षत्र के रूप में प्रयुक्त है ।

निठुर सुन्दरी ने, तब प्रकट किये ही बिना किये सन्ताप,
धरा, पिया के अधरों पर, अपने नव अधरों का उत्ताप,
और किया प्रिय के श्लथ तन में, नूतन जीवन संचारित,
जिसको निज कमनीय अलक ग्रन्थन में रक्खा था गोपित :
थी अभिलाष कि और दीप्ततर होते उससे लोचन, काश !
और लुभाती जिया पिया का, करती दृढ़ स्नेहिल पाश !
एक गहन निद्रा में से, जब वह उठा दूसरी में था जाग,
सोल्लास, वह लगी छेड़ने, प्रेमसिक्त, जीवनमय राग,
अपने कम्पित वन्हि-वृत्त में, जबकि संकुचित थे उडुगन
रुद्ध श्वास-सा किया मर्मरित, तब उसने ध्वनि का कम्पन ।
जैसे वे जो अनेक दुःखमय, विरही दिवसों के उपरान्त,
पा जाते हैं साथ-साथ ही, जबकि सुरक्षित, प्रिय एकान्त,
छोड़ अन्य भाषा को, करते हैं प्रयोग अन्य संकेत,
उसके झुके शीश को ऊँचा करने, और दिखाने हेतु
कि वह भी है हाड़-माँस की नारी, होता रुधिर प्रवाह,
उसकी क्षीण-डोरियों वाले उर में, बसी वही है दाह,
जो मथती हैं हृदय पुरुष का, और किया विस्मय इस पर
कि कैसे न हुआ कोरिन्थ-नगर में प्रिय-दृग को गोचर
उसका मुख, औ' काटी अर्द्ध-श्रांत घड़ियाँ, सुखभरा अतीत,
जो कि स्वर्ण की मुद्राओं पर ही, हो सकते सफल व्यतीत
बिना प्रेम की सहायता के, निस्संकोच बोली सुन्दरि;
तो भी तुष्टि सहित, न जब तलक पड़ी दृष्टि प्रिय-आनन पर,
एक बार, जब वह बैठा 'वीनस' मन्दिर के द्वारे पर,
टिकी हुई थी उसकी काया, एक स्तम्भ सहारे पर
भावों में लवलीन, चतुर्दिक् टोकरियाँ थीं धरी हुईं,
जो ताज़ी फल-फूल-बूटियों से ऊपर तक भरी हुईं,
जिन्हें साँझ को काटा था सविलम्ब, क्योंकि उत्सव की रात
थी 'ऐडोनियन'[1] देवि की; वह न देख पाई उसके पश्चात्,

---

१. ऐडोनियन—ऐडोनिस (Adonis) का जश्न, जो एफ्रोडाइट (वीनस) देवी का तरुण प्रेमी था। इस तरुण की मृत्यु एक शत्रु-शर से हुई। इसके रक्त से पुष्प निखर गए। इसकी मृत्यु पर देवि ने इतना शोक मनाया कि देवताओं ने उसे

तब से प्रेम, विरह, पीड़न में काट रही दिन और रुदन,
करते नयन न थमे, करे फिर वह किसको पूजा-अर्चन ?
तब अपूर्व विस्मय, मृण्मय लिसियस के मुख पर तुरत जमा
मधुर लोक-गीतियाँ गा रही, देख रहा वह ठगा-ठगा
तब विस्मय से हुआ विमुक्त, हुआ हृदय में सुख-अतिरेक,
सहज, सहज कर रही मर्मरित थी, वह नारी-गाथा एक,
और कहा जो कुछ भी, उस पर मुग्ध हुआ लिसियस, प्रेमाप्त,
जैसे अव्याकुल आल्हाद सुपरिचित, उसे हुआ हो प्राप्त।
परियों, हूरों, और देवियों के माधुर्यों का वर्णन
पागल कविगण चाहे जैसा करे, नहीं होते दर्शन
इन सबमें, जो निर्झर पुष्कर, दरियों में करती विचरण,
एक वास्तविक नारी के समान, उनमें कोई अभिगुण,
जो कि 'पाइरा'[1]—उपलों की वंशज, या आदि-मनुज-संतान
निज व्यवहार-कर्म से निज स्वभाव की देती हैं पहचान।
और इस तरह जाना उसने ठीक कि नहीं कर सका प्यार
लिसियस उसको, क्योंकि रहा उसका उर शंकित : दिया उतार
सकल देवि का बाना, और रूप नारी का किया ग्रहण,
अपने मायावी प्रयत्न से, मोह लिया प्रियतम का मन;
फैलाई सौंदर्य-मोहिनी, उसने लिसियस के ऊपर,
उसके सकल रूप आदानों का भी लिसियस ने उत्तर
ओजस्वी रूप में दिया, उसका प्रति शब्द हृदय में धर,
अपने कम्पित उच्छ्वासों के साथ, और फिर इंगति कर
कोरिन्थ की दिशा में, पूछी अपनी प्रेयसि से यह बात,
क्या तेरे चरणों को है यह अतिशय दूर आज की रात ?"
छोटी ही थी राह, क्योंकि तब देवी की उत्सुकता से
तीन कोस हो गये तीन पग, उसकी जादू-माया से :
अंधे लिसियस ने न किया संदेह, हुआ उसको संतोष;
दोनों ही पुर-द्वार कर चुके पार, न था लिसियस को होश

पुनः वापस कर दिया। वह छः महीने निचली दुनियों और छः महीने देवताओं के पास रहता है। उसके निचली दुनियाँ की आने की खुशी में जश्न मनाया जाता है।

१. पाइरा (Pyrrha)—भीषण वर्षा की प्रतीक देवी।

कि हो गया पंथ कैसे तय, इतना नीरव औ' सुनसान
था सब ओर कि पाऊँ इसका ज्ञान, नहीं रत्ती भर ध्यान।
जैसे मानव सपने में हैं बतियाते, यों ही मर्मर

करते थे कोरिन्थ-निवासी, अपने महलों के भीतर
जनाकीर्ण गलियों में, अशोभ सौध-मन्दिरों के अन्दर
गूँज रहा मर्मरण, लग रहा मानो कहीं प्रभंजन-स्वर
दूर उठ रहा बुर्जों पर, व्यापक-प्रसरित रजनी-अन्तर
अपनी दीर्घ-ध्वनि से करता मुखरित; धवल फर्श ऊपर
शीतल घड़ियों में, निर्धन-धनवान, और नर-नारी सब
निज पदत्राण रगड़ते, हों साथ में या कि एकाकी जब;
यत्र-तत्र थीं तब अनगिनती, ज्वलित मशालें घहर रहीं,
वैभवपूर्ण उत्सवों से, निज चल-छायाएँ फेंक रहीं
दीवारों पर, या लिपटातीं महराबी मन्दिर का द्वार
उनसे, या करतीं स्तम्भ-पंक्तियों को थीं छायाकार।
निज मुख ढँकते, मित्रगणों से करते भयमय प्रतिनन्दन,
दोनों जने नगर के पथ पर, चले जा रहे थे निःस्वन :
दाब उठा कठोरता से, वह प्रेयसि की सहसा उँगली,
आया ज्यों समीपतर एक मनुज, जिसकी थी घुँघराली
दुग्ध-धवल डाढ़ी, तीखे दोनों उसके गम्भीर-नयन,
था चिकना, खल्वाट छत्र, थे दोनों उसके मन्द-चरण
पहने हुए दार्शनिक चोंगा; हुआ और लिसियस संकुचित,
अपनी चादर में ही लिपटा, धरता था पग और त्वरित
जब वे दोनों पास-पास गुजरे, व परस्पर हुए मिलित
तब ही त्वरामान लेमिया, हुई अचानक थी कम्पित;
बोला लिसियस, "प्रिये, आह ! क्यों तेरा कोमल हस्तकमल
होता है इस तरह द्रवित हिमकण के सदृश, बता इस पल ?"
मैं हूँ थकी," लेमिया बोली "बता, मुझे यह बूढ़ा नर
है यह कौन, नहीं आते हैं उसके नक़्श स्मरण पर ?
और बताना प्रिय मुझको कि किये थे मुद्रित क्यों तुमने
बूढ़े के तीखे नयनों के सम्मुख चक्षु-युगल अपने ?
उसने उत्तर दिया, "अपोलोनियस संत है इसका नाम,

है विश्वस्त प्रदर्शक मेरा, भला चाहता है हर याम,
पाई मैंने इससे शिक्षा, पर अब होता यह दर्शित,
मिथ्या-का-पिशाच-सा, जो कर देगा मधु-सपने खण्डित।"
जबकि अभी तक शब्द तरुण के अधरों से हो रहे मुखर,
आ पहुँचे वे एक स्तम्भित द्वारी के सम्मुख, जिस पर
लटक रहा था शमाँदान चाँदी का, थी जिसकी भास्वर—
आभा होती प्रतिबिम्बित, नीचे चिकने सोपानों पर"
लगता मानो नरम नीर में काँप रहा तारा कोई;
क्योंकि संगमर्मर का वर्ण, स्वच्छ अतिशय था दिखलाई :
इतनी स्फटिक स्निग्धता में होकर, उत्कृष्ट तरलता ही,
उसकी अंध-शिराओं में होकर जैसे थ रत रही,
जिसका दिव्य चरण ही केवल कर सकते थे तब स्पर्शन।
'इयोल'[1] की चूलों से व्यक्त हुई थी तब गर्जन-सी ध्वनि,
जैसे ही विराट तोरण के खोले द्वार उन्होंने तब
उनको दिखी जगह, जिसको कुछ पूर्व अजाने थे ही सब
जो केवल इन दोनों को था पता, और कुछ पारस जन
थे ऐसे, बाजारों में उस वर्ष हुए जिनके दर्शन;
ये रहते थे कहाँ, नहीं कोई कर पाया इसका ज्ञान,
वे ही और इस जगह की केवल कर सकते थे पहचान,
जो भी लोग हुए आतुर कि कहाँ था पारसियों का वास
धोना पड़ा जान से हाथ, किन्तु डालेगी पूर्ण प्रकाश
अवश्य त्वरित पर वाली कविता, सच्चाई पर, औ' उन पर
क्या-क्या गुजरी विपद, पड़ा क्या वध-संकट उनके ऊपर;
होगा बहुल उरों का रंजन, इससे, उन्हें छोड़ मुद्रित
इतने अधिक अविश्वासी, औ' व्यस्त जगत से, रख निभृत।

---

१. पवन देवता।

खण्ड २

कुटिया में, जल, औ' सूखी रोटी के साथ प्रेम का रूप,
—प्रेम क्षमा दो हमें!—भस्म का और धूल का ही प्रतिरूप;
और महल के भीतर, तापस-व्रत से भी मर्मान्तक घोर
होता है अभिशाप पूर्ण, झेला करता वेदना कठोर:
कथा एक संदिग्ध, परी देशों की, उसको रहा कठिन
इसे समझना, जिसका इसके श्रवण हेतु ही निर्वाचन
नहीं हुआ, रहता जो जीवित लिसियस ही भविष्य को, काश,
अपनी कथा सौंपने, नैतिकता को देता नया लिबास,
या इसको कस देता बिल्कुल; पर उनका था सुख-सौभाग्य
स्वल्पमात्र, इसलिये न उपजे, घृणा, अविश्वास दुर्भाग्य,
जिनके कारण कोमल स्वर भी, बन जाता दंशक फूत्कार,
और मृदुल मन को कटु बनने को कर देता है लाचार।
वहाँ, रात्रिमय, भयद-हृष्ट होकर, भीषण गर्जन के संग,
विहराता, पर फड़काता था, दग्ध प्रेम का विकल विहंग,
जो था ऐसे पूर्ण-युग्म पर स्पृह कभी, किन्तु इस काल,
उनके कक्षद्वार के करगहने पर, अपनी नजरें डाल
देख रहा था, और फर्श के ऊपर बार-बार विभ्रान्त;
अपनी आभा बिछा रहा था विकल घूमता प्रेम अशान्त।

इस सबसे ही हुआ विनाश: हुए सिंहासन पर आसीन,
और सेज पर बैठे दोनों, दोनों प्राणी प्रेम-विलीन;
पास सेज के एक पटल था, जिसका था वायवी वसन,
स्वर्ण-डोर से बँधा कोष्ठ में, फड़-फड़ करता वायु-तरण,
और प्रदर्शित कर देता था, प्रायः नीलम, औ' निर्मल,
अवगुण्ठनविहीन, औ' ग्रीष्मिल अंतरिक्ष का अंतस्तल,
दो 'मर्मर स्तम्भों के ही मध्यः—वहाँ पर हरते श्रान्त,
और किया वह ठौर प्रथा ने मधुर भाव से शोभामंत;
उनकी पलकें की कोरें थीं, कुछ-कुछ खुली: कि मानो प्यार

उन्हें गया हो खोल स्वयं, वे ताकि परस्पर सकें निहार,
जब सोते भी हों दोनों : आई समीप के पर्वत-ढाल
से तीखी तूर्य्य-ध्वनि, करती वधिर लवा-कलरव तत्काल
लिसियस चला—उड़ गईं ध्वनियाँ, शेष रहा पर एक विचार
उसके मानस में, जो भन-भनकर उठता था बारम्बार।
पहली बार, कि जब से उसने किया स्वयं को ही अनुदास
नीलम लोहित रेखांकित पाप के महल में, किया प्रयास
उसको आत्मा ने निज स्वर्णिम मर्यादा का उल्लंघन,
और शपथ ले किया रोरमय जग के भीतर क्रूर गमन।
चिर सतर्क, महिला ने इसको लक्षित किया वेदनासिक्त,
अतः चाहती रही प्रेम की अपनी निधि के भी अतिरिक्त,
और, और, कुछ, निर्वश होकर प्रायः भरती दीर्घोच्छ्वास,
क्योंकि अकेली उसे छोड़, करता विचरित चिंतन-आकाश
लिसियस स्वंय, उसे था इसका यद्यपि भली भाँति ही ज्ञान;
क्षणिक भावना है उद्वेग के गमनोन्मुख स्वन की पहचान।
"सुघर जीव! तू क्यों यों शीतल, गहरी साँसें है भरती ?"
"तुम क्यों यों सोचा करते हो ? उत्तर में मृदु वह कहती;
"तुमने मुझे दिया है त्यागः—कहाँ है मेरी हस्ती आज ?
नहीं तुम्हारे उर में, जबकि कर रही चिंता भ्रू पर राज ?
नहीं, नहीं, सचमुच है तुमने त्याग दिया! मैं बेघरबार
हूँ तेरे अंतस से : होना आह, शोक ऐसा अनिवार।"
उसने उत्तर दिया, नमित होते तब अपनी प्रेयसि के
उन्मीलित दृग में कि जहाँ प्रतिबिम्बित दर्पणवत उसके
तन का लघु आकार स्वर्ग में; 'ओ, चाँदी के ग्रह मेरे!
साँझ, सवेरे दोनों के! उपजे शंका मन में तेरे!
समझे तू उदास, एकाकी! मेरे प्राणों की सम्मूर्ति!
जबकि हृदय-शोणित में भरना चाह रहा द्विगुण स्फूर्त्ति
और वर्ण गहरा, कि जाल में उलझा लूँ, ग्रस लूँ कैसे
और बाँध लूँ अपने प्राण, सुमुखि मैं तेरे प्राणों से,
और समा लूँ तुझे प्राण में अपने, जैसे सहज सुवास
रहती है बंदिनी अनखिले पाटल में ? अह, आओ पास,
चुम्बन दोः—क्या विपुल वेदना अपनी अब तुम सकीं निहार ?

मेरे भाव ! उघारूँ उनको ? तो तुम सुनो, तनिक इस बार ।
किसी मर्त्य का लाभ भला क्या, कि वह लज्जित, करे विपन्न ?
पर ऐसा भी कभी-कभी करना पड़ता सुखमय सम्पन्न,
जैसे मैं तुझमें आनन्द मनाता, उठे विजय का नाद,
कोरिन्थी स्वर की भयावनी चेतावनि के मध्य अबाध।
घुटे शत्रु का कण्ठ, मित्र बोलें अयास हर्ष-गुँजार,
जबकि वधू-रथ तेरा भीड़ भरी सड़कों से होवे पार,
जिसकी चमकीलें तानें चमकें," महिला के हुए कपोल
कम्पित. पीत, म्लान, पल भर को नहीं सकी वह मुख से बोल;
फिर वह उठी, झुकी समक्ष उसके, सुनकर के उसके बैन,
लगी अश्रु की झर आँखों से, होकर के अतिशय बेचैन।
किया निवेदन प्रिय से, "बदलो. बदलो अपना आह, विचार !"
हुआ असर उल्टा ही उस पर, अहंकार का हुआ प्रसार
सुन प्रेयसि की बात, हुआ वह दंशित, और लक्ष्य की ओर
ले जाने प्रणयिनि को सहसा, हुआ. आग्रही और कठोर,
अहंकार में भर अपनी, उच्चतर आत्मा की आवाज
वह ठुकराता रहा, क्रूरता उसके उर में रही विराज :
और निरीह जीव की ईर्ष्या में लेता आनन्द अपार,
जिसकी कोमल नवल विकलता, बनी हुई सुख का आधार,
मिला हुआ था जबकि प्रियतमा का उसको मनमाना प्यार :
उसकी निठुर [illegible]ना के वेग का रहा ना पारावार;
दमित रोष था उत्तम, जैसे करता वार अपोलो देव,
जबकि सर्प पर—व्यालिनि ! हा! व्यालिनि वह भी थी निस्संदेह :
हुई विदग्ध, और सप्रेम सहा लिसियस का अत्याचार,
और हुआ सब शमित. किया तब उसने यह निश्चय स्वीकार
उस बेला को, जबकि बैठ दुल्हिन रथ में जायेगी वह :
हुई निशीथ घड़ी, लिसियस है पूछ रहा उससे रह-रह,
"सुमुखि ! नाम तो प्यारा कोई, निश्चय होगा ही तेरा,
शपथ सत्य की, यह न पूछने का अब तक निश्चय मेरा,
क्योंकि सतत यह बात रही थी मेरे मानस में अंकित,
तू तो नश्वर जीव नहीं है, दिव्य अमर प्राणी, निश्चित।
अब भी यही सोचता हूँ मैं : है क्या कोई नाम अनूप,

जो हो तेरे इस सोज्ज्वल सुन्दर स्वरूप के ही अनुरूप,
अथवा बतला अपने किसी मित्र अथवा बांधव का नाम,
इस पुर-नगर, मुक्त बसुधा-तल के ऊपर हो जिसका धाम,
जो होवे सम्मिलित हमारे परिणय-उत्सव में आकर ?
"कोई नहीं मित्र है मेरा," दिया लेमिया ने उत्तर,
नहीं एक भी बंधु, जानता मुझे न यहाँ एक भी नर,
पड़ी हुई हड्डियाँ पिता-माता की कब्रों के भीतर,
बंद धूल-धूसर कलशों में, नहीं जलाई है जिन पर
एक अगुरु की वर्ति सुरभिमय कभी किसी ने भी आकर,
और सो गई काल-अंक में जाति समूची ही उनकी,
हा ! हत भाग ! कि एक अभागी मैं ही उनमें से बाक़ी,
और प्राण, मैं अस्वीकृत करती तव हेतु सभी संस्कार,
पर यदि मैं हूँ तेरे मधुमय स्वप्नों का प्यारा आधार,
तो तू चाहे जितने अतिथि बुलाना, मुझको है मंजूर,
किन्तु अपोलोनियस वृद्ध को रखना इस उत्सव से दूर !"
सुन, ऐसे दुर्ज्ञेय रिक्त शब्दों को, वह हो उठा अधीर,
और लेमिया के मुख को वह लगा परखने हो गम्भीर :
जिसके दृष्टि शरों से हुई विकल, उद्विग्न; किया पल में
लिसियस को प्रसुप्त गहरी निंदिया के धूमिल आँचल में।

तब थी प्रथा कि दुल्हिन को उसके घर से लाया करते,
लाजभरे दिवसावसान पर, परिणय के बाजे बजते,
गायन होते, समारोह को ज्योति-शिखाएँ चमकातीं;
और सुवर्ण सुरभिमय कुसुमों से थी राहें बिछ जातीं;
लेकिन बंधु नहीं था कोई इस अज्ञात सुन्दरी का,
अतः अकेली रही, (बुलावा देने अपनी शादी का
लिसियस गया मित्र बाँधव के पास), और था उसको ज्ञात,
कि वह सजधज-आडम्बर से कर न सकेगी हृदय परास्त
लिसियस का, यह सोच-सोचकर होती थी भावों में लीन,
कैसे हो सज्जित गरिमामय, यह मेरा दुर्भाग्य मलीन;
यही किया उसने, पर इसको कोई नहीं जान पाया,
कि उसका यह भृत्य-समूह, कहाँ से है सहसा आया ?

प्रमुख कक्ष के इधर-उधर, द्वारों के आने-जाने तक,
होती रही परों की सर-सर, दिया न दिखलाई जब तक,
जो असभ्य उत्सव के लिए, जबकि भंग उसका एकान्त,
उसका भयद अतिथियों द्वारा, वह था तत्पर, नीरव, शान्त।

हुआ दिवस का उदय, और उत्सव का शोर हो रहा है।
ओ, अज्ञानी लिसियस ! पागल किसके लिए दे रहा है
आज चुनौती, तू अपनी नीरव सुखमयी नियति को, और
कोमल प्यार भरी घड़ियों को, औ' यह गुप्त-लता-गृह ठौर
दिखलाता साधारण दृग को ? झुण्ड निकट आता जाता,
हर मेहमान व्यस्त मानस हो, चकित ताकता ठहराता
सिंहद्वार पर, करता है प्रवेश विस्मय-दृगमय वह जब,
क्योंकि जानते थे वे पथ, जो याद उन्हें बचपन से सब,
पूरा-पूरा बिना भूल के, तो भी इससे पहले ही,
ऐसा सिंहद्वार, या सजी हवेली, आई दृष्टि नहीं;
अतः हो रहा गहरा विस्मय, कौतूहल, प्रविष्ट थे जब,
सिवा एक के, जो कि तीव्र दृष्टि से, विलोक रहा यह सब,
घूम रहा दृढ़ता से मंथर पग धरता, हँसता जाता,
किसी बात पर, वृद्ध अपोलोनियस, यही था सुलझाता
मानो कोई गूढ़ भेद, उलझा अब तक जिसके कारण
उसका धैर्य अशान्त, और अब खुलती जाती थी उलझन,
सहज भाव से, और समस्या का उसने पाया हल ही;
जो उसने पहले सोची, समझी निकली थी बात वही।
मर्मर-ध्वनि से भरे प्रवेश-कक्ष में उसका हुआ मिलन,
अपने तरुण शिष्य से, "यह तो नियम नहीं है साधारण
लिसियस !" उसने कहा, "निमंत्रणहीन अतिथि को नहीं उचित
थोपे अपने को तुम पर वह, और करे वह कुस्पर्शित
सोज्ज्वल तरुण-बंधु-संकुल आमंत्रणहीन उपस्थिति से,
तो भी करता भूल जानकर, क्षमा माँगता हूँ तुमसे।"
लिसियस लज्जित हुआ, लिवा ले गया वृद्ध को वह सत्वर
अपने संग उन चौड़े-फैले अंतःद्वारों में होकर,

श्रौर शिष्टता-संधि भरी, कोमल मृदु शब्दावली नरम,
प्रकटाता वह यथाशक्ति ही खीज वृद्धि की करने कम।

भोज-कक्ष अनुपम ऐश्वर्य्य-प्रभा से दीपित,
चारों तरफ भरा सौरभ, छाया प्रकाश था :
श्रौ' प्रत्येक दीपदानी के आगे, खड़ी उगलती धूआँ
एक धूपदानी, जो पोषित लोहवान से, श्रौ' चंदन से,
जो हर एक पवित्र तिपाई के ऊपर थी ऊँची रक्खी,
जिसका पतला-पद काफी चौड़ा था मुड़ा हुआ, वह कोमल
ऊनी धागों की, कालीनों के ऊपर : पंचास धूम्र की
मालाएँ उठकर आतीं, पचासियों धूप-पात्रों में से वे
छत को जाती तय करतीं निज चंचल यात्रा, अब भी थी वे
बहुरूपित, मानो वे उत्थित मुकुर-जड़ी दीवारों के संग
सुरभिमान मेघों के द्वारा, द्वादश आवृत्त मेज़, (पड़ीं थीं
जिनके ऊपर रेशम की लघु-चादर), ऊँची थीं इतनी कि एक जन
की छाती के तल तक आतीं, खड़ीं व्याघ्र के पंजों पर वे,
उनके ऊपर भारी स्वर्णिम चषक, सुराही, श्रौर तिबारा
कहे गये 'सेरिस'-भण्डार, विशाल बर्तनों में आती थी
उदास पीपों से मधुधारा, प्रसन्नता की ज्योति बिखेरे।
यों प्रत्येक मेज़ दावत के संरजाम से लद-फद थी तब,
जिसके बीच देवता की प्रतिमा गौरवशाली थी स्थापित।

छोटे-से ठौर पर वहाँ ही, एक भोज-गृह था दीपित,
जिस पर प्रशस्त महराबी भव्यता हो रही थी शोभित,
विहर रहा संगीत कदाचित्, एक मात्र एकाकी ही,
मानो परियों की छत का था, वह एकान्त सहायक ही,
चारों तरफ भर रहा था वह ऐसी सिसकी भयावही
भय था भंग न होवे चतुर्दिशाओं की मोहिनी कहीं
ये सद्यांकित सरोवृक्ष, लगते थे कदली, ताड़ों-से
वर के, श्रौर वधू के प्रति, मानो वे आदर दिखलाते।
दो केले, दो ताड़ खड़े थे एक दूसरे से गुम्फित,
उनके दोनों श्रोर, पार्श्व में गिरजा के, वे थे स्थित :

सबके नीचे, फैला था भित्ति से भित्ति तक उजियारा,
झलमल-झलमल सीधी बहती, ज्वलित प्रदीपों की धारा।
नीचे इस वितान के पड़ा हुआ था भोज अनास्वादित,
अब तक जो, हो रहा मसाले की सुगंधि से था सुरभित।
सजी-धजी शान से लेमिया हौले-हौले घूम रही,
असंतोष की पीत तुष्टिमय आभा, मुख क चूम रही,
ज्यों वह गुजर रही, उसके अलक्ष्य नौकर-चाकर जन सब,
तत्पर थे आभा से दमकाने, सारा घर-आँगन तब।
वृक्ष तनों के मध्य, प्रथम था संगमर्मरी तल स्निग्धित,
जड़े हुए थे लाल आयताकार; प्रस्फुटित हुई तुरत
तब हल्के-हल्के तरुओं की रँग रही चित्रच्छाया,
छोटे तानों में, ज्यों बड़े-बड़े बानों को बुनवाया,
थी बुनावटें ऐसी ही, सारे कृतित्व को कर स्वीकृत,
वह मुरझाई स्वयं, किया उसने अपना प्रकोष्ठ मुद्रित,
जब ड्योढ़ी में हर मेहमान ले चुका था पूरा आनंद
भृत्यों द्वारा, स्पंजपूर्ण, शीतल स्नान का, और सुगंध
भरी वदन में उसके, मर्दित तैल, केश रस-स्निग्धित, तब
पहन वसन सित धवल, भोज की ओर प ग धरता।
रेशम आसन पर बैठे, वे सबके सब वस्मय करते,
यह बहुमूल्य साज और धन कहाँ, किधर से फूट पड़े?

मंद समीरण में ही चलता रहा, मदिर मंथन-सा गायन,
जबकि प्रवाहित रहा यवन-व्यंजनित एक तब अंतर्गायन
उन मेहमानों में, धीमा था पहले बातों का क्रम जिनका
क्योंकि अभी तक वहाँ दौर था मदिरा का बस हल्का-हल्का,
पर जब हुआ खुमार तेज़तर, उनके मानस-पट के ऊपर,
हुए उच्चतर वार्ता के स्वर, विराटतर वाद्यों के ऊपर,
और उच्चतर घाव निरंतर-शोभामंत रंग भड़कीले,
स्थान, और परदों की आभा, दास-दासियाँ बड़े सजीले
विपुल धन-श्री की छत, अमृतमयी प्रसन्न हिलोर, लेमिया
स्वयं, हुए सब अब न प्रदर्शित निपट अजाने, जबकि कर दिया
हाला ने सम्पूर्ण कार्य मधु अपना; मुक्त देह—पिंजर से

हुए प्राण के कीट, दिव्यतर और नहीं होती है इससे
स्वर्गिक् छायाएँ भी, जितनी मद से, जो प्रमोद रस-प्लावन
करती; सत्वर 'बेकस' है मध्यान्ह-उच्चता पर आरोहण
करता अब; कपोल चमकीले, और नयन हो रहे दीप्तिमय,
औ' प्रत्येक अतिथि की रुचि अनुकूल, हरित गजरे सौरभमय,
कुसुम-रिक्त वादियों, या कि वन-तरुओं की सूनी शाखों से
गये मँगाये, चमकीली स्वर्णिम टोकरियाँ भरती उनसे
हत्थों तक ऊपर : ले सके ताकि प्रत्येक अतिथि जी भरकर
निज कल्पनानुरूपित भ्रू-सुख, रेशम-तकिये में सुवास भर।

कैसा हार लेमिया को ? कौन-सा है लिसियस को ?
और कौन-सा संत अपोलोनियस पहनता ?
पीड़ा करते हुए प्रिया के मस्तक पर, लटकाये
गये 'चीड़' के, और 'बेंत' के पल्लव, और तरुण को
बाँधे 'थाइरसस' के, ताकि सतर्क नयन उसके तिर पाये
विस्मृति में : संत के लिए, नोंकीले, और कँटीले तृणदल
किये युद्ध-रत उसके माथे पर, उड़ जातीं

क्या नहीं सकल मोहकताएँ, शीतल दर्शन के
मात्र परस से ? एक बार व्योम पर सुहाना इंद्र-चाप था :
ज्ञात हुए सब उसके ताने, बाने हमको; गण्य हुआ वह
साधारण पदार्थों की नीरस सूची में।
दर्शन जकड़ेगा पर एक फरिश्ते के, वह
नियमों से, रेखाओं से सम्पूर्ण रहस्य विजय कर लेगा,
रिक्त करेगा भ्रमित वायु को, मेरी परि को—
और उधेड़ेगा वह इंद्र-धनुष, ज्यों इससे कुछ दिन पहले
हुई मृदुल व्यक्तियुक्त लेमिया द्रवित परछाईं ही में।

बैठ प्रिया के पास, प्रमुख आसन पर, लिसियस मोद-मगन,
देख सका, तब तलक नहीं सम्पूर्ण कोष्ठ में, वह आनन
अन्य व्यक्ति का, नहीं जब तलक, निज प्रिय-निद्रा संयत कर
उसने कर में चषक लिया, मदिरा से उसे लबालब भर

तब चौड़ी मेज़ के पार, डाली उसने सामने नज़र,
पड़ी जो कि झुर्रियों भरे, बूढ़े शिक्षक के चेहरे पर,
पाने क्षमा-दृष्टि, खल्वाट दार्शनिक ने निज तीव्र नयन
स्थिर कर रखे थे दुल्हिन के सजग रूप पर निष्कम्पन,
और निष्पलक, उसकी सुघराकृति पर करते भ्रू-मर्दन,
औ' उसके मधु अहं-भाव को देते हुए प्रबल-पीड़न :
तब सावेश किया उसने स्पर्शित अपनी प्रेयसि का कर,
अब तक जो कि निढाल पड़ा था, पाटल-आसन के ऊपर :
यह था हिमवत; एक शीत सिहरन दौड़ी तन में छूकर,
फिर, सहसा यह उष्ण हो गया, औ' बेधा प्रेमिक का उर
एक अप्राकृतिक ऊष्मा की समस्त पीड़ाओं ने तब।
क्या है इसका अर्थ लेमिया ? तू क्यों चली यहाँ से अब ?
उस मनुष्य से क्या तू परिचित ? "बोले उसने नहीं वचन;
वह टकटकी लगा कर तब देखता रहा, उसके लोचन
जिनमें प्रेमिल करुण प्रार्थना भाव न तिल भर झलक रहा,
और लेमिया के मुख को, वह और, और घूरता रहा :
उसकी मानवीय इन्द्रियाँ सिमटने लगीं; विमोहक रूप
किसी क्षुधित जादू के भीतर हुआ समाहित निखिल स्वरूप :
नयनों के उन वृत्तों में परिचय की झलक न रत्ती भर;
चिल्लाया, "लेमिया !" पुकारा उसने, नहीं मृदुल था स्वर।
सुना अनेक जनों ने, औ' उस गुंजित उत्सव-हर्षण पर,
नीरवता छाई; न जी रहा, अब राजस गायन का स्वर :
हिना गंध उड़ गई, रिक्त हो गये हज़ारों वे गजरे,
वाणी, वीणा, और मोहिनी हुए स्तब्ध धीरे-धीरे
हौले-हौले पग धरती, मृत्यु की भयद नीरव जड़ता,
और हो उठी मूर्त्त वहाँ पर, इसकी भयद्रावक सत्ता
सघन कुहासा भरा भीति का, सब पर छाया भारी मौन,
खड़ा न भय से रोम-रोम हो, ऐसा वहाँ उपस्थित कौन ?
'ओ, लेमिया !' पुकारा उसने : और नहीं कुछ था चीत्कार,
जो खामोशी से टकराकर गूँज रहा था बारम्बार।
"बीता, सपना ! झूठा सपना !" चिल्लाया दुल्हिन-मुख पर
दृष्टि गाढ़ते हुए पुनः वह, जहाँ रही कोई न विचर

नीलिम रक्तशिरा, उसकी प्रशस्त कनपटियों के ऊपर :
कोई कोमल चमक न छाई थी अब उसके गालों पर :
चमकाती गम्भीर-अंतरालित सपना वासना नहीं
अब कोई भी : सब नीरस, उस ठौर नहीं लेमिया रही,
शेष वहाँ केवल निर्जीव सफेदी। 'ओ, कर बंद तुरत,
अधम पुरुष, अपनी जादू की आँखें : हटा इन्हें कमबख्त !
अभी हटा कुदृष्टि ! देवताओं का उचित शाप, वरना,
जिनकी भयावही आकृतियाँ करती प्रतिनिधित्व अपना
छायामयी उपस्थितियों में, कर देगा विदीर्ण उनको
व्यथित अंधता के काँटे से, एकाकी तजकर तुझको,
अंतरात्मा के इस कृशतम भय के प्रति, औ' इतने दिन
उनका बल अपमानित करने के कारण, औ' तेरी इन
अपुनीत गर्वमय उर की सब कृत्रिमताओं के ही कारण,
अनविधिवत जादू, औ' मोहक मिथ्या वश : कोरिन्थी जन !
देखो निहार ! इन श्वेतश्मश्रु युक्त वृद्ध पर दृष्टि करो !
लो इसके आसुरी दृगों के चारों ओर किस तरह अब
बरौनियों से रिक्त पलक अनवरत घूमते ! देखो सब !
कोरिन्थ जनो ! इनके ही कारण मुरझाई मेरी दुलिहन।
"ओ, मूढ़ !" दार्शनिक बोला, करते हुए घृणा का अभिव्यंजन
नीची लय में, जिसका लिसियस ने दिया एक मृण्मय उत्तर,
उच्छ्वासों में खंडित होकर, अब लुप्त हो गया उसका डर;
उत्पीड़क पिशाच के निकट गिर गया, तब वह हो मूर्च्छित,
'मूढ़ ! मूढ़ !' दुहराया उसने जबकि अभी तक अविकम्पित
और अचल थी उसकी आँखें; मैंने तुझे इसी दिन को
किया सभी जीवन की विपदाओं से रक्षित था तुझको
एक व्याल का ग्रास बना देखता ? कि तभी लेमिया ने
साँस मृत्यु की भरी : दार्शनिक-नयन तीव्र दंशक पैने
बरछे से घुस गये वदन में, तभी लेमिया ने मृण्मय
बाहु उठाई अपनी, यदि इसका कोई भी था आशय
चुप रहने को कहा वृद्ध से : पर यह रहा निरर्थक ही;
वह बूढ़ा दार्शनिक उसे घूरता रहा अविराम—नहीं !
'एक साँप' गूँजी बूढ़े की प्रतिध्वनि, कह पाया न अभी

शब्द यह कि भयकारी चीख एक स्फोटित हो उठी तभी :
और गई वह बिलम, बाहुएँ लिसियस की श्लथ हुई नितांत
हर्षरिक्त, ज्यों उसी रात जीवन के और अंग भी शान्त
हुए उसी उच्च शैया पर, वह लेटा जिसके ऊपर,
चारों ओर मित्र घिर आये, दिया सहारा था सत्वर
नहीं नब्ज थी कहीं—साँस का पता नहीं—था उसका तन
निज परिणय-परिधानों में ही सजा, हो गया निश्चेतन।

परिशिष्ट

अ—कीट्स के पत्र

ब—संशोधित हाइपैरियन : एक स्वप्न

स—कीट्स के जीवन की प्रमुख घटनाएँ

द—आधार-ग्रंथावली

कीट्स

के

पत्र

(Letters of John Keats)

"यदि कीट्स के पत्राचार के उन अंशों का ही, जिनमें उसका सर्वोत्तम प्रतिनिधित्व है, संकलन किया जाय, तो हमारे पास सौन्दर्य की, एवं बुद्धि की भी, सहजात प्रवृत्तियों का ऐसा संग्रह होगा, जिसमें उदार हृदय तारुण्य की आत्मा ही रम रही होगी; जो परिहास में, सनक में, कल्पना में, सौम्यता में ·····अद्वितीय होगा।"

—सिडनी कॉलविन

"फैनी ब्राउन को लिखे गये उसके पत्रों के बिना कीट्स का पत्र-साहित्य बहुत कुछ ऐसा ही है, जैसे कि 'हेमलेट'—बिना डेन्मार्क के राजकुमार के।"

—हैरी बक्सटन फोरमेन

१

बैंजामिन बेली को

ऑक्सफोर्ड
शनिवार, २२ नवम्बर, १८१७

मेरे प्रिय बेली,

इस (अनकहे) पत्र के प्रथम अंश से शीघ्रातिशीघ्र निबट लूँगा, क्योंकि यह बिचारे 'क्रिप्स' के मामले से सम्बन्धित है—तुम्हारे जैसे मनुष्य की प्रकृति के लिये हेडन का सा पत्र अतिशय कटाक्षपूर्ण होगा—संसार के झगड़ों का अधिकांश किस लिये होता है ? केवल इस कारण कि दो मस्तिष्क मिलते हैं और परस्पर इतनी अच्छी तरह नहीं समझ पाते कि एक दूसरे के पक्ष के आचार पर कोई विस्मय या धक्का रोक सकें—जैसे ही मैं तीन दिन में हेडन के स्वभाव को समझा, उसके स्वभाव को मैं इतनी अच्छी तरह समझ गया कि तुमको भेजे गये पत्र की तरह के पत्रों पर, मुझे कोई विस्मय न होता। न ही जब मैं जान गया कि बात यह थी मेरे साथ कोई सिद्धान्त था कि उसके साथ परिचय को समाप्त कर दिया जाय, यद्यपि तुम्हारे साथ यही धृष्टता की भावना होती। मेरी अभिलाषा है कि 'प्रतिभा' और 'हृदय' पर तुम मेरे विचार जान पाते—और तो भी मैं पूरी तरह परिचित हूँ कि तुम उस दिशा में मेरे अंतरतम से पूर्ण परिचित हो, अन्यथा तुम इतने दीर्घकाल से मुझे न पहचान पाते, और प्रिय मित्र सा व्यवहार न करते। चलते-चलते तो भी एक बात कहना चाहूँगा, जिसने हाल ही में मुझे काफी परेशान किया है, और मेरी विनम्रता को, तथा समर्पण की क्षमता को बढ़ाया है, और वह यह सत्य है—प्रतिभावान मनुष्य तटस्थ बुद्धि के भार पर काम करने वाले कुछ वायवी रासायनिक तत्वों के समान होते हैं—किन्तु उनका कोई व्यक्तित्व, कोई निश्चित चरित्र नहीं होता—मैं उनका रहस्य बताऊँगा, जिनके अंदर उचित आत्मिक शक्ति है।

पर मैं अपना सिर उसमें खपा रहा हूँ, जिसके विषय में मुझे विश्वास है कि पाँच बरस के अध्ययन और तीन जिल्द आकटेवो में भी न्याय नहीं कर सकता—और फिर कल्पना के बारे में देर तक बातें करना—सो प्यारे बेली यदि हो सके तो इस अप्रिय कार्य पर विचार मत करो—बिल्कुल नहीं—मेरा दावा है कि इससे कोई हानि की सम्भावना नहीं। मैं इस सप्ताह क्रिप्स को लिखूँगा और प्रार्थना करूँगा

कि मुझे पत्र द्वारा समय-समय पर अपने सब हालात लिखता रहे, मैं चाहे जहाँ हूँ। सब ठीक चलता चलेगा, अतः चूँकि तुम्हें हेडन में अचानक उपेक्षा का आभास मिला है, अपने आपको पीड़ित मत करो। मत करना मेरे बन्धु ! ओह, मेरी कितनी अभिलाषा थी कि मैं तुम्हारी सब कठिनाइयों के अंत के विषय में उतना ही निश्चित होता, जितना कि कल्पना के अधिकृतित्व के बारे में तुम्हारे क्षणिक प्रारम्भ से। मैं हृदय के स्नेह की पवित्रता और कल्पना के सत्य को छोड़कर किसी के बारे में निश्चिंत नहीं हूँ। कल्पना जिसे सौन्दर्य के रूप में ग्रहीत कर लेती है, वही सत्य होना चाहिये[1]—चाहे उसका अस्तित्व पहले था या नहीं—क्योंकि हमारी अपनी वासनाओं के बारे में मेरा अपना यही विचार है जो प्यार के बारे में; वे सब अपने उदात्त रूप में आवश्यक सौन्दर्य के स्रष्टा होते हैं। एक शब्द में, तुम मेरे विचार पहली पुस्तक और छोटे से गीत से जान सकते हो, जो मैंने तुम्हें पिछले पत्र में भेजा था। यह गीत इन विषयों में लागू होने वाले कल्पना के संभावित तरीके का प्रतिनिधि है। कल्पना की आदम के स्वप्न से तुलना की जा सकती है। वह जगा और उसने यह सच पाया। मैं इस विषय में अधिक उत्साही हूँ, क्योंकि मुझे अभी तक इस बात का बोध नहीं हो सका कि निरंतर तर्क से कैसे किसी सत्य की प्राप्ति की जा सकती है। और तो भी यह होना चाहिये। क्या यह हो सकता है कि कोई बड़े से बड़ा दार्शनिक भी कभी बिना अनेक आक्षेपों को हटाये अपनी मंजिल पर पहुँचा हो। चाहे यह हो ही, पर ओह, विचार की अपेक्षा अनुभूति का जीवन मिले ! यह है 'तरुणाई की आकृति में स्वप्न', आने वाली वास्तविकता की छाया ! और इस विचार ने मुझे आश्वस्त किया, क्योंकि यह मेरे दूसरे परिकल्पन के सहायक के रूप में आया, कि हम पृथ्वी पर उत्तमतर लय में दुहरा-दुहराकर सुख लहने के पश्चात् यहीं अपने को आनन्द प्रदान करेंगे। और तो भी ऐसा भाग्य उन्हीं का हो सकता है, जो भूख की अपेक्षा अनुभूति में आनन्द लेते हैं, जैसा कि सत्य के पीछे तुम करते हो। आदम का सपना यहाँ लागू होगा, और एक आस्था-सा लगता है कि कल्पना और इसका तेजोमय प्रतिबिम्ब वही है जो मानव-जीवन और उसकी आध्यात्मिक पुनरावृत्ति है। पर जैसा कि मैं कह रहा था कि सरल कल्पना-प्रवण मानस को निरंतर आत्मा पर एक उत्कृष्ट आकस्मिकता के साथ आती हुई अपनी ही शान्त क्रिया की पुनरावृत्ति में अपना फल मिल सकता है—बड़ी चीजों की छोटी से तुलना करूँ तो—क्या तुमने कभी अपने प्राणों में किसी प्राचीन सुरीले राग को, किसी आनन्दप्रद स्थान में—किसी मोहक कण्ठ द्वारा सुनकर विस्मय का अनुभव नहीं किया—क्या अपनी

---

१. इन पंक्तियों से 'कथांकित कलश' के अंत की तुलना कीजिये।

हा कल्पना और वितर्कों को अनुभूत नहीं किया, जब प्रथम बार यह तुम्हारी आत्मा में स्पन्दित हुआ था—क्या तुम्हें अपने मानस में गायक की संभाव्य से अधिक सुन्दर बनती हुई छवि का स्मरण नहीं, तो भी उन क्षणों के उत्कर्ष के साथ तुम ऐसा नहीं सोच सके—लेकिन फिर भी तब कल्पना के पंख पर तुम इतने ऊँचे चढ़ गये थे कि उसका आद्यरूप बाद में यहीं होगा—उस आनंदित आनन को तुम देख ही लोगे। क्या समय है! मैं निरंतर विषयांतर कर रहा हूँ—निश्चय ही विषम मस्तिष्क के साथ ठीक यही बात नहीं हो सकती—जो कल्पनाशील भी है और साथ-ही-साथ अपने फलों के प्रति सतर्क भी है—जिसके लिये यह आवश्यक है कि वर्षों के द्वारा दार्शनिक मानस पनपे—ऐसा, जैसा कि मैं तुम्हारा समझता हूँ; अतएव तुम्हारे चिर सुख के लिये यह अनिवार्य है कि तुम न केवल स्वर्ग की यह मदिरा पियो जिसे कि मैं हमारे अत्यधिक वायवी मननों का पृथ्वी पर पुनर्पाचन कहूँगा; प्रत्युत, साथ ही ज्ञान की वृद्धि करो और सकल वस्तुओं को जानो। मुझे प्रसन्नता है कि ईष्टर पर तुम ठीक हो—तुम शीघ्र ही अभावन पढ़ने से छुटकारा पा जाओगे और फिर! लेकिन संसार कठिनाइयों से भरा है, और अपने आपको अनेकों का शिकार कहने के लिये मेरे लिये अधिक संगत नहीं—मेरा विचार है कि जैनी या मेरियानी के मेरे बारे में, मेरी योग्यता से अधिक अच्छी राय है—क्योंकि यथार्थतः और सत्यतः अपने भाई की बीमारी को अपने से सम्बन्धित नहीं मानता—तुम वास्तविक कारण को उनकी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह जानते हो, न मेरे पीड़ित होने की ही, जैसे कि तुम हुए, कोई संभावना है—तुमने शायद एक बार सोचा था कदाचित् सांसारिक सुख जैसी कोई चीज है जिस पर पहुँचा जा सकता है—समय की किसी निश्चित अवस्था पर चिन्हित—तुम अपनी प्रकृति से इस प्रकार आवश्यकता के कारण हट गये थे—मैं कठिनता से ही किसी सुख पर निर्भर रहने का स्मरण कर सकता हूँ—यदि यह वर्तमान घड़ी में नहीं है, तो इसकी ओर नहीं देखता—क्षणों के पार मुझे कुछ नहीं चौंकाता। अस्तोन्मुख सूर्य मुझे सदैव उचित दिशाओं में ही निर्दिष्ट करेगा—या अगर गौरैया मेरी खिड़की के सामने आ जाती है, तो इसके अस्तित्व में दिलचस्पी लेने लगता हूँ, और कंकड़ चुनने लगता हूँ। किसी के दुर्भाग्य की बात सुनकर पहली वस्तु जो मुझे चुभती है, वह यह है, "भई, इसमें कुछ नहीं किया जा सकता—उसे अपनी आत्मा के स्रोतों को काम में लाने का आनन्द मिलेगा'—और इसके बाद प्रिय बेली, क्षमा करना यदि तुम मुझमें कोई उपेक्षा-भाव पाओ, तब इसे हृदयहीनता के खाते में जमा न करके अव्यावहारिकता में रखना—क्योंकि मैं, विश्वास करना—कभी कभी पूरे सप्ताह भर लालसा या अनुराग से अप्रभावित रहता हूँ—और कभी-कभी जब इसका दौर रहता है, मैं अपने ऊपर, अन्य अवसरों पर अपनी भावनाओं

की निष्ठा पर, संदेह करने लगता हूँ—उन कुछ को वंध्या शोकान्त अश्रुकरण समझते हुए—भाई टॉम की हालत पहले से ठीक है—वह डेवन शायर जा रहा है, शीघ्र ही मैं भी उसका अनुसरण करूँगा—सम्प्रत मैं डोर किंग अभी अभी पहुँच गया हूँ, दृश्य बदलने, हवा बदलने और अपनी कविता के लिये, जिसमें पाँच सौ पंक्तियाँ और रह गई हैं, प्रेरणा पाने। एक दिन पहले ही मैं यहाँ आ जाता पर रेनाल्ड्स ने तुम्हारे मित्र क्रिस्टी से मिलने के लिये नगर में रोक लिया। मार्टिन और राइस भी थे—हमने प्रेतों के बारे में बातचीत की। मैं टेलर से बातचीत करूँगा और तुम्हें बताऊँगा—ईश्वर चाहेगा, तो क्रिसमस पर आऊँगा। उस 'ऐक्ज़ामिनर' की, संभव हुआ तो तलाश करूँगा। ग्लेग को मेरा सर्वोत्तम अभिवादन। मेरा भाई तुम्हें श्रीमती बेन्टले का प्रणाम कहता है।

तुम्हारा स्नेही मित्र
जॉन कीट्स

तुमसे मैं काफी कहना चाहता था—कुछ संकेतों से मेरा काम चल जायेगा। डाइरेक्ट वरफोर्ड ब्रिज डोरकिंग के निकट।

२

जॉन हैमिल्टन रेनाल्ड्स को

हैम्पस्टीड
बृहस्पति, १६ फरवरी, १८१८

मेरे प्रिय रेनाल्ड्स,

मेरा एक विचार था कि मनुष्य इस ढंग से बड़ा मनोहर जीवन व्यतीत कर सकता है—उसे किसी दिन कोई एक पृष्ठ कविता या चुने हुए गद्य का पढ़ना चाहिए, उसे लेकर घूमना चाहिए, उस पर मनन करना चाहिए, चिन्तन करना चाहिए, उसे अपना बना लेना चाहिए, उस पर भविष्यवाणी करनी चाहिए, उस पर सपनाना चाहिए, जब तक वह बासी न पड़ जाये। पर ऐसा होगा कब ? कभी नहीं। जब मानवी बुद्धि किसी परिपक्वावस्था पर आ जाती है, तो कोई भी शानदार और आध्यात्मिक पदांश उसके लिए 'बत्तीस महलों'[1] की ओर ले जाने वाला आरम्भ-

१. बौद्ध दर्शन में वर्णित ३२ 'आनन्द-स्थल'।

स्थल बन जाता है। भावलोक की ऐसी यात्रा कितनी सुखद होती है। अलसता में कितनी सुखभरी कोमलता है! सोफा पर एक ऊँघ इसमें बाधा नहीं डालती, तिनपतिया पर एक झपकी वायवी उंगलि-निर्देशों को सृजित करती है—बच्चे की तुतली बोली इसे पंख प्रदान करती है, और मध्यावस्था की बातचीत उन्हें कड़कड़ाने की शक्ति देती है—संगीत की झंकार 'द्वीप के एक विषम देव'[1] को अर्पित होती है। और जब पल्लव फुसफुसाते हैं, तो अवनी के चतुर्दिक् यह करधनी पहनाती है। और न भव्य ग्रन्थों का यह वंचित करने वाला स्पर्श उनके लेखकों के लिए कोई तिरस्कार ही होगा—क्योंकि मनुष्य के द्वारा मनुष्य के प्रति प्रदर्शित आदर, महान रचनाओं द्वारा आत्माओं और 'भलाई के स्पन्दन को पहुँचाये गये लाभ की अपेक्षा केवल क्षुद्रता है। स्मृति को ज्ञान नहीं कहना चाहिए। बहुतों के मौलिक मस्तिष्क होते हैं, जो इसे नहीं सोचते—वे परम्पराओं द्वारा बहा लिए जाते हैं। अब मुझे यह लगता है कि लगभग कोई भी मनुष्य, मकड़ी जैसे जाला पूरती है, ऐसे ही अपने अन्दर से अपना हवाई दुर्ग बना सकता है—पत्तियों और शाखों के बिन्दु जिन पर कि मकड़ी अपना काम करती है, थोड़े ही होते हैं, वह वायु को सुन्दर वृत्तों से पूर देती है। मनुष्यों को भी अपनी आत्मा के उत्तम जाले के लिए थोड़े से बिन्दुओं से ही संतुष्ट हो जाना चाहिए, और अपने आध्यात्मिक चक्षुओं के लिए प्रतीकों से भरी, अपने आध्यात्मिक स्पर्श के लिए कोमलता की, अपने भ्रमण के लिए स्थान की, अपने विलास के लिए विशिष्टता की, तेजोमय जाली बुननी चाहिए। लेकिन नश्वरों के मस्तिष्क इतने विपरीत हैं, और ऐसी विपरीत दिशाओं की ओर की यात्राओं पर उन्मुख हैं कि प्रथम तो साधारण रुचि और संगति वाले के लिए ऐसी अन्धकल्पनाओं के अन्तर्गत दो या तीन के मध्य बने रहना असम्भव प्रतीत होता है। तो भी, यह नितान्त असंगत है। मस्तिष्क एक दूसरे को विपरीत दिशाओं में छोड़ देंगे, असंख्य बिन्दुओं पर एक दूसरे से टकरायेंगे, और अंततः मंजिल के अन्त में एक दूसरे का अभिनन्दन करेंगे। एक बूढ़ा और एक बालक साथ-साथ बातें करेंगे और बूढ़ा अपने पथ पर चला जायेगा, और बालक सोचता रह जाएगा। मनुष्य को लड़ना या हठ नहीं करना चाहिए, पर अपने पड़ौसियों के कानों में निष्कर्षों को डाल देना चाहिए, और इस प्रकार आत्मा के प्रत्येक कीटाणु द्वारा वायव मृत्ति-राशि से रस-शोषण करते हुए, प्रत्येक मनुष्य महान हो सकता है और मनुष्यता बजाय इसके कि यहाँ-वहाँ 'फर्ज़'[2] और 'ब्रायर्स' की विस्तृत झाड़ी हो या इक्के-दुक्के चीड़ या 'बाँझ' के

---

१. टेम्पेस्ट—शेक्सपीयर।

२. 'टेम्पेस्ट' में प्रयुक्त।

पेड़ हों, वन-तरुओं की भव्य जनतन्त्रता होगी ! इस पर जोर देने के लिए यह रूपक अब पुराना हो चला है—मधुकोष : तो भी मुझे यह प्रतीत होता है कि हमें मधुमक्षिका के बजाय कुसुम होना चाहिए—क्योंकि यह एक मिथ्या भ्रम है कि दान की अपेक्षा आदान में अधिक लाभ है—नहीं, आदाता और दाता दोनों अपनी-अपनी जगह पर समान लाभान्वित होते हैं। कुसुम, मुझे विश्वास है कि मधुमक्षिकाओं से सुमधुर प्रशस्ति पाता है—आगामी वसंत में इसकी लालिमा और गहरी हो जाती है—और कौन कह सकता है कि स्त्री और पुरुषों में किसको अधिक लाभ होता है ? अब यह अधिक शिष्टतर है कि 'मर्करी'[1] के समान उड़ने की अपेक्षा, 'जव' के समान बैठा जाय—अतएव, हमें मधुसंचय करते हुए इधर-उधर त्वरा में नहीं भटकना चाहिए। यहाँ-वहाँ मधुमक्खी के समान भन-भन करते रहना एक निर्दिष्ट लक्ष्य पाने के लिए, इससे क्या लाभ ? पर हमें पुष्प की तरह अपनी पांखुरी विकसानी चाहिए, और निष्क्रिय होना तथा स्वागत-तत्पर रहना चाहिए—अपोलो के नयन के तले धैर्य के साथ चटकते हुए, और आगंतुक प्रत्येक शिष्ट जीव से संकेत लेते हुए—माँस के बदले में हमें दिया जायेगा रस, और पेय की जगह ओस ! मेरे प्रिय, रेनाल्ड्स ! मैं इन्हीं विचारों में लवलीन था—अलसता के बोध पर भोर का सौन्दर्य छा रहा था—मैंने कोई पुस्तक नहीं पढ़ी—भोर ने कहा मैं ठीक हूँ—भोर को छोड़कर मन में और कोई भाव भी नहीं था—और 'थ्रश' ने कहा मैं ठीक हूँ—मझसे कहता-सा लगा,

'ओ, तू शिशिर वायु का अनुभव करता, आनन जिसका[2]—इत्यादि'

अब मैं सचेत हूँ कि यह कोरी कृत्रिमता है (चाहे यह सत्यता के निकट हो) मेरी अपनी अलसता को क्षमा करना—अत: अपने को धोखा नहीं दूँगा कि मनुष्य 'जव' के समान हो—पर उसको सोचना चाहिए अच्छी तरह अपने आपको मालिन्य-हर्त्ता—'मरकरी' की तरह या तुच्छ मधुमक्षिका के समान भी। यह कोई बात नहीं कि मैं सही हूँ या ग़लत, इस रास्ते पर हूँ या उस रास्ते पर, अगर है पर्याप्त अपने कन्धों पर उठाने के काल का लघु भार भी।

तुम्हारा सस्नेह मित्र
जॉन कीट्स

१. एक रोमन देवता, जिसकी विशेषता यवन-देव हरमिज़ से मिलती-जुलती हैं। इसका प्रमुख क्षेत्र व्यापार, व्यवसाय है।

२. देखिए 'थ्रश बोला यों मुझसे'।

स्वभाव के किसी परिवर्तन को दर्प की अपेक्षा विनम्रता के कारण बताएँगे—महान कवियों के पंखों के नीचे भयार्त्त होकर छिपने के कारण न कि इस कटुता के कारण कि मैं प्रशंसित नहीं हुआ। मैं ऐण्डिमियन को मुद्रित देखने को चिन्तातुर हूँ, ताकि इसे भूल सकूँ और आगे बढ़ सकूँ।

तुम्हारा भवन्निष्ठ और विश्वासी मित्र
जॉन कीट्स

४

जॉन हैमिल्टन रेनाल्ड्स को

मंगलवार, २२ सितम्बर, १८१८

मेरे प्यारे रेनाल्ड्स,

विश्वास करो कि तुम्हारी खामोशी पर शिकवा करने के बजाय मैंने तुम्हारी प्रसन्नता में सुख का अनुभव किया है। सच पूछो तो तुम्हारे कारण मैं दुःखित ही हुआ हूँ कि मैं भी उसी समय सुखी क्यों नहीं हूँ—पर मैं तुमसे इस समय आनन्द के सिवा 'संचित करो गुलाब इत्यादि'[1] के सिवा और कुछ न सोचने की प्रार्थना करता हूँ! जीवन के मधु का रसास्वादन करो। मुझे तुम्हारे साथ भी ऐसी ही सहानुभूति है कि यह अधिक काल तक नहीं रह सकता, जैसी कि अपने साथ कड़ुवा घूंट पीकर करता हूँ। तुम भी और सब छोड़कर इसे ग्रहण करो। तुम्हारा इसमें वश भी नहीं—और मुझे ऐसा सोचने में सन्तोष है। मैं कभी प्यार नहीं करता था—तो भी एक स्त्री[2] की आकृति और वाणी ने मुझे इन दो दिनों बहुत भरमाया है—ऐसे समय जबकि राहत, कविता द्वारा उपलब्ध होने वाली उतप्त राहत—अत्यल्प अपराध लगती है—इस भोर कविता ने मुझ पर जय पाई है—मैं पुनः उन अन्यमनस्कताओं में डूब गया हूँ, जो मेरी मात्र जिन्दगी हैं—मैं एक नये अजनबी और भयकारी दुःख से त्राण पाता-सा लगता हूँ—और मैं इसके लिये कृतज्ञ हूँ—मेरे हृदय के चतुर्दिक् एक व्यापक उष्णता अविनश्वरता के बोझ के सदृश फैल गई है।[3]

---

१. 'तासो' की एक काव्य-पंक्ति।

२. यह स्त्री 'जेनी कॉक्स'—रेनाल्ड्स की चचेरी बहन थी।

३. देखिये 'ऐल्गिन मार्बल्स के दर्शन पर' : एक सॉनेट।

बिचारा टॉम—वह स्त्री—और कविता मेरी ज्ञानेन्द्रियों में परिवर्तन झंकृत कर रहे थे—अब मैं अपेक्षाकृत प्रसन्न हूँ—मुझे आभास है कि यह तुम्हें पीड़ित करेगा—मुझे क्षमा करना। यदि पता होता कि इतनी जल्दी तुम रवाना हो जाओगे, तो 'तुलसी का पात्र'[1] को तुम्हें भेज देता, क्योंकि मैं उसकी प्रतिलिपि कर चुका था।

रोज़र्द के एक सॉनेट का मुक्त रूपान्तर भेज रहा हूँ, जो कि मेरा ख्याल है तुम्हें आनंदित करेगा—उसकी रचनाओं को माँग लिया करता हूँ—उनमें बड़ा सौन्दर्य है।

तुम्हारा स्नेहाधीन
जॉन कीटस

५

जेम्स आगस्टस हेसी को

हेम्पस्टीड
६ अक्टूबर, १८१८

मेरे प्रिय हेसी,

क्रॉनीकल से मुझे पत्र भेजकर तुमने अच्छा किया, और मैं भी कितना बुरा हूँ कि ऐसी कृपा की स्वीकृति का शीघ्रतर पत्र भी न भेज सका—भाई, माफ़ करना—यह संयोग ऐसे हुआ कि वह अखबार मैं रोज मँगाता था। आज भी देख चुका हूँ। मैं उन सज्जनों के प्रति, जिन्होंने मेरा पक्ष लिया है, सिवाय कृतज्ञता के, और कर भी क्या सकता हूँ—और शेष के लिये, मैंने अपनी शक्ति और दुर्बलता से थोड़ा परिचित होना शुरू कर दिया है—प्रशंसा या अप्रशंसा उस मनुष्य पर, जिसे कि निरपेक्ष सौन्दर्य में उसका प्रेम अपनी ही रचनाओं का आलोचक बनाता है, क्षणिक प्रभाव डालते हैं। मेरी अपनी घरेलू आलोचना ने 'ब्लैकवुड' और 'क्वार्टरली' की चोट पहुँचाने की सर्वाधिक क्षमता की अपेक्षा, मुझे अधिक पीड़ित किया है; और जब मैं अनुभव करता हूँ कि मैं सही हूँ, तो कोई वाह्य प्रशंसा मुझमें ऐसी चमक नहीं भर सकती, जैसी कि मेरा अपना जो कुछ उत्कृष्ट है उसका एकान्तिक पुनरेन्द्रियबोध (reperception), और अनुसमर्थन (ratification) जे० ऐस० 'ऐण्डिमियन' की

१. या 'इज़ाबेला' काव्य।

शिथिलता के विषय में ठीक कहता है। यह ऐसा ही है, पर इसमें मेरा कोई अपराध नहीं—नहीं ! यद्यपि यह तनिक असंगत प्रतीत होता है। यह उतना ही श्रेष्ठ है, जितना कि मैं इसके बनाने में सक्षम था—स्वयं अपने द्वारा। यदि इसकी परिपूर्ण रचना करने के बारे में दुर्बलता महसूस करता, और उस दृष्टि से परामर्श माँगता, और हर पन्ने पर काँपता, तो यह लिखी ही नहीं जाती : क्योंकि फूहड़पन से काम करना मेरी प्रकृति ही नहीं। मैं लिखूँगा स्वतन्त्र रूप से—बिना किसी निर्णय के स्वतन्त्रतापूर्वक मैंने लिखा है—भविष्य में स्वतन्त्रतापूर्वक और निर्णय सहित मैं लिख सकूँगा। काव्य की प्रतिभा को मनुष्य में अपना निर्वाण आप ही ढूँढना चाहिये। यह नियम अथवा इंद्रियबोध के द्वारा प्रौढ़ नहीं हो सकती, यह होगी संवेदन (Sensation) और अपने आप में सतर्कता के द्वारा। वह जो अपने आप में सृजनशील है, अवश्य अपने आपको सृजेगी—ऐण्डिमियन में, मैंने सिर के बल समुद्र में छलाँग लगाई, और उसके द्वारा ध्वनियों से, रेणु-पंक और शिलाओं से परिचित हुआ, अपेक्षाकृत, यदि मैं हरित दूब के ऊपर बैठा रहता, और सड़े पाइप से धूँआँ निकालता रहता, और चाय के घूँट भरता रहता, तथा आरामदायक परामर्श लेता रहता। मैं असफलता के भय से कभी अभिभूत नहीं हुआ, क्योंकि महानतमों की पाँत में न होने की अपेक्षा मैं शीघ्रतर असफल होता। पर अब मैं कोलाहल में आ रहा हूँ। अतः टेलर और वुडहाउस इत्यादि को सस्मरण,

और मैं हूँ तुम्हारा भवन्निष्ठ
जॉन कीट्स

६

रिचार्ड वुडहाउस को

हैम्पस्टीड
मंगलवार, २७ अक्टूबर, १८१८

मेरे प्यारे वुडहाउस,

तुम्हारे पत्र से मुझे अपार सन्तोष मिला। इसकी मैत्री-भावना के कारण अधिक, उसमें वर्णित विषय जिसे कि 'जेनस इर्रीटेबाइल'[1] में इतना स्वीकृत किया जाता है, के कारण कम। सर्वोत्तम उत्तर जो मैं तुम्हें दे सकता हूँ, वह है क्लर्क के

---

१. होरेस के पत्र-काव्यों में प्रयुक्त।

तरीके से, दो मुख्य बिन्दुओं पर कुछ निष्कर्षों को प्रस्तुत कर, जो कि समस्त पक्ष, विपक्ष के मध्य में, प्रतिभा, दृष्टिकोण, सफलताओं, और महत्त्वाकांक्षा तथा शाश्वतता के विषय में सूचकों के समान निर्देशित करने लगते हैं। प्रथम, स्वयं कवि चरित्र के विषय में, (मेरा आशय उससे है, जिसका कि अगर मैं कुछ हूँ, तो सदस्य हूँ : यह प्रकार वर्डस्वर्थीय अथवा आत्मवादी उदात्त से भिन्न है; जो कि वस्तु ही कुछ और है, और इसका स्थान ही पृथक है) यह अपने में स्वयं नहीं है—इसका कोई आत्म नहीं है—यह सब कुछ है, और कुछ नहीं है—इसका कोई स्वरूप नहीं है—यह छाया और आलोक दोनों का रस लेता है; यह आनन्द का निवासी है, चाहे यह उचित हो या अनुचित, ऊँचा हो या नीचा, समृद्ध हो या दरिद्र, क्षुद्र हो या महान—उसे 'इयागो' की कल्पना में भी उतना ही सुख है, जितना कि 'इमोजेन' की में। जो गुणी दार्शनिक को व्याकुल करता है, गिरगिट-वत कवि को सुख प्रदान करता है। किसी वस्तु के उज्ज्वल पक्ष के आस्वादन से उसे जितनी अधिक हानि हो सकती है वस्तुओं के अंधकार-पक्ष के रसास्वादन से भी उससे अधिक नहीं होती; क्योंकि दोनों का अन्त परिकल्पना में ही होता है। अस्तित्व रखने वाली किसी भी वस्तु के प्रति सर्वाधिक अकवि-वत होता है; क्योंकि उसका कोई स्वरूप-ज्ञान नहीं होता—वह निरन्तर ही निर्माणावस्था में है, और किसी अन्य देह को भरता रहता है सूरज, चाँद, समुद्र, स्त्री, पुरुष जो स्पन्दन के प्राणी होते हैं, कवि-वत है, और उनके बारे में एक अपरिवर्त्य दृष्टिकोण होता है—किन्तु कवि का ऐसा कोई नहीं होता; उसकी कोई पहचान नहीं—वह निश्चय ही विधाता के जीवों में सबसे अधिक अकवि-वत है। अब अगर उसका कोई 'स्व' नहीं और यदि मैं कवि हूँ, तो विस्मय की बात कहाँ है कि मैं कह दूं कि अब और नहीं लिखूंगा ? क्या ठीक उस क्षण मैं 'शनि' और 'ओप्स' के चरित्रों पर चिन्तन नहीं कर रहा था ? ऐसा स्वीकार करना, दैन्य का प्रदर्शन है; लेकिन तथ्य यही है कि एक भी शब्द, जिसकी कभी भी मुझसे व्यंजना हुई है, मेरे अभिज्ञात्मक स्वभाव से उत्पन्न नहीं माना जा सकता—हो कैसे सकता है, जब मेरा कोई स्वभाव नहीं ? जब मैं किसी कमरे में लोगों के साथ होता हूँ, अगर कभी मैं अपने मानस पर परिकल्पना करने को स्वतन्त्र होता हूँ तो, तब मेरा स्वयं स्वयं के साथ नहीं जाता—पर कमर में प्रत्येक की अभिज्ञा (identity) मेरे ऊपर ऐसी भार-सी लगती है, कि मैं अत्यल्प काल में बाधित हो जाता हूँ—मनुष्यों में ही नहीं; बच्चों के क्रीड़ागृह में भी; मैं नहीं जानता कि यह बात मैं पूरी तरह समझा भी पाऊँगा ! मुझे ऐसी पर्याप्त आशा है कि तुम इसे देख लोगे कि कल मैंने क्या कहा था; पर कोई निर्भरता नहीं रखी जायेगी।

दूसरी बात, मैं अपने दृष्टिकोण के बारे में कहूँगा, और जीवन के बारे में,

जो अपने लिये जीना है। मैं संसार में कुछ भला करने का अभिलाषी हूँ। अगर मैं बचा रहा तो यह परिपक्वतर वर्षों का कार्य है। मध्यांतर में, मैं कविता की ऊँची से ऊँची सीमा पर पहुँचना चाहता हूँ, जितनी कि मुझे प्राप्त मेरे स्नायु तंतु सहन कर सकें। भावी कविताओं के धूमिल कल्पनाचित्रों से प्रायः मेरे मानस में रक्तोद्वेलन होता है। जो कुछ मैं आशा करता हूँ वह यह है कि मैं मानवी प्रवृत्तियों में सब रुचि न खो दूँ—कि सर्वोत्तम आत्माओं तक से प्राप्त होने वाली प्रशंसा के प्रति जिस एकाकी तटस्थता का मैं अनुभव करता हूँ, मुझे दिख सकने वाले कल्पना-चित्र की तीव्रता उससे कुण्ठित न हो जाये। मैं नहीं सोचता कि ऐसा होगा—मैं आश्वत हूँ कि सौंदर्य के प्रति जो भी मेरी चाहना और जिज्ञासा है, उसी से प्रेरित होकर मैं लिखूं, चाहे प्रत्येक प्रभात में मेरा रात भर का श्रम खाक ही क्यों न हो जाये, चाहे उन पर कभी कोई नयन न चमक पाये। पर तो भी मैं अब भी अपने आप से नहीं बोल रहा। पर उस किसी चरित्र से, जिसकी आत्मा का मैं अब निवासी हूँ। तो भी मुझे विश्वास हैं कि यह अगला वाक्य मेरे अपने से ही है। मैं तुम्हारी चिन्तातुरता, सद्भावना और सौहार्द्र का सर्वोच्च सीमा पर अनुभव करता हूँ, और हूँ,

तुम्हारा अत्यंत विश्वासपात्र
जॉन कीट्स

७

बेंजामिन रॉबर्ट हैडन को

मंगलवार, २२ दिसम्बर, १८१८

मेरे प्रिय हैडन,

प्राणों की सौगन्ध तुम्हारे कमरे से जाने का बिलकुल भी पता नहीं चल सका। और मेरा विश्वास करो कि मैंने सिवाय तुम्हारी संगति के अन्यत्र कहीं शेखी नहीं बघारी। सामान्य समाज में मेरा जीवन शान्ति का है। मैं अपने अन्दर कवि के सभी दुर्गुण पाता हूँ—चिढ़न, प्रभाव और प्रशंसा के प्रति मोह—और इन असुरों के वश होकर कभी कभी अनजाने में ऐसी निर्लज्ज कहनी-अनकहनी कह जाता हूँ—पर इसे बंद कर दूंगा, उसी पद्धति से, जिन पर कि मैं दीर्घकाल से निश्चय कर चुका हूँ।—मैं सोने की मुद्रा खरीदकर उँगली में पहनूंगा—और उसके पश्चात् कोई ऊँचे सिर वाला व्यक्ति मुझ पर करुणा प्रदर्शित कर सकने का साहस नहीं कर सकेगा, अथवा

कोई ऐरागैरा मुझ पर कीचड़ ही उछालेगा—मैं निश्चय ही खुले दिवस की अपेक्षा छाया में की महानता के प्रति अधिक कृत-संकल्प हूँ—मैं नश्वर के समान बोल रहा हूँ—मैं कहूँगा कि एक भविष्यवक्ता के यश की अपेक्षा एकान्त में महान वस्तुओं को देखने के विशेष गौरव को अधिक मूल्यवान समझता हूँ—तो भी मैं पाप कर रहा हूँ—इसलिये उनकी चर्चा करूँगा, जिन बातों पर मैंने अधिक ग़ौर किया है। मेरा आशय है तुम्हारे साधनों से, जब तक तुम्हारी तस्वीर पूरी न हो जाये : न केवल अब, पर इस बात पर डेढ़ वर्ष से सोच रहा हूँ। विश्वास करो हैडन कि मेरे हृदय के अन्दर वैसी ही ज्वाला है, जिसे तुम्हारी सेवार्थ किसी भी वस्तु की आहुति देने में संकोच न होगा—मैं बिना छिपाव के बोल रहा हूँ हैडन—मैं जानता हूँ कि वही तुम मेरे लिये भी कर सकते हो। मैं कुछ शब्दों में तुम्हारे सामने अपना हृदय खोलता हूँ—तुम्हारी परेशानी से पूर्व इसे शीघ्रतर करूँगा। पर मुझे आखिरी पड़ाव रहने दो—सबसे पहले कला के धनी प्रेमियों से माँगो। मैं कहूँगा, क्यों ?—मेरे पास धन थोड़ा सा ही है, जिससे तीन-चार बरस पढ़-लिख और सैर कर सकता हूँ। अपनी पुस्तकों से मुझे कोई आशा नहीं—और इसके अतिरिक्त, मैं प्रकाशन से दूर ही रहना चाहता हूँ—मैं मानवीय स्वभाव को पसंद करता हूँ, लेकिन 'मानवों' को नहीं चाहता—मैं ऐसी चीज़ों की रचना करना चाहूँगा, जो मनुष्य के लिये गौरवमय हो—लेकिन मनुष्यों द्वारा उँगली-निर्देशित न हो। अतः मैं आतुर हूँ जीने के लिये—बिना मुद्रकासुर को कष्ट दिये, अथवा नर-नारियों की प्रशंसा पाये बिना उस महान् एकान्त में, मुझे आशा है कि प्रभु मुझे रहने की शक्ति देगा। लम्बे बटुओं से पहले कोशिश करो—पर अपनी कला को मत बेचो, अन्यथा मैं इसे मित्रद्रोह समझूँगा। मुझे खेद है कि मैं घर पर नहीं था, जब 'सोलोमन'[1] आया था। लिखना अवश्य और मुझे अपने सब वर्तमान 'क्या और क्यों' से परिचित रखना।

तुम्हारा सर्वाधिक विश्वासी
जॉन कीट्स

---

१. हैडन का नौकर।

८

कुमारी जेफरे को

वैन्टवर्थ प्लेस
बुधवार, ६ जून, १८१६

मेरी प्रिय तरुण महिला,

तुम्हारे दो पत्रों के लिये मैं अत्यंत कृतज्ञ हूँ—मैं क्यों तुम्हारे प्रथम पत्र का उत्तर नहीं दे पाया, इसका कारण यह था कि अपने भाई टॉम की निरंतर स्मृति के कारण 'साउथ ऑफ डेवन' से मुझे तनिक उपरति सी हो गई थी। उसी कारण मैं हैम्पस्टॉड के अपने पुराने आवास को नहीं लौटा—यद्यपि उस घर वाले अब मेरे मित्र हो गये हैं—यद्यपि यह और कुछ न सोच पाना, एक या दो दिन तक किसी के विचारों को नियोजित करने के अतिरिक्त और अधिक कुछ नहीं कर सकता। मुझे तुम्हारा 'ब्रैडले' का वर्णन बड़ा रोचक लगा; और मैं दावे से कह सकता हूँ कि आगामी ग्रीष्म मैं वहीं पर व्यतीत करूँगा। यह तुरन्त भी हो सकता था, पर एक अस्वस्थ मित्र ने, जिसके साथ मेरे सम्बन्ध बड़े घनिष्ठ हैं, मुझे कल आमन्त्रित किया था, और 'आइल ऑफ वाइट' में उसके साथ एक मास व्यतीत करने का मेरे सामने उसने प्रस्ताव रखा था। आजकल तो यह बात है—कल की कल देखी जायेगी—मुझे 'बिशप्स टेन माउथ' का नाम पसंद नहीं आया—मुझे आशा है कि टेन माउथ से ब्रेडले को सड़क उस रास्ते पर नहीं है—इण्डियामैन के विषय में तुम्हारा परामर्श बुद्धिमत्तापूर्ण है, क्योंकि यह ठीक मेरे अनुकूल है; यद्यपि मानसिक शक्तियों को इसके द्वारा होने वाली क्षति के सम्बन्ध में तुम्हें थोड़ी सी विभ्रान्ति है : इसके विपरीत, उन्हें शक्तिशाली बनाने के लिये विश्व में यह सर्वोत्तम वस्तु होगी—उन लोगों के बीच पटक दिया जाना, जिन्हें तुमसे सहानुभूति नहीं है, मस्तिष्क को अपने ही स्रोतों पर जीवित रहने को विवश करता है, और मानवी चरित्र की विविधताओं की अपनी परिकल्पनाएँ करने, तथा एक जीव शास्त्री की धीरता के साथ उनको वर्गीकृत करने को स्वच्छन्द हो जाता है। एक 'इण्डियामैन' एक छोटी-सी दुनियाँ है। संसार में अंग्रेजी भाषा ने क्यों सर्वोत्तम लेखक पैदा किये हैं, इसका बड़ा कारण यह है कि अंग्रेजी जगत ने उनके जीवन काल में उनके साथ दुर्व्यवहार किया है, और उनकी मृत्यु के उपरान्त उन्हें पोषित किया है। सामान्यतः वे जीवन की पगडंडियों में एक तरफ कुचल दिये गये हैं, और उन्होंने समाज की कुत्साओं को देखा है। उनके साथ इटली के 'रेफील'[1] के समान वरतावा नहीं किया गया। और कहाँ है इंगलिशमैन और कवि, जिसने अपने नायक के घोड़े की

---

१. इटली का प्रसिद्ध चित्रकार।

धर्म-दीक्षा पर 'बोयार्डो'[1] के समान अभिनंदन-उत्सव मनाया था ? 'ऐपीनाइन' में उसका अपना गढ़ था। वह रोमान्स का उत्कृष्ट कवि था। मानवीय हृदय का दुःखी और शक्ति सम्पन्न कवि नहीं। शैक्सपियर का मध्यकाल सारा मेघाछन्न रहा। उसके दिवस 'हेमलेट' से अधिक सुखी नहीं थे। हेमलेट ही उसके सब पात्रों में उसके साधारण दैविक जीवन में शायद शैक्सपियर से सबसे अधिक मिलता-जुलता पात्र है। बेन जान्सन एक साधारण सैनिक था, और निचले देशों में, दो सेनाओं के बीच में, एक फ्रांसिसी अश्वारोही के साथ अकेले युद्ध किया था, और उसका वध किया था—इस सबके लिये, मैं इण्डियामैन को आगे न लाऊँगा और न उदाहरण की खातिर अंध गलियों में अपना सिर खपाऊँगा : मैं दावा करता हूँ कि मेरा अनुशासन तो आने को है, और विपुल मात्रा में आयेगा। पिछले दिनों मैं काफी सुस्त रहा, लेखन से काफी विरत : मृत्त कवियों के छा जाने वाले विचार, तथा कीर्त्ति के प्रति मेरे प्रेम में ह्रास दोनों ही से। मुझे आशा है कि मैं पहले की अपेक्षा कुछ दार्शनिक-सा हो गया हूँ, फलतः एक छन्द गढ़ने वाले 'पालतू-मेमने'[2] से थोड़ा कम। मैंने इधर कुछ नहीं छपाया, अन्यथा तुम्हें मिल ही जाता। तुम मेरे १८१६ के स्वभाव का निर्णय करोगी, कि जब मैं कहूँगा कि जिस चीज को मैंने सर्वाधिक पसंद किया है, वह है 'अलसता' पर एक प्रशस्ति की रचना। अपनी सुदीर्घ-कुन्तला भगिनी को क्यों नहीं तत्पर करतीं कि वह अपनी कड़ी बादामी मुट्ठी को कागज पर रक्खे, और पत्र को गुणित करे ? उससे कहना कि जब तुम दुबारा लिखो, कि मैं 'चेकर कार्य'[3] की प्रतीक्षा करता हूँ—मेरा मित्र ब्राउन मेरे सामने बैठा हुआ डेविड की जीवनी लिखने में मशगूल है। वह मुझे वह अंश पढ़कर सुनाता चलता है, जो वह लिखता जाता है, मेरे नास्तिक मुख में ठूँसने के लिये, मानो मैं कोई 'रुक'[4] (rook) का बच्चा हूँ। नास्तिक 'रुक' (rook) ऐलिशा के रेविन (raven)[5] को चुग्गा नहीं देता। अगर वह (ब्राउन) चालू रखे, तो तुम्हारे नये-गिरजे की आगे बढ़ने की जरूरत नहीं है, क्योंकि पादरियों को अपदस्थ किया जायेगा—और निश्चय ही, पादरी (clercks)[6] भी अनुसरण करेंगे ही। अपनी माँ को

---

१. इटली का पन्द्रहवीं शती का महान कवि।
२. 'अलसता के प्रति' प्रशस्ति में देखिये।
३. चारखाने का काम : विभिन्न रंगों की बुनाई।
४. एक प्रकार का कौआ (संघ काक्)।
५. यह भी काग की एक किस्म—पहाड़ी कौआ। (द्रोण-काक्)।
६. प्रार्थना बुलवाने वाले पादरी।

मेरा स्नेह देना, इस विश्वास के साथ मैं अपने भाई टॉम के प्रति उनकी व्यग्रता को नहीं भूल सकता। यह भी विश्वास करो कि मैं 'तुमसे' हमारी विदाई की घड़ी का सदैव स्मरण रक्खूँगा।

सदैव तुम्हारा भवन्निष्ठ
जॉन कीट्स

६

बेंजामिन बेली को

विंचेस्टर
शनिवार, १४ अगस्त, १८१९

पुस्तकालय की सुविधा के कारण हम लोग विंचेस्टर को चले आये, और यह नगर तो अत्यन्त मनोहर है, एक भव्य 'कैथेड्रिल' है, चारों ओर ताजा दिखते ग्राम हैं। हमने रहने लायक अच्छी और सस्ती जगह ले रखी है। इन दो महीनों में मैंने लगभग २५०० पंक्तियों की रचना की है जिनमें से अधिकांश पूर्व लिखित हैं जिन्हें कि आगामी शिशिर में तुम्हें सुनाऊँगा। मैंने दो कथाएँ लिखी है—एक तो बोकाचियो की—'पॉट ऑफ बैसिल'[1] और दूसरी 'ईव ऑफ सैन्ट एग्निस'[2] जो प्रचलित अंधविश्वास पर आधारित है; और तीसरी है 'लेमिया'—अधूरी—मैं 'हाइपैरियन' के कुछ अंश को भी लिख रहा हूँ, और एक दुःखान्त नाटक के चार अंक पूरे कर चुका हूँ। मेरे अधिकांश मित्रों की यह राय है कि मैं दृश्य कभी नहीं लिख सकता। मैं इस पूर्वग्रह को दूर करने की कोशिश करूँगा—मुझे हार्दिक आशा है कि तुम जब मेरी यह मेहनत तुम्हारे पास पहुँचेगी, बड़े प्रसन्न होगे। मेरी अभिलाषा है कि आधुनिक नाट्य—लेखन में एक महान-क्रान्ति उपस्थित करना, जैसी कि 'कीन' ने अभिनय में की है; दूसरी, इन नीले मोज़ोंवाली साहित्यिक दुनियाँ की मंद-मंद बड़बड़ाहट की उखाड़-पछाड़ करना—अगर थोड़े से वर्षों में इन चीज़ों को कर पाता हूँ, तो संतोष के साथ मरूँगा, और मेरी कब्र पर मेरे मित्र दर्जनों 'क्लेरिट' (मदिरा) पी सकते

---

१. तुलसी का पात्र।
२. देवि एग्निस की संध्या।

हैं—दिन प्रतिदिन मेरा यह विश्वास गहरा होता जा रहा है कि (सिवाय बंधु मानवीय दार्शनिक के) एक श्रेष्ठ लेखक विश्व में सर्वाधिक विशुद्ध प्राणी होता है। शैक्सपियर और 'पैराडाइज़ लॉस्ट' दिन दिन मेरे लिये महानतर विस्मय के कारण होते जा रहे हैं। मैं उत्तम मुहावरों पर एक प्रेमी की भाँति दृष्टि डालता हूँ। मुझे कुछ दिन पूर्व ब्राउन के एक पत्र के अंश से यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुम्हारा हृदय इतना उत्साहपूर्ण था। चूंकि तब से तुम विवाहित भी हो गये, और तुम्हें बधाई देते हुए, ऐसे ही उत्साह की निरंतरता की कामना करता हूँ। श्रीमती बेली को मेरा आदर कहना। यह कुछ मेरे लिये असोह सा लगता है, और मैं कह सकता हूँ कि मैं इसे काफी अभद्रता से करता हूँ: पर सोचता हूँ कि अब तक ऐसी बात नूतन नहीं रह गई होगी—ब्राउन का तुमको स्मरण—जहाँ तक मैं जानता हूँ कि विंचेस्टर में कभी हमारा कुछ दिन और रहना होगा—

तुम्हारा सदैव विश्वासी मित्र
जॉन कीट्स

१०

जॉन हैमिल्टन रेनाल्ड्स को

विंचेस्टर, २५ अगस्त, १८१९

मेरे प्रिय रेनाल्ड्स,

इस डाक से राइस को पत्र लिख रहा हूँ, जिससे तुम्हें पता चलेगा कि हमने शैन्कलन क्यों छोड़ दिया, और इस स्थान को हम क्यों पसंद करते हैं। इतना नीरस जीवन बिताते हुए, मैं तुमसे रोमांच और दिवाप्रेत स्वप्नों के इतिहास के अतिरिक्त सच पूछो तो मुश्किल से ही और कुछ पर कह सकता हूँ। इसमें तुम मुझे बिल्कुल अप्रसन्न न पाओगे। मेरे सब विचार और अनुभूतियाँ, जो स्वार्थी प्रकृति की होती हैं, और गृह-परिकल्पनाएँ मुझे अनुचित लौह बनाते जा रहे हैं। मुझे दिन-दिन और अधिक विश्वास होता जा रहा है कि अच्छा लिखने का स्थान अच्छा करने के पश्चात् है, जो दुनियाँ में चोटी की चीज़ है, कि 'पैराडाइज लॉस्ट' और भी महानतर आश्चर्य लगता है। जितना मैं जान पाता हूँ कि मेरी श्रमशीलता समय पर कदाचित् क्या प्रभाव डाल सकती है, उतना ही मेरा हृदय दर्प और हठ से दूर भागता है। एक

लोकप्रिय लेखक होने की क्षमता का अपने अन्दर अनुभव करता हूँ। जनता की विषैली सम्मति को अस्वीकार करने की अपने अन्दर शक्ति महसूस करता हूँ। मेरा अपना अस्तित्व जिसकी कि मुझको अनुभूति है, स्त्री-पुरुषों के रूप में राज में निवसित छायाओं की अपेक्षा मेरे लिये अधिक बहुमूल्य हो जाता है। आत्मा का अपना संसार होता है, और अपने घर में ही उसे करने को काफी काम रहता है। वे जिन्हें पहले ही जानता हूँ, और जिनका विकास ऐसे ही हुआ है, मानो वे मेरे शरीर के अंग थे, उनके बिना नहीं रह सकता : किन्तु शेष मनुजता, वे तो मेरे लिये ऐसे ही स्वप्नसदृश है, जैसे कि मिल्टन को देवदूतों के समूह। सोचता हूँ कि काश, मेरे पास हृदय का मुक्त, स्वस्थ और सुदृढ़ संगठन होता, और बैल के से मजबूत फेफड़े होते, बिना किसी थकन के रोमांचों और उग्र विचारों के धक्के (सहने के लिये), तो मैं अपना जीवन बहुलशः लगभग अकेला ही व्यतीत करता, यद्यपि यह अस्सी वर्ष का होता। लेकिन मैं अपने शरीर को उस ऊँचाई तक सहारा देने में कमजोर पाता हूँ, अतः अपने आपको मैं निरंतर रोकने में विवश हूँ, और कुछ नहीं होने की कोशिश करता हूँ। मेरे लिये यह कोशिश करना, तुम्हें लिखने की अधिक तर्क पूर्ण प्रणाली के बाद व्यर्थ ही होगा। मुझे सिवाय अपने और कहना भी क्या है? और कह भी क्या सकता हूँ, सिवाय उसके जो अनुभव करता हूँ? यदि मेरी इस उत्तेजित अवस्था पर दुःख प्रकट करने का कोई तुम्हारे पास कारण हो, तो तुम्हारी भावनाओं के ज्वार को सही दिशा दूँगा, इस उल्लेख के साथ कि सर्वोत्कृष्ट काव्य के लिये—जिसकी कि मैं सबसे अधिक चिन्ता करता हूँ, जिसके लिये जीता हूँ—यही एक मात्र अवस्था है। पूरा पृष्ठ नहीं भर पा रहा, इसके लिये क्षमा करना : पत्र मेरे लिये इस क़दर नीरस हो जाते हैं कि अगली बार जब लंदन से जाऊँगा, तो उन सबसे प्रार्थना करूँगा कि मुझे बख्शें। निश्चलता के लिये मुझे श्रेय देना, और साथ ही साथ पत्र-व्यवहार को स्थगित करना मेरी दृष्टि में सर्वोच्च प्रकार का अमिताचार होगा।

सदैव तुम्हारा विश्वासी बन्धु
जॉन कीट्स

११

जॉन टेलर को

हेम्पस्टीड
बुधवार, १७ नवम्बर १८१६

मेरे प्रिय टेलर,

मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि अब तैयार चीज़ों में से कोई नहीं प्रकाशित की जाय : पर इसके बजाय पहले से लिखी जाय, और मैं उत्कृष्ट बनाने की आशा करता हूँ। चूँकि अद्भुत ही सुसंगत काव्य की विश्वस्त गारंटी है, जिसके हेतु मैं कल्पना को बेलगाम करने और उसे अपने आपको सँभालने के लिये विवश हो रहा हूँ। मैं और स्वयं इस पर सहमत नहीं हो सकते। आश्चर्य मेरे लिये कोई आश्चर्य नहीं। पुरुष और स्त्रियों में मैं अधिक अपनाया अनुभव करता हूँ। 'ऐरिष्टों' की अपेक्षा 'चॉसर' पढ़ना अधिक पसंद करूँगा। थोड़ी सी नाटकीय दक्षता जो कुछ भी नाटक में दिखती है, कविता के लिये पर्याप्त होगी। मैं 'देवि एग्निस की संध्या' के वर्णों को कविता में सर्वत्र विकीर्णित करना चाहता हूँ, जिसमें चरित्र और भावना की आकृतियाँ खचित हो रही हों। ऐसी तीन चार कविताएँ, यदि प्रभु ने मुझे अवसर दिया तो, अगले छः सालों में लिखित होकर, एक विख्यात श्रेष्ठ काव्य की श्रेणी (Gradus and parnassuno altissimun) होंगी। मेरा आशय है कि वे मुझे कुछ उत्कृष्ट नाटक लिखने की—मेरी महानतम अभिलाषा की प्रेरणा देंगी, जब मैं बहुत महत्वाकांक्षा से अभिभूत हूँगा तब। मुझे कहते हुए दुःख है कि यह होना विरक्त है। विषय जिस पर कि हम एक बार बातचीत कर चुके हैं, संभावनापूर्ण प्रतीत होता है—लीष्टर के अर्ल का इतिहास। इस प्रभात में 'होलिंग शेड' का 'ऐलिज़ाबेथ' पढ़ रहा हूँ। तुम्हारे पास भी कुछ पहले मेरे विषय को चित्रित करने वाली कुछ पुस्तकें थीं, तुमने मुझे देने का भी वायदा किया था। यदि उनमें से कुछ, या अन्य जो मेरे लिये उपयोगी हो, और तुम्हारे पल्ले पड़ सकें, तो मैं जानता हूँ कि तुम उन्हें भेजकर मेरे अल्पोत्साहित चिन्तक स्वरूप को प्रोत्साहित करोगे, या मुझे यह पता देकर कि कब गाड़ीवान मेरे संदूक के साथ मुझे पुकार लगायेगा। इस होने वाली कविता की रचना में मैं स्वार्थपूर्वक अपने आपको लगाकर प्रयत्न करूँगा।

तुम्हारा भवन्निष्ठ मित्र
जॉन कीट्स

१२

चार्ल्स ब्राउन को

विंचेस्टर

बृहस्पतिवार, २३ सितम्बर, १८१६।

अब मैं बिलकुल अपनी बात कहूँगा। अब उचित समय है कि मैं कुछ करने में अपने आपको जुटाऊँ, केवल आशाओं पर अधिक नहीं रह सकता। मैंने अभी तक अपने आपको नहीं थकाया। मैं एक आलस्य मस्तिष्क वाली, अशोभन जीवन-प्रणाली पर, लगभग औरों पर निर्भर करने की स्थिति में जी रहा हूँ। अपने जीवन के किसी भी काल में मैंने किसी आत्म-संकल्प से काम नहीं लिया, सिवाय इस जड़ी-बूटी के पेशे के त्याग करने के। इसके लिए पछतावा नहीं। रेनाल्ड्स को देखो, अगर वकालत में न होता, तो अपनी योग्यताओं से अपने खाने-कमाने के लिए कुछ-न-कुछ कमा ही लेता। मेरा पेशा तो बिल्कुल साहित्यिक है। मैं भी ऐसा ही करूँगा। मैं लिखूँगा, समस्या के उदार पहलू पर, चाहे जो मुझे अदा करे। मैं अभी जानता ही नहीं कि परिश्रमी होना क्या है! मेरा आशय नगर में सस्ते निवास में रहने, और आरम्भ के लिए किसी पत्र के थ्येट्रीकल में जगह पाने के लिए प्रयत्न करने का है। जब मैं इच्छानुसार कविताएँ रचने का अवसर पा सकता हूँ, तो अवश्य करूँगा। इसका उत्तर पाने के लिए प्रतीक्षित रहूँगा। मेरे प्रश्न पर ग़ौर करो। मुझे विश्वास है कि मैं ठीक हूँ। मान लो कि ट्रेजिडी सफल हो—कोई हानि नहीं होगी। और यहाँ मुझे, हमारी अपना मैत्री पर, और मेरे प्रति तुम्हारे किये गए अच्छे कार्यों पर एक, दो टिप्पणी करने का अवसर मिलेगा। इन मामलों में मुझे कुछ स्वाभाविक संकोच होता है, हमारे बीच में भावनाओं को बेहतर मान लेना, इसके बारे में बोलने की अपेक्षा। पर, क्या खूब! कितने थोड़े दिनों से तुम मुझे जानते हो! मुझे अहसास होता है कि इस प्रकार की बातों की पुनरावृत्ति करने का मेरा कर्त्तव्य है चाहे तुम्हारे लिए कितनी ही अनिच्छा का काम क्यों न हो! मेरी जानकारी में तुम किसी भी आदमी की अपेक्षा दूसरों के लिए जीते आए हो। यह मेरे लिए क्लेशजनक है, क्योंकि यह तुम्हें जीवन के आरम्भिक चरण में ही उन आनन्दों से वंचित कर रहा है, जिनका संचयन करना तुम्हारा कर्त्तव्य था। चूँकि मैं यह सामान्य दशा को लेकर कह रहा हूँ, तुम्हें यह अज्ञान की सी बात लगेगी। तुम शायद इसे नहीं समझ पाओगे! पर यदि तुम बार-बार सोचो, दिन-दिन पिछली साल के किसी भी मास की, तुम समझोगे, कुल मिला-कर क्या आशय है, तो भी यह विषय है, जिस पर मैं स्वयं अपने आपको व्यंजित

नहीं कर सकता। अक्सर इस पर चिन्तन करता हूँ; और विश्वास रखो कि मेरे चिन्तन का अन्त सदैव तुम्हारी प्रसन्नता के लिए आतुरता रहती है। यह आतुरता, उस योजना की, जिसको कि मैं क्रियान्वित करना चाहता हूँ, सबसे छोटी प्रेरणाओं में से एक है। मैं सब कठिनाइयों में तुम्हारी ओर देखने की आदत वाला हो गया था। यही आदत आलस्य और कठिनाइयों को जन्म देती है। तुम देखोगे कि यह मेरे करने का कर्त्तव्य है, इसकी गर्दन तोड़ना! मैं अपने निर्वाह के लिए कुछ नहीं करता—कोई मेहनत नहीं करता। दूसरे वर्ष के अन्त में तुम मुझे शाबाशी दोगे, कविताओं के लिए नहीं, पर आचरण के लिए। अगले जाड़े अगर तुम हैम्पस्टीड में रहो, तो मैं चाहता हूँ··· और यह मेरे बस की बात नहीं। उसी कारण अच्छा था कि मैं वहाँ न रहा। जबकि मेरे पास कुछ नक़द शेष है, मेरे लिए चुपचाप जमा लेना और जैसे अन्य करते हैं, वैसे कार्य करना उचित होगा। मैं हैज़लिट से प्रार्थना करूँगा, जिसे किसी भी अन्य के समान बाज़ार की जानकारी है कि जितनी जल्द हो सके, मेरे लिए कुछ पौ० ला सके। मैं अपने बीच में बाधा के रूप में, अपने अभिमान को चोट न लगने दूँगा। फुस-फुस तो लोग करते ही हैं, मैं इसे नहीं सुनता। अगर मैं 'ऐडिनबरा' में एक लेख दे सकता हूँ, तो दूँगा। किसी को नाजुक नहीं बनना चाहिए। एक क्षण से अधिक तुम्हें भी यह बात नहीं अखरनी चाहिए। मैं आशा के साथ उस दिन की प्रतीक्षा करता हूँ कि हम एक दिन स्वतन्त्र, निर्बन्ध, अनातुर होकर साथ-साथ समय बिताएँगे। तुमसे उत्तर पाने के लिए व्यग्र रहूँगा। अगर पत्र कुछ दिनों में नहीं मिला, तो ग़लत स्थान पर पहुँचने की सम्भावना हो सकती है। मैं सीधा नगर जाने से पहले (बेडाम्पटन को ?) आ जाऊँगा; मुझे विश्वास है कि इससे तुम सहमत होगे कि जब तक नक़द रुपया रहे, यह करते रहना अच्छा है। अक्टूबर के मध्य में तुमसे लंदन मिलने की आशा करता हूँ। तब हम थ्येटरों के लिए लिखेंगे। अगर······

१३

फेनो ब्राउन को

शैन्कलिन

वाइट का द्वीप, बृहस्पतिवार, १ जुलाई, १८१६

मेरी प्रियतमे !

मुझे प्रसन्नता है कि मैं तुम्हें बृहस्पति की रात का लिखा पत्र भेजने का अवसर नहीं पा सका—यह बहुत कुछ रुसो के हेलोइज में से लगता है। इस प्रातः मैं

अधिक प्रबुद्ध हूँ। यह प्रभात ही मेरे लिए उस लड़की को जिसे मैं सबसे अधिक प्यार करता हूँ, पत्र लिखने का सबसे उपयुक्त अवसर है। क्योंकि रात को, जब एकाकी दिवस मुँद गया है, और निभृत, स्तब्ध, अगीतिमय कक्ष मेरे स्वागत के लिए समाधि के सदृश प्रतीक्षित होता है, तब विश्वास करो कि मेरे आवेश की दिशा सम्पूर्णत: बदल जाती है, तब मैं तुम्हें अपनी उन असम्बन्ध रचनाओं (Rhaspsodies) को नहीं दिखा पाता, (जिनको कभी मैं व्यंजित कर पाना असंभव मानता था, और कभी जिन पर प्रायः हँसा हूँ) इस भय से कि तुम कहीं मुझे अति दुःखी या कुछ उन्मादी-सा ख्याल न करो। मैं इस समय एक बड़े गवाक्ष कुटीर के वातायन से, सुन्दर पर्वती प्रदेश को समुद्र के दृश्य के साथ निहार रहा हूँ। सुहावनी भोर है। पता नहीं मेरा उत्साह कितना लचीला हो सकता था, यहाँ रहने से, साँस लेने से, और इस रमणीक पुलिन पर हरिण-सा स्वच्छन्द भटकने से कितना आनन्दित हो सकता था यदि तुम्हारी याद यहाँ मुझ पर इस तरह न छा जाती। अनेक दिवसों तक मैंने हर्ष को अमिश्रित नहीं पाया : किसी न किसी की रुग्णता या मृत्यु मेरी घड़ियों को दूषित करती रही है—और अब जब ऐसी कोई बाधा मुझे विवश नहीं करती, तुम्हें अवश्य स्वीकारना चाहिए कि अन्य प्रकार के दर्द द्वारा मुझे भरमाना बड़ा कठिन है। मेरी प्यारी, जरा पूछो तो अपने से कि क्या तुम्हारी यह निठुरता नहीं कि मुझे यों उलझाओ, मेरी स्वच्छन्दता को यों समाप्त करो। अगर अपने पत्र में इसे स्वीकार करो, तो मुझे तुरन्त पत्र डालो और इसमें मुझे धीर बँधाने के लिए सब कुछ करो—पोस्त के घूँट की तरह मुझे मदमत्त करने के लिए इसे मनोरम बनाओ—कोमलतम शब्द लिखो, उन्हें चूम लो, ताकि मैं कम-से-कम अपने अधर वहाँ छुआ सकूँ, जहाँ तुम्हारे रहे हैं। तुम जैसी सुघड़ सूरत के प्रति अपनी भक्ति की अभिव्यक्ति कैसे करूँ, मैं स्वयं नहीं जानता ? मैं चाहता हूँ उज्ज्वल से उज्ज्वलतर और शुभ्र-से-शुभ्रतर शब्द। लगभग मैं चाहता हूँ, होते काश कहीं हम तितली और रहते सिर्फ तीन दिवस तक जीवित—तीन ऐसे दिनों में तुम्हारे साथ इतना आनन्द भर लेता जितना कि पचास वर्षों में न समा पाता। पर कितना ही अपने को स्वार्थी क्यों न समझूँ, मुझे विश्वास है कि कभी स्वार्थ से कार्य नहीं कर सकता, जैसा कि एक-दो दिन पूर्व हैम्पस्टीड छोड़ने से पहले मैंने तुमसे कहा था, मैं लंदन को कभी नहीं लौटूँगा, अगर मेरा भाग्य ही 'पाम' या कम-से-कम 'कोर्टयार्ड' पर न पड़े। यद्यपि मैं अपने सुख को तुममें केन्द्रित कर सकता था, पर तुम्हारे हृदय को इतनी पूर्णता से जकड़ने की आशा नहीं रख सकता—वास्तव में अगर मैं यह जानता कि तुम भी मुझे इस क्षण इतना प्यार करती हो जितना कि मैं, तो मैं नहीं सोचता कि मैं एक आलिंगन के उल्लास के लिए कब तुमसे फिर मिलने के इरादे पर नियन्त्रण रख पाता। पर

नहीं—मैं आशा और संयोग पर जिऊँगा। निकृष्टतम दशा जो भी कुछ हो, तो भी तुमसे प्यार करूँगा—पर अन्य के लिए मेरे लिए अन्दर कितनी घृणा होगी! अन्य दिवस कुछ पंक्तियाँ मैंने पढ़ी थीं, जो मेरे कानों में निरन्तर बज रही हैं—

उन आँखों को देखना, जिन्हें कि अपनी से अधिक मूल्यवान समझता हूँ,
अन्य पर कृपा बरसाते—
और उन मधुर अधरों को (अमर सुधा प्रदान करते)
मुझे छोड़, अन्य द्वारा स्पर्शित होते देखकर,
सोच, सोच, फ्रांसेस्का, कैसा होता अभिशाप
व्यंजना से बिलकुल परे!

शीघ्र ही लिखो। इस स्थान से डाक नहीं जाती, इसलिए पता लिखो—डाकघर, न्यूपोर्ट, आइल ऑव वाइट। मुझे मालूम है कि रात से पहले मैं अपने आपको तुम्हें ऐसा नीरस पत्र लिखने के लिए कोसूँगा। तो भी यह अच्छा है जितना मेरे ज्ञान द्वारा संभव है, इसे करूँ। अधिक-से-अधिक कृपालु होने की, दूरी जितनी तुम्हें आज्ञा दे, कोशिश करो—

तुम्हारा
जॉ० कीट्स

अपनी माँ को मेरा प्रणाम, मार्गरेट को प्रणाम, तुम्हारे प्यारे भाई को मधुस्मरण।

१४

फेनी ब्राउनं को

२५, कॉलिज स्ट्रीट
१३ अगस्त, १८१९

मेरी प्रियतमे,

इस क्षण मैं कुछ कविताओं को सुलेख में लिखने बैठा हूँ। संतोष के साथ जरा भी प्रगति नहीं हो रही। तुम्हें एक या दो पंक्ति अवश्य लिखूँगा और देखूँगा कि इतने अल्पकाल में सदा के लिये अपने मस्तिष्क से निकाल देने से मुझे सहायता मिलती है या नहीं। अपने प्राणों में मैं और किसी की नहीं सोच पाता। समय बीत गया, जब

मेरे अन्दर शक्ति थी, अपने जीवन के अनुज्ज्वल प्रभात के विरुद्ध तुम्हें परामर्श देने की, तुम्हें चेताने की। मेरे प्यार ने मुझे स्वार्थी बना दिया है। मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता। मैं सबको विस्मृत कर सकता हूँ, पर सिर्फ तुम्हें दुबारा देखकर—यहीं पर मेरा जीवन रुकता-सा लगता है—मैं आगे नहीं देख पाता। तुमने मुझे निमग्न कर लिया है। इस सम्प्रत घड़ी में मेरी देह में सनसनी उठ रही है, मानो मैं घुला जा रहा हूँ—बिना तुम्हें शीघ्र देखने की आशा लिये, मैं अत्यन्त दयनीय हूँगा। तुमसे मैं अपने दूर हो जाने से भयभीत हूँगा। मेरी मधुर फेनी! क्या तुम्हारा हृदय न बदलेगा? मेरी प्रिये, क्या नहीं? मेरे प्रणय की कोई सीमा नहीं? तुम्हारा पत्र अभी मिला—तुमसे दूर रहकर मैं सुखी नहीं रह सकता। यह मोतियों के जलपोत से अधिक बेशक़ीमती है। हँसी में भी मुझे मत धमकाओ। मुझे यह बात आश्चर्यान्वित करती रही है कि मनुष्य धर्म पर कैसे बलिदान हो जाता है? इस पर मैं सिहर उठा हूँ। अब बिल्कुल नहीं सिहरता—अपने धर्म के लिये—प्रेम मेरा धर्म है—मैं भी ऐसे ही शहीद हो सकता था। तुम्हारे लिये प्राण दे सकता था। मेरा पंथ है प्यार, और तुम हो इसकी अकेली वासिनि! तुमने मुझे अदम्य शक्ति से मर्दित किया है। तो भी जब तक मैं तुम्हें न देखता, मैं प्रतिरोध कर सकता था: और जब से मैंने तुम्हें देखा है, अपने प्यार के तर्कों के विरुद्ध तर्क करने का प्रयत्न किया है: अब वह और नहीं कर सकता—दर्द बहुत भारी होगा—मेरा प्यार स्वार्थी है। तुम्हारे बिना साँस भी नहीं ले सकता।

सदैव तुम्हारा
कीट्स

१५

फेनी ब्राउन को

फरवरी, १८२०

मेरी प्रिय फेनी,

अपनी माताजी को यह ख्याल मत आने दो कि तुमने रात लिखकर मुझे पीड़ित किया। कारण कुछ भी रहा हो, पर तुम्हारा विगत रात्रि का लिखा पत्र पिछलों पत्रों की अपेक्षा संग्रहणीय नहीं था। मुझे प्रसन्नता है कि तुम मुझे अब भी 'प्यार' कहकर पुकारती हो। तुम्हें प्रसन्न और उच्च उत्साहित देखकर मुझे बड़ी सांत्वना मिलती

है—अब भी मुझे विश्वास करने दो कि तुम अभी आधी भी प्रसन्न नहीं हो, जितना कि मेरे आरोग्य से तुम होतीं। मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं धैर्यहीन हो गया हूँ, और अपनी वास्तविक स्थिति से और बुरा सोचने लगता हूँ। यदि ऐसा है तो तुम मुझमें रमो, और उस कोमलता से जिसको कि तुमने अनेक पत्रों में अभिव्यक्त किया है, मुझे पोषित करो। मेरे मधुर जीव! जब मैं पीछे की ओर मुड़कर उन दर्द और पीड़ाओं की ओर देखता हूँ, जो मैंने तुम्हारे लिये 'वाइट' के द्वीप से जाने के दिन से सही हैं, हर्षातिरेकों पर, जिनमें कि कुछ दिन बिताए हैं, और व्यथाओं पर, जिनको झेला है, मैं उस सौन्दर्य पर और भी विस्मय करता हूँ, जिसने मुझे इतनी उत्कटता के साथ सम्मोहित रक्खा है। तुम्हें यह भेजकर मैं सामने के बरामदे में आ जाऊँगा, तुम्हें बगीचे में एक निमिष निहारने के लिये। बीमारी किस प्रकार तुममें और मुझमें दीवार बनकर खड़ी है। और अच्छा भी होता—मुझे अपने आपको यथासम्भव अच्छा दार्शनिक बनाना चाहिये। अब मुझे चिन्तातुर रातें बिताने का अवसर मिला, और विचारों ने मुझे घेर लिया। "यदि मैं मर गया," मैंने अपने आपसे कहा, "तो अपने पीछे मैंने कोई अमर रचना नहीं छोड़ी, कुछ भी ऐसा नहीं छोड़ा, जिस पर मेरे दोस्त मेरी स्मृति पर गर्व कर सकें, पर मैंने सकल वस्तुओं में सौन्दर्य के सिद्धान्त का विश्वास किया है, और अगर मुझे समय मिलता, तो अपने आपको स्मृत बना देता।" ऐसे विचार बड़े धुँधलाते आते थे, जब मैं स्वस्थ था, और हर स्पन्दन तुम्हारे लिये होता था—अब तुम इसे बाँट लो—(क्या यह कह सकता हूँ?) यह "भव्य मानसों की अंतिम पंगुता।" मेरा सब प्रतिबिम्ब।

प्रभु तुम्हें सुखी रखे—
तुम्हारा
कीट्स

१६

फेनी ब्राउन को

मार्च, १८२०

मेरी प्रिये फेनी, गत रात अच्छी तरह सोया, और इसके लिये यह प्रभात भी बुरा नहीं लग रहा। दिन-दिन यदि मैं धोखा नहीं खा रहा तो, मैं अपने सीने का अधिकाधिक असंयत उपयोग कर रहा हूँ। धावक लक्ष्य के जितना निकट आता

चलता है, उतनी ह। उसकी आतुरता बढ़ती जाती है, ऐसा ही अधैर्य स्वास्थ्य की सीमाओं के पास पहुँचकर मेरा बढ़ता जाता है। शायद तुम्हारे कारण मैंने अपने रोग को आवश्यकता से अधिक आँक लिया है। तुम्हारी बाहुओं के बजाय, भूमि पर गिरने की कल्पना कितनी भयानक थी ! अन्तर है विस्मयकारी प्रणय का। अन्त में मौत तो आयेगी ही : मनुष्य तो मरेगा ही; जैसा कि शेलो कहता है, पर पूर्व कि यही मेरी नियति हो, मैं तुम्हारे दिये सुख से अधिक पाने के लिए व्यर्थ प्रयत्न करूँगा, जितना तुम्हारे जैसा मधु जीव दे सकता हो। अपने सामने मुझे वर्षों का दूसरा संयोग पा लेने दो, और मैं बिना स्मृत हुए नहीं मरूँगा। प्रिये, अपनी सँभाल करो, ताकि अगले ग्रीष्म हम दोनों अच्छे रहें। मैं अपने लिखने से बिल्कुल नहीं थकाता, यत्र-तत्र दो-एक पंक्तियाँ लिख लेता हूँ, जो ऐसा कार्य है जिससे दृढ़ काया और मानस को परेशानी हो उठती, पर जो मेरे लिये अनुकूल है, क्योंकि मैं इससे अधिक नहीं कर सकता।

तुम्हारा स्नेही
जे. के.

१७

फेनी ब्राउन को

मार्च, १८२०

मधुरतम फेनी,

तुम डर जाती हो कभी-कभी कि मैं तुम्हें इतना प्यार नहीं करता, जितना तुम चाहती हो ? मेरी प्रिय लड़की, मैं तुम्हें सदा-सदा प्यार करता हूँ, और बिना छिपाव के। जितना अधिक तुम्हें समझा, उतना ही अधिक तुम्हें प्यार करता हूँ। हर तरह से---मेरी ईर्ष्याएँ भी प्यार की पीड़ाओं के कारण रहीं हैं—सबसे उत्तप्त दौरे में तो मैं तुम्हारे लिये मर ही जाता। मैंने तुम्हें बहुत पीड़ित किया है। पर प्यार के लिये ही। मेरा क्या वश ? तुम सदैव नवीना हो ! तुम्हारा अन्तिम चुम्बन सबसे मीठा था, और अन्तिम मुस्कान सबसे उज्ज्वल ! अन्तिम चाल में सबसे अधिक गरिमा थी। कल तुम जब मेरी खिड़की से घर की ओर गुजरीं, तो मेरे अन्दर तुम्हारे प्रति ऐसा प्रशंसा-भाव भर गया, मानो तुम्हें पहली ही बार देखा हो। तुमने एक बार शिकवा किया था कि मैं तुम्हें केवल रूप के लिये प्यार करता हूँ। क्या उसे

छोड़कर तुम्हारे पास और कुछ प्यार करने के लिये नहीं ? क्या मैं उस हृदय को नहीं देख पाता, जिसमें मुझे लेकर अपने आपको बंदी करने के लिये प्राकृतिक पर लगे हुए हैं ? कोई भी दुराशा मुझे निमिष भर भी तुम्हारे विचारों को मुझसे अलग नहीं कर सकी। यह जितने आनन्द का विषय होना चाहिये, उतने ही विषाद का—पर मैं इसकी बात नहीं कहूँगा। अगर तुम मुझे प्यार भी नहीं करतीं, तो भी बिना पूरी भक्ति मुझे चैन न पड़ता। तब यह जानकर कि तुम मुझे प्यार करती हो, कितनी गहराई से न इसका अनुभव करता। मेरा मस्तिष्क रहा है बड़ा असंतुष्ट और बेचैन, जिसे कभी अपनी छोटी-सी काया में बद्ध कर दिया गया था। मैंने जीवन में कभी किसी पर निर्विघ्न मानसिक शान्ति का अनुभव नहीं किया, सिर्फ तुमको लेकर। जब तुम कमरे में हो, मेरी भावना कभी खिड़की के बाहर नहीं उड़ती। तुम मेरी सम्पूर्ण इन्द्रियों को एकाग्र कर लेती हो। अपने पिछले पत्र में हमारे प्रणय के प्रति दिखाई गई चिन्तातुरता मेरे लिये असीम आनन्ददायिनी है। तो भी तुम्हें ऐसी परि-कल्पनाओं से अब और पीड़ित नहीं होना चाहिये। और न मैं ही और विश्वास करूँगा कि मेरे विरुद्ध तुम तनिक-सी अप्रसन्नता रखती हो। ब्राउन बाहर गया है, पर श्रीमती वायली यहीं हैं--जब वह चली जायेंगी, मैं तुम्हारे लिये जागरित रहूँगा। माताजी को स्मरण

तुम्हारा स्नेही
जे. कीटस

१८

फेनी ब्राउन को

फरवरी, १८२०

मेरी प्रियतमे फेनी,

तुम्हारी मंगल-कामना की शक्ति इतने दुर्बल स्वभाव की नहीं है कि चौबीस घंटे के चक्र से निकल जाये—यह एक पवित्र 'चैलिस' की तरह है जो एक बार अर्पित हो गई, सो सदैव के लिये हो गई। मैं तुम्हारा नाम और अपना चूमूँगा जहाँ पर तुम्हारे अधर रहे हैं—अधर ! मुझ जैसा विवशबंदी क्यों ऐसी बातें करता है ? धन्य प्रभु, यद्यपि मैं उन्हें भूमण्डल में सर्वाधिक आनंददायक समझता हूँ, तदपि, उनसे स्वतंत्र तुम्हारे स्नेह की निश्चितता में मुझे सतोष है। मैं 'टॉम मूर' की करुण शैली में 'स्मृति'

के ऊपर एक गीत लिख सकता, अगर इससे कुछ राहत मिलती ! नहीं, इससे नहीं। मैं ऐसा ही दुराग्रही हूँगा जैसी रोबिन चिड़िया। मैं पिंजड़े में नहीं गाऊँगा। स्वास्थ्य ही मेरा अप्रत्याशित स्वर्ग है, और मेरी 'अप्सरा' हो तुम। यह शब्द मेरा विश्वास है कि एक वचन है, और बहुवचन भी—यदि केवल बहुवचन हो, तो सोच न करो—तुम उन जैसी हज़ार हो—

तुम्हारा चिर-प्रेमी
जॉन कीट्स

आज न आओ तो अच्छा है।

१९

फेनी ब्राउन को

फरवरी, १८२०

मेरी प्रिय,

अपने पिछले पत्र में तुमने अपने बीमार होने की बात लिखी थी : क्या ठीक हो गई ? उस पत्र से मुझे अपार आनंद हुआ। मैं पहले की अपेक्षा स्वस्थ हूँ। डाक्टर कहते हैं कि मेरे साथ कोई खास बात नहीं, पर मैं तब तक विश्वास नहीं कर सकता, जब तक कि मेरे सीने का भार और संकुचन न दूर हो जाय, मैं तुमसे लम्बे वियोग की बात कहकर दुःखित या व्यस्त नहीं करना चाहूँगा। प्रभु ही जानता है कि तुम्हारे साथ सुख का आस्वादन मेरे भाग्य में है या नहीं : पर मैं इतना ही जान पाता हूँ कि तुमसे अब तक प्यार करने से जो सुख मिला है, उसे मैं कोई तुच्छ नहीं समझता—यदि ऐसा ही है कि आगे न मिले, तो इसके प्रति अकृतज्ञ नहीं हूँगा—अगर मुझे ठीक होना है तो ठीक होने के दिन से मैं तुम्हारे पास हूँगा, जहाँ मुझे कोई अलग नहीं कर सकता। अगर ठीक हूँगा, तो उसके होने की तुम्हीं एक मात्र औषधि हो। शायद, आह निश्चय ही, मैं मानस की अत्यन्त नैराश्य अवस्था में लिख रहा हूँ—अपनी माताजी से आने के लिये कहो, मुझे देख जायें—वह मेरा तुम्हें ज़्यादा सही वर्णन देंगी।

तुम्हारा चिर स्नेही
जॉन कीट्स

२०

फेनी ब्राउन को

५ जुलाई, १८२०
बुधवार, प्रभात

मेरी प्रियतमे !

मैं इस भोर टहलने निकला हूँ, पुस्तक हाथ में है, पर जैसा कि होता है, मानस किसी और चीज में व्यस्त नहीं था, सिवाय तुम्हारे, यह मैं, काश !सहज भाव से कह पाता ! दिन रात व्यथा में मैं तड़प रहा हूँ । वे मेरी इटली जाने की बातें करते हैं । यह निश्चित है कि यदि मुझे तुमसे इतनी दूर अलग रहना पड़ा, तो मैं कभी ठीक नहीं हो सकता, तो भी तुम्हारे प्रति इस सब भक्ति के होते हुए भी, अब अपने को तुम्हारे विश्वास का अनुगत नहीं कर सकता । तुमसे दीर्घ विरह से सम्बन्धित विगत अनुभव मेरे मन में ऐसी पीड़ाएँ भरते हैं, जिनको व्यक्त करना कठिन है । जब तुम्हारी माँ आयेंगी, मैं बहुत दक्ष और सजग रहूँगा, और उनसे पूछूँगा कि क्या तुम श्रीमती डिल्के के यहाँ गईं थीं, क्योंकि वे मुझे आराम पहुँचाने के लिये 'नहीं' कह दें । मैं नितांत मृत्योन्मुख जर्जर हो चुका हूँ, जो कि मेरा एकान्त पथ प्रतीत होता है । जो हो चुका, उसे भूल नहीं सकता । क्या ? सांसारिक मनुष्य के लिये तो कुछ नहीं, पर मेरे लिये तो मृत्यु है । मैं इससे शीघ्र से शीघ्र निष्कृति पाऊँगा । जब तुम ब्राउन के साथ प्रेम-खिलवाड़ करतीं थीं, जिसे कि छोड़ सकतीं थीं, तो क्या तुमने अपने हृदय में अंशतः भी उस दर्द की तड़पन को महसूस किया था, जितना कि मैंने । ब्राउन बड़ा अच्छा आदमी है—उसे यह पता नहीं था कि वह तिल-तिलकर मुझे मार रहा था । मैं अब भी उनमें से प्रत्येक घड़ी का अपने पार्श्व में अनुभव करता हूँ; और उसी कारणवश, यद्यपि उसने मेरे साथ अनेक उपकार किये हैं, यद्यपि मेरे प्रति उसमें स्नेह और मैत्री का भाव है, यद्यपि इस क्षण, यदि उसकी सहायता न पाता, तो मेरे पास एक कौड़ी भी न होती, तो भी, मैं उससे, जब तक हम बूढ़े न हो जायें, यदि हमें होना है, न बोलूँगा ही, न उसकी शक्ल देखूँगा । मैं अपने हृदय को फुटबॉल बनाये जाने का विरोध करूँगा । तुम उसे पागलपन कहोगी । मैंने सुना है कि तुम कहती हो कि कुछ बरसों की प्रतीक्षा करना अप्रीतिकर नहीं था—तुम्हारे पास मनोरंजन है—तुम्हारा ध्यान कहीं है—तुमने मेरे समान एक विचार को नहीं पकड़ा है ? यह कर भी कैसे सकती हो ? तुम मेरे लिये अदम्य कामना की पात्र हो । तुम्हारे बिना इस कमरे की वायु अपवित्र है । मैं तुम्हारे लिये वही नहीं हूँ—नहीं-तुम प्रतीक्षा कर सकती हो—तुम्हारे पास हजारों काम हैं—तुम मेरे बिना सुखी रह सकती हो । कोई पार्टी, कोई काम,

दिन काटने को काफी है। तुमने यह मास कैसे व्यतीत किया? मुस्कराने को कौन है तुम्हारे पास? यह सब मुझे बर्बर बना सकता है। तुम नहीं, वह अनुभव कर सकतीं, जो मैं करता हूँ। तुम क्या जानो कि प्यार करना क्या होता है! एक दिन तुम जानोगी—तुम्हारा समय अभी नहीं आया। पूछो अपने से कीट्स ने कितने अभागे घंटे एकांत में तुम्हारे छीने हैं। मेरी बात, मैं तो पूरे काल से शहीद रहा हूँ, और इसी कारण कह भी रहा हूँ। यंत्रणा ने इस स्वीकृति के लिये विवश कर दिया है। मैं तुमको उस ईशू के शोणित की, जिसमें कि तुम आस्था रखती हो, सौगन्ध देता हूँ। मुझे कुछ मत लिखो, अगर तुमने इस महीने कुछ ऐसा किया हो, जिसे देखकर मुझे पीड़ा हो सकती थी। तुम चाहो, बदल जाओ—अगर न बदली हो तो—यदि तुम अब भी नृत्य और अन्य समाजों में जाती हो, जैसा कि मैंने तुम्हें देखा है, तो मेरी जीवित रहने की ख्वाहिश नहीं—यदि तुमने ऐसा किया है, तो मेरी कामना है कि यह आगामी रात ही मेरी अंतिम रात हो। मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता। तुम्हारे ही बिना नहीं, प्रत्युत, तुम पवित्र के बिना, तुम गुणशीला के बिना। सूरज उगता है, और डूबता है, दिन मुँद जाता है, और तुम भी अपने इरादे के झुकाव का कुछ सीमा तक अनुसरण करती हो। तुम्हें कोई अनुमान नहीं हो सकता कि दुःखद अनुभूतियों का कितना बड़ा भार दिन भर में मेरे अंतर से होकर गुजर गया है—गम्भीर बनो! प्रेम कौतुक नहीं है—और पुनः लिखना मत, अगर तुम स्फटिकवत स्वच्छ आत्मा से न लिख सकती हो तो। मैं शीघ्रतर मर जाऊँगा तुम्हारे अभाव में, बजाय होने के

चिरकाल तक तुम्हारा
जॉ० कीट्स

२१

शेली का कीट्स को

पीसा, जुलाई २७, १८२०

मेरे प्रिय कीट्स,

तुम्हारे साथ होने वाली घटना मैंने बड़े दर्द के साथ सुनी है, और श्री गिसबोर्न जिन्होंने इस बात को बताया, और लिखते हैं कि तुम्हारा क्षयग्रस्त रहना जारी है। यह क्षय का रोग ऐसा है जिसको तुम जैसे लोगों से, जो इतनी सुन्दर कविताएँ लिखते हैं, प्यार है, और अंग्रेजी शरद के साथ मिलकर यह अपने चुनाव कार्य में

सफल हा जाता है; मैं नहीं सोचता कि तरुण और सुहृद कवि इसके स्वाद को तृप्त करने के लिये विवश हैं : संगीत देवियों के साथ इस बारे में तो उन्होंने ऐसा कोई ठेका नहीं किया। पर गम्भीरता से। क्योंकि मैं जिसके बारे में सर्वाधिक चिंतित हूँ, उसी पर मज़ाक कर रहा हूँ, मैं सोचता हूँ कि इतनी बड़ी दुर्घटना के पश्चात् इटली में शरद बिताना तुम्हारे लिये अच्छा भी रहेगा। और (अगर तुम मेरी तरह आवश्यक समझो) जब तक पीसा या इसके पड़ौस को अपने लिये रुचिकर समझो, तो श्रीमती शेली मेरे साथ तुमसे प्रार्थना करने में शामिल हैं कि तुम हमारे साथ रहो—तुम लैघोर्न तक समुद्र से आ जाओ, (फ्रांस देखने क़ाबिल नहीं है, और सामुद्रिक वायु फेफड़ों के लिये अच्छी है) जो हमसे कुछ ही मील दूरी पर है। तुम्हें हर तरह इटली को देखना चाहिये, और तुम्हारा स्वास्थ्य, जिसे मैं एक उद्देश्य रूप में रखता हूँ, तुम्हारे लिये एक बहाना हो सकता है—मैं मूर्ति, और चित्र और खंडहरों के विषय में किसी प्रकार का बतलाना छोड़ता हूँ और सबसे अधिक छोड़ता हूँ कहना—पर्वत, झरने, और खेतों और आकाश के वर्ण तथा स्वयं आकाश के बारे में—

अभी मैंने तुम्हारी एण्डिमियन फिर-फिर पढ़ी, इसके अंदर निहित कविता के कोष के नये ज्ञान के साथ; कोष विकीर्णित है, यद्यपि अस्पष्ट अपव्ययता के साथ। यह सामान्यत: लोगों को सहन नहीं होगा, और यही कारण है कि अपेक्षाकृत कम प्रतियाँ बिकी हैं। मैं यह अनुभव करने में विवश हूँ कि तुम महान रचना करने में समर्थ हो, वही तुम करते हो, प्रत्युत, करोगे।

मैं ऑलीवर से तुम्हें अपनी पुस्तकों की प्रतियाँ भेजने को कह देता हूँ—'प्रामेथ्यूज़ अनबाउण्ड' की प्रति तुमको लगभग उसी समय मिलेगी, जबकि यह पत्र। 'चिन्ची' आशा है, पहले मिल गई है—यह विभिन्न शैली में अध्ययनशीलता से रची गई थी "शिव से कितनी नीचे ! पर महान से बहुत ऊपर !" कविता में मैंने पद्धति और कृत्रिमता (Mannerism) को दूर करने का प्रयत्न किया है : मेरी आकांक्षा है कि जो मुझ से प्रतिभा में अधिक ऊँचे हैं, वे इसी योजना को आगे बढ़ायेंगे—

तुम चाहे इंग्लैण्ड में रहो या इटली में यात्रा करो—विश्वास करो कि तुम्हारे स्वास्थ्य, सुख और सफलता के लिये मेरी हार्दिक चिन्तातुर कामनाएँ, तुम जहाँ कहीं हो, चाहे कुछ करते हैं, साथ हैं और मैं हूँ।

तुम्हारा विश्वासी,
पी० बी० शेली

२२

पर्सी बिशी शेली को

हैम्पस्टीड, अगस्त १६, १८२०

मेरे प्रिय शेली,

मैं बड़ा कृतज्ञ हूँ कि तुमने, विदेश में रहते हुए भी, और अति मानसिक व्यस्तता के साथ, मुझे मेरे पास रखे पत्र की श्रांति में लिखा। यदि मैं तुम्हारे निमंत्रण का लाभ नहीं उठा रहा, तो इसमें बाधित होने का कारण परिस्थिति-विशेष है, जिसकी भविष्यवाणी हृदय से करने का इच्छुक हूँ। निस्संदेह इंग्लैण्ड का शरद मेरे जीवन की समाप्ति कर देगा, और वह भी रुक-रुककर ग्लानिमय ढंग से। अतएव, या तो मैं इटली की समुद्र-यात्रा करूँ, अथवा टुकड़ी की ओर अभियान करते सैनिक के सदृश यात्रा। आजकल मेरे स्नायु मेरे सबसे दुर्बल अंग हैं, तो भी उन्हें सांत्वना मिलती है मेरे इस विचार से, चाहे परिणाम कितना ही उग्र हो, पर अब किसी शय्या विशेष के चार पापों की घृणा को बटोरने के लिये आगे से किसी एक स्थान पर जमकर नहीं रहता। मुझे प्रसन्नता है कि तुम मेरी तुच्छ कविता में रुचि रखते हो—जिसे कि मैं अपनी इच्छा से स्वयं अनलिखा करना चाहूँगा, यदि संभव हो, उतनी ही चिन्ता के साथ, जितनी कि मैंने यशार्जन के लिये की है। तुमसे और हंट से भी 'चिची' की एक प्रति मिली। इसके एक भाग का मैं निर्णेता हो सकता हूँ; कविता, और नाटकीय प्रभाव का, जिसको कि आजकल अनेक आत्माएँ 'मेमन' स्वीकार करती हैं। एक आधुनिक रचना का उद्देश्य होना चाहिये, जो ईश्वर हो सकता है—एक कलाकार को मेमन की सेवा अवश्य करनी चाहिये—उसके अंदर 'आत्म-निग्रह', संभवतः स्वीयता अवश्य होनी चाहिये। मेरे इस सत्यनिष्ठ मंतव्य के लिये, मुझे विश्वास है कि क्षमा प्रदान करोगे कि तुम अपने औदार्य को घटा सकते हो, और अधिक कलाकार बन सकते हो, और अपने विषय की हर शहतीर को स्वर्ण-मंडित कर सकते हो। ऐसे नियंत्रण का विचार मात्र तुम्हारे ऊपर शीत कड़ियों-सा पड़ेगा, जो शायद कभी छः महीने भी तुम्हारे साथ-साथ पंख बंद कर नहीं बैठ सका। और क्या यह एण्डिमियन के लेखक के लिये ऐसी बात करना असाधारण नहीं है! जिसका मस्तिष्क बिखरी हुई ताश की गड्डी के समान था—मैं उठा लिया गया हूँ, और 'पिप' के लिये छाँट लिया गया हूँ। मेरी कल्पना है एक मठ और मैं हूँ इसका महंत—मेरे इस रूपक की तुम अपने लिये भी व्याख्या करो। मैं नित्य 'प्रॉमेथ्यूज' की आशा करता हूँ। इसके हित के लिये मेरी इच्छा अगर कारगर होती, तो तुम अभी इसे पाण्डुलिपि में ही रखते—अथवा द्वितीय अंक की ही समाप्ति कर रहे होते।

मझे हेम्पस्टीड-कुंज में तुम्हारा दिया गया परामर्श स्मरण है कि अपने प्रथम-रोग चिन्हों को मत छपाओ—मैं तुम्हारे ही हाथों पर परामर्श लौटा रहा हूँ। संकलन की अधिकांश कविताएँ जो तुम्हें भेज रहा हूँ, दो बरस पूर्व लिखी गई थीं, और लाभ की आशा के अतिरिक्त और किसी कारणवश कभी नहीं छपतीं, सो, तुम देखते हो कि अब तुम्हारा परामर्श लेने के लिये मैं कितना उत्सुक हूँ! मैं पुनः तुम्हारी कृपा के लिये तुम्हारे प्रति, श्रीमती शेली के लिये हार्दिक धन्यवाद और आदरभाव जोड़कर गहरी कृतज्ञभावना का प्रदर्शन करता हूँ।

तुम्हारे शीघ्र दर्शन की आशा में
अतिशय कृतज्ञ
जॉन कीटस

२३

जेम्स राइस को

वेन्टवर्थ प्लेस
सोमवार प्रभात, १६ फरवरी, १८२०

मेरे प्यारे राइस,

तुम्हारे कृपा-पत्र के उत्तर में कोई संतोषजनक पत्र न भेजने का औचित्य नहीं निभा पा रहा। मेरे स्वास्थ्य और उत्साह के लिये तुमने जो परामर्श दिया है, उसी का पालन होगा। तुम्हारे पुनः रुग्ण होने और उसके साथ हाइपौकोन्ड्राइक (वातोन्मोदक) लक्षणों के होने की बात सुनकर खेद हुआ। जैसा तुम कहते हो, शुभ की कामना करनी चाहिए। मैं वर्तमान के असद की अपेक्षा भावी सद को ही निहारने के तुम्हारे उदाहरण का अनुगामी हूँगा। लम्बी बीमारी से मैं तुम्हारे समान इतना जीर्ण नहीं हुआ, अतः भरमाती भावनाओं और विकृत विचारों के सम्बंध में जिनकी कि तुम चर्चा करते हो, तुम्हारी ही भूमि पर तुम्हें उत्तर नहीं दे सकता। जब मैं स्वस्थ था या ऐसा मैंने अपने को मान रक्खा था, तो मैंने भी उनके साथ हिस्सा बटाया था, विशेषकर इस पिछले साल के बीच। बीमार होने से छह मास पूर्व, मैं यह कह सकता हूँ कि मैंने एक भी दिन शान्ति से नहीं व्यतीत किया। या तो वही उदासी आच्छन्न करती रही, अथवा मैं ही किसी आवेशयुक्त भावना से पीड़ित रहा, या यदि जब मैंने उसे कविता में उतारना चाहा तो दोनों प्रकार के संवेदन के विष को

कड़वा बना डाला। प्रकृति की सुन्दरताओं का प्रभाव मेरे ऊपर से हट गया। कितने आश्चर्यजनक रूप से यहाँ मुझे बता देना उचित है कि जहाँ तक मैं निर्णय कर सकता हूँ, उस रोग ने मेरे मस्तिष्क को भ्रमकारी विचारों, छायाकृतियों के भार से विमुक्त कर दिया है, और वस्तुओं को सत्यतर आलोक में देख सकने की मुझे क्षमता देदी है।)—कितने आश्चर्यजनक रूप से विश्व को तज देने का अवसर हमको अपनी नैसर्गिक सुन्दरता के बोध से प्रभावित करता है। बिचारे 'फालस्टाफ' के समान यद्यपि मैं बकवास नहीं करता, तो भी मैं हरे खेतों की सोचता हूँ। मैं महानतम अनुराग के साथ प्रत्येक पुष्प में जिसे कि मैं बचपन से जानता आया हूँ, राग-लीन होता हूँ, उनकी आकृतियाँ और वर्ण मेरे लिये वैसे ही अभिनव हैं; जैसे कि अतिमानविक कल्पना के साथ उन्हें अभी ही सृजित किया हो। यह इसलिये है कि वे हमारे जीवन के अत्यन्त विचारहीन और सुखदतम क्षणों के साथ जुड़े हुए हैं। मैंने अत्यन्त सुन्दर प्रकृति के उष्ण-गृहों में विदेशी पुष्पों को देखा है, लेकिन मुझे उनके प्रति तनिक भी राग नहीं। यह तो हमारे वसंत के सरल पुष्प ही हैं, जिन्हें कि मैं पुनः देखने की कामना करता हूँ।

ब्राउन ने आविष्कारक कला को तजकर, आनुकृतिक को ग्रहण कर लिया है—वह अपना विशिष्ट कार्य पूरा कर रहा है, जो हो गर्भ के शिरों की अनुकृति करना है। उसने अभी मैथोडिस्ट—सम्मिलन—चित्र की संयोग-झाँकी बनाई है, जिसने कुछ रात पूर्व एक भयानक सपना दिखाया था। मुझे आशा है कि मैं फिर 'आइल ऑफ वाइट' जैसे स्थान में किसी पेड़ के तले बैठूंगा। किसी लकड़ी की चिराई वाले गढ़े (Sawpit) या गाड़ी में ताश खेलने से ऐतराज नहीं करूँगा : पर अगर तुम मुझे कभी हवा के विपरीत पूरे जाड़े भर किसी बग्घी में पकड़ लो, तो गोली मारकर नीचे गिरा देना, और मैं वायदा करता हूँ कि धोखा नहीं दूंगा। रेनाल्डस को मेरा स्मरण और उससे कहना कि उसके खत का मुझे कितना इंतज़ार है : कि ब्राउन इतवार को आकर तत्काल नहीं लौट गया, और मैं खेद है कि उससे भोजन की पूछना भूल ही गया, जैसे ही वह दरवाजे की ओर मुड़ा, मैंने देखा वह श्रांत और क्षुधित था।

मैं हूँ,
मेरे प्रिय राइस
सदा तुम्हारा विश्वासी
जॉन कीट्स

मैंने इसे खोल लिया है तुम्हें यह बताने के लिये कि इस सुबह इसे मेज पर पाकर अचरज हुआ, मैं समझता था कि यह डाक में पड़ गया होगा।

२४

चार्ल्स ब्राउन को

नैपल्स, १ नवम्बर, १८२०

मेरे प्रिय ब्राउन,

कल हम 'क्वेरन्टाइन' से बाहर आये, इसी बीच दूषित वायु और दमघोटू केबिन से मेरा स्वास्थ्य इतना खराब हो गया जितना कि पूरी यात्रा में नहीं हुआ था। ताजी हवा से थोड़ी-सी राहत मिली, और मुझे आशा है कि इस सुबह तक तुम्हें छोटा-सा शान्त पत्र लिखने लायक हो गया हूँ—अगर इसे ऐसा कहा जाय, जिसमें कि उसके बारे में जिसका अत्यन्त सुखपूर्वक चिन्तन करता हूँ, बताने में भय है। जितना इसमें इस प्रकार गहराई से गया हूँ, थोड़ा और जाना चाहिए। शायद यह मुझे इस दैन्य के बोझ से छुटकारा दिला दे, जो कि मझे रुद्ध कर रहा है। विवश अनुरोध कि मैं उसे अब और न हो देख सकूँगा, मुझे मार ही देगा। मैं नहीं छो······ मेरे प्यारे ब्राउन! जब मैं पूर्ण स्वस्थ था, तभी मुझे उसे ग्रहण कर लेना था, और मैं ठीक रहता। मरना सह सकता हूँ, पर उसे छोड़ सकना नहीं सह सकता! आह ईश्वर! ईश्वर! ईश्वर! मेरे सन्दूक में रक्खी हुई उसकी हर वस्तु की याद बरछी की तरह उतर जाती है। रेशम की डोर उसने मेरे सिर की टोपी से बाँधी थी। उसके बारे में मेरी कल्पना भयावह रूप से सजीव है—मैं उसे देख रहा हूँ, मैं उसे सुन रहा हूँ, दुनियाँ में ऐसा दिलचस्प कुछ नहीं जो मुझे उससे क्षणमात्र भी विलग कर सके! यह तब की बात है जब मैं इंग्लैण्ड में था: बिना सिहरन के मैं स्मरण नहीं कर सकता, उस समय को जब हंट के यहाँ में क़ैद था और सारे दिन मैं हैम्पस्टेड की ओर नज़रें गढ़ाये रहता था। तब उसको दुबारा देख पाने की आशा थी—अब! ओह, काश मुझे वहीं दफनाया जाता, जहाँ वह रहती है! मुझे डर लगता है उसे लिखने में—उससे पत्र प्राप्त करने में, उसका हस्तलेख देखते से मेरा दिल टूट जाता है—उसका कुछ भी सुनना, उसका नाम लिखा देखना, मेरे सहन के ऊपर की बात है! मेरे प्रिय ब्राउन, क्या करूँ मैं? सांत्वना और राहत के लिए किधर देखूँ मैं? यदि मेरे ठीक होने की कोई संभावना होती, तो यह आवेश मुझे मार डालता। सचमुच, मेरी पूरी बीमारी के बीच, तुम्हारे घर और केन्टिश नगर में, इस ज्वर ने मुझे थकाना कभी नहीं छोड़ा! जब तुम लिखो, जो तुरन्त ही करना, तो रोम के पते पर लिखना—कि वह प्रसन्नता है, और अच्छी है तो यह चिन्ह (+) बनाना; अन्यथा—

सबको मेरा स्मरण। धैर्यपूर्वक अपनी पीड़ाओं को सहन करूँगा। मेरे जैसे स्वास्थ्य की दशा में कोई व्यक्ति ऐसे कष्टों को सहन नहीं कर सकता। छोटा-सा खत

मेरी बहन को लिखना, कि मेरा पत्र मिलता है। सेवर्न बहुत अच्छा है। अगर मेरा स्वास्थ्य बेहतर होता, तो तुमसे रोम आने की प्रार्थना करता ! मुझे भय है कि ऐसा कोई नहीं जो मुझे आराम दे सके। जॉर्ज की कोई खबर है ? ओह, कोई सौभाग्य मुझे या मेरे भाइयों को मिला होता—तब मैं आशा करता—लेकिन नैराश्य तो मुझे आदत के समान विवश करता है ! मेरे प्यारे ब्राउन, मेरे लिए, सदैव के लिए उसके हिमायती रहना। नैपल्स के बारे में एक शब्द भी नहीं कह सकता ! अपने चारों ओर की हजारों नूतनताओं से मैं तनिक भी अपने को सम्बद्ध अनुभव नहीं करता। मुझे उसे लिखते में भय मालूम देता है ' मैं उसे बताना चाहता हूँ कि उसे मैं भूला नही हूँ। आह, ब्राउन, मेरे सीने में आग के कोयले हैं। मुझे विस्मय होता है कि आदमी का दिल इतनी पीड़ा को सहने में और वहन करने में समर्थ होता है। क्या मैं इस उद्देश्य के लिए पैदा हुआ था ? प्रभु उसे, उसकी जननी को, मेरी बहन, जॉर्ज और उसकी पत्नी को, तुम और सबको सुख दे।

तुम्हारा सदैव स्नेहशील मित्र
जॉन कीट्स

२५

चार्ल्स ब्राउन को

शनिवार, ३० सितम्बर, १८२०
ऑफ मेरिया क्राउथर
यॉरमाउथ-ऑइल ऑफ वाइट

मेरे प्रिय ब्राउन,

मुझसे आनन्ददायक पत्र पाने का अभी समय नहीं आया। समय-समय पर तुम्हें मैंने पत्र लिखने में विलम्ब किया है, क्योंकि मुझे महसूस हुआ कि तुम्हारे अन्दर अपनी पुनः स्वस्थ होने की हार्दिक आशा को सजीव बनाये रखना कितना असम्भव था। आज प्रातःकाल शैया पर यही बात मुझे दूसरी ही लगी; मैंने सोचा कि मैं लिखूँगा, जबकि लिखने की इच्छा में हूँगा, अन्यथा बिल्कुल ही लिख सकने के अयोग्य हो जाऊँगा, और तब यदि लिखने की इच्छा तीव्रतर हो जाए, तो मुझे पीड़ा देगी। मेरे पास बहुत से पत्र लिखने को हैं और सितारों को धन्यवाद कि मैंने शुरू तो कर दिए, क्योंकि समय विवश-सा करता है—यही मेरा सर्वोत्तम अवसर हो। हम सब

शान्ति का अनुभव करते हैं, और इस प्रभात मैं भी आराम से हूँ यदि मेरे उत्साह में तुम कुछ कमी अनुभव करो, तो यह एक पखवारे तक बिना कोई रास्ता बनाये हमारी समुद्र यात्रा के कारण हो सकता है। बैडहैम्पटन में तुम से न मिलकर बड़ी निराशा हुई' और मैं चिचेष्टर में आज तुम्हें सोचकर बड़ी उत्तेजना का अनुभव कर रहा हूँ केवल रोमांच के लिए ही लंदन चल देने में प्रसन्नता होती—क्योंकि वहाँ और करता क्या ? मैं अपने पीछे अपने फेफड़ों, पेट, और दूसरी वस्तुएँ तो नहीं छोड़ सकता था। मैं उन विषयों पर लिखना चाहता हूँ जो मुझे अधिक आन्दोलित नहीं करेंगे—एक है जिसका उल्लेख अवश्य करूँगा, और कर चुका हूँ। यदि मेरा शरीर भी पुनः आरोग्य लाभ कर ले, तो भी यह नहीं होने देगा। वही वस्तु, जिसके लिए मैं सर्वाधिक जीना चाहता हूँ, मेरी मृत्यु का बड़ा कारण बनेगी। मेरा इसमें कोई बस नहीं। और भी कोई क्या कर सकता है ? यदि स्वस्थ होता, तो भी इससे बीमार हो जाता, अपनी इस दशा में मैं कैसे सहन कर सकता हूँ ? विश्वास है कि तुम अन्दाज़ लगा लोगे कि मैं किस विषय की रागिनी अलाप रहा हूँ। तुम जानते हो कि तुम्हारे घर की मेरी बीमारी के पहले चरण के मध्य में मेरी सबसे तीव्र पीड़ा क्या थी; इन दर्दों से छुटकारा पाने के लिए दिन रात मृत्यु की याचना करता हूँ, और फिर मृत्यु को दूर भगाना चाहता हूँ, क्योंकि मृत्यु इन दर्दों को नष्ट भी कर देगी, जो शून्य से बढ़कर नहीं हैं। भूमि और समुद्र, दुर्बलता और ह्रास महान विलगकर्त्ता हैं, लेकिन मृत्यु है चिरकाल के लिए महान परित्याजिका। जब इस विचार की पीड़ा मेरे मानस में होकर गुज़र गई, तो मैं कह सकता हूँ कि मृत्यु की कटुता गुज़र गई। प्रायः मेरी कामना रही है कि तुम सर्वोत्तम से मेरी प्रशंसा करो। बिना इसका उल्लेख किए मेरा विचार है कि मेरे हेतु, तुम कुमारी ब्राउन के सबसे अच्छे मित्र होंगे, मेरी मृत्यु के पश्चात्। तुम सोचते हो कि उसमें बहुत से दोष हैं—पर, मेरे लिए, सोचना कि उसमें एक नहीं है—अगर उसके लिए तुम शब्द या कार्य से कुछ कर सकते हो, मैं जानता हूँ कि तुम अवश्य करोगे। आजकल मैं ऐसी अवस्था में हूँ जिनमें नारी केवल नारीवत मेरे ऊपर मोज़े या पत्थरों के समान ही कोई प्रभाव नहीं दिखला सकती और तो भी कुमारी ब्राउन और अपनी बहन के प्रति मेरी चेतनाओं में अन्तर विस्मय जनक है। एक दूसरे को आश्चर्यजनक सीमा तक निमग्न करता प्रतीत होता है। मैं शायद ही कभी अमेरिका में स्थित अपने भाई-भाभी के विषय में सोचता हूँ। कुमारी ब्राउन को तज देने का विचार तो सबसे भयावह प्रतीत होता है—अंधकार की चेतना मेरे ऊपर छा जाती है—मैं चिरन्तनवत विलीन होती उसकी आकृति निहारता हूँ। कुछ ऐसे मुहावरे जिन्हें कि वह, जब वैन्टवर्थ प्लेस में बीमार था, मेरी परिचर्या के समय दुहराती थी, मेरे कानों में बज रहे हैं। क्या दूसरा जीवन

होता है ? क्या मैं जागूँगा और यह सब एक सपने के समान पाऊँगा ? अवश्य ही हम सब इस प्रकार के पीड़न को वहन करने के लिए नहीं सृजे गए । इस पत्र को पाना तुम्हारे लिए ऐसा ही एक होगा । मैं अपनी मैत्री बल्कि तुम्हारी मेरे प्रति, के विषय में उससे अधिक कुछ नहीं कहूँगा, जितनी कि तुम्हारी मेरे प्रति; जिससे वंचित होकर तुम इतने दुःखी न होगे, जितना कि मैं ।

अपने अन्तिम क्षणों में, लाओ तुम्हारा स्मरण कर लूं ! आज ही कुमारी ब्राउन को भी लिखने की कोशिश करूँगा, अगर कर सका तो इन पत्रों के बीच में मेरे जीवन में सहसा ठहराव कोई ऐसी बुरी बात न होगी, क्योंकि यह कुछ देर तक आवेशावस्था में रखता है । यद्यपि अब तक कुछ देर पहले तक लिखे गए पत्रों में सब से लम्बा पत्र लिखने के कारण विश्रान्ति होने पर भी, विपरीत पवनों की चेतना का ज्ञान होने की अपेक्षा अच्छा है कि ऐसा ही चिरकाल तक चलता रहे । आज रात हमें पोर्टलैण्ड मार्ग में प्रविष्ट होने की आशा है । कप्तान, बेड़ा और मुसाफिर सब बदमिजाज है, और थके हैं । मैं डिल्के को लिखूंगा । मैं अनुभव करता हूँ कि मानो मैं अपना अन्तिम पत्र तुम्हें प्रेषित कर रहा हूँ ।

मेरे प्रिय ब्राउन,
तुम्हारा भवन्निष्ठ बन्धु
जॉन कीट्स

संशोधित हाइपीरियन

(Recast of Hyperion)

"यहाँ वह अपने ही हृदय की गहराई की शोध करता है, ऐसे निर्मम साहस के साथ, कि अँग्रेजी के समूचे साहित्य में उसका जोड़ नहीं है।"

—मिडिल्टन मरे

खण्ड १

अंध-पंथियों के होते हैं अपने स्वप्न कि जिनसे बुनते
एक सम्प्रदाय को स्वर्ग; बर्बर मनुष्य भी है पहले से
अपनी निद्रा की उच्चतम प्रणाली द्वारा
निहार लेता स्वर्ग; बिचारे यह कर पाये नहीं
संगीतमयी अभिव्यंजन की छायाएँ
अंकित लेख-चर्म पर अथवा वन्य भारतीय पल्लव पर,
पर वे रहते, सपनाते हैं, मर जाते हैं,
यश से वंचित; क्योंकि अकेली कविता ही तो
कह सकती है अपने सपने,—
कर सकती कल्पन का रक्षण,
अपने उत्तम शब्दों की मोहकता द्वारा,
काली जंजीरों से, और मूक अभिमंत्रण से, कह सकता
जीवित कौन, "नहीं कोई कवि तू—क्या अपना
स्वप्न नहीं तू कह सकता है ?" चूँकि मनुज प्रत्येक, आत्मा
जिसकी जड़ है नहीं, स्वप्नदर्शी है, कह सकता हैं,
प्यार किया है यदि उसने, औ' भली भाँति जो पोषित
हुआ मातृभाषा में, यह सपना जो
अभी सुनाया जायेगा, कवि का है अथवा
अंध-पथी का, जाना जायेगा जब
यह सावेश लिखावट वाला मेरा कर समाधि में होगा।
देखा स्वप्न कि खड़ा जहाँ मैं, खड़ी हुई थीं
विविध पादपों की पाँतें, खजूर, अंजीर, सनोवर,
मेंहदी, ओक, मसालेवाले पेड़, वृक्ष कदली के,
इनसे निर्मित एक यवनिका, झरनों के पड़ौस में,
(मेरे कानों में कोमल निर्झर-स्वर द्वारा)
और (सुरभि के परसों द्वारा), नहीं दूर पाटल-पुष्पों से।
चारों ओर लिपटते मैंने देखा एक लतागृह,
जिसकी छत थी झुकी हुई, जो बनी हुई थी
अंगूरी लतिकाओं, नीलम पुष्प, बृहत्तर फूलों से, ज्यों
कोई पुष्पित अगुरु-पात्र हो, झूल रहा समीर में मंथर;

इसके मालायुक्त द्वार के आगे, शैवालिन-टीले पर,
सजा हुआ था ग्रीष्म-फलों का एक भोज, लगता समीप के
अवलोकन से, बची हुई ज्योंनार, किया आस्वादित जिसको
किसी देवदूत ने, या कि 'ईव' ने, हमारी जो जननी;
क्योंकि रिक्त सीपियाँ घास पर बिखर रहीं थीं,
और तने अँगूरों के थे, जो अधखाली, मृदुल गंधमय
थे अवशिष्ट और भी, जिनकी शुद्ध क़िस्म मैं जान न पाया।
तो भी थी अत्यधिक विपुल वह राशि, अपेक्षा
गाथा के शृङ्ग[1] के तीन मरतबा उलटने से हो सकता
ढेर इकट्ठा जितना दावत का, "देवी प्रोज़रपिन[2] थी वह
क्योंकि गई अपने खेतों को लौट, जहाँ पर उसकी बछिया
श्वेत रँभाती, मेरे अन्दर क्षुधा-अग्नि हो रही तीव्रतर,
जितनी पृथ्वी पर न लगी थी कभी, स्वाद ले-लेकर मैंने
खूब उड़ाया भोज, और कुछ देर बाद, तब प्यास लगी;
इसके लिये समीप एक पारदर्शी, शीतल रस का था
झरना बहता, जिसका लेतीं स्वाद ममाक्षी,
पिया मधुर रस मैंने छककर, लेकर उनका
नाम, अवनि के सब नश्वर व मृत्त, जो बसे हुए थे मेरी
जिह्वा पर, वह मेरा है परिपूर्ण घूंट ही काव्य-वस्तु का
जनक, न पोस्त एशियाई, न त्वरित-क्षयशः, ईर्ष्यालु खलीफा[3]
का उत्तम अमृत ही, अथवा समीपवर्ती मठ में,
बूढ़ों के अंगूरी संकुल को पतला करने उत्पादित
किया हलाहल ही अनचाहे जीवन को लपेट सकता यों।
सुरभित छिलकों और पैर से कुचली रसभरियों के,
जो कि घास पर पड़ी हुई थीं, बीच, कठिन जूझा मैं
गहरी मादकता से, लेकिन व्यर्थ रहा सब।

---

१. यवन दंत-कथाओं में वर्णित कल्प-शृंग।

२. प्रोज़रपिन (Proserpine) ज्यूस और डेमीटर की पुत्री। फसलों की देवि।

३. पुष्प विशेष (पूर्वीय देशों का एक पुष्प)।

मेघिल मूर्छा छाई, और निमग्न हो गया
मैं, जैसे हो एक साइलेनस प्राचीन कलश के ऊपर ।
सोया कितनी देर तलक मैं, है अनुमान लगाने की यह
बात, चेतना मेरे जीवन की लौटी जब, तत्क्षण ही मैं
उठा, कि जैसे पंख लग गये, किन्तु सुघर द्रुम बिलम गये सब,
शैवाली टीला न कहीं था, नहीं निशान लतागृह का ही :
मैं विलोकता रहा पास एक से पुराने मठ के
तिर्यक पार्श्वों के ऊपर से इधर-उधर, जिसकी छत थी
विशाल, अतिशय ऊँची, यह लगता था मानो श्लेष्मिल
बादल हों फैल गये नीचे, ऊपर जिनके
नक्षत्र व्योम के जगते हों, इतनी प्राचीन जगह थी वह
कि मुझे तो याद नहीं, पृथ्वी पर देखी थी वैसी :
जितने देखे थे मैंने भूरे कैथेड्रिल, स्तम्भित प्राचीरें, जर्जर
गुम्बज, डूबे राज्यों के वे ध्वंसावशेष,
अथवा निसर्ग की चट्टानें, जो लहरों और अंधड़ों से
युद्ध-रत रहीं, उस चिर समाधिवत स्मारक के समक्ष लगते
यह सब जर्जर पदार्थों की छाया केवल ।
'मरमर पत्थर पर मेरे पग के पास पड़ा,
भण्डार अजनबी पात्रों का, एवं विशाल परिधानों का
जो रंगे हुए एस्बेस्टस से थे निर्मित या
उस ठौर न कोई कीट मलिन कर सका उन्हें,
इतना सफेद था 'लिनेन', कि कुछ में यों ही होती थीं गोचर
चित्रावलियाँ स्वर्णिम करघे से रची गईं जो, सभी पड़ीं
सज्जायें, स्वर्ण चीमटे, धूपदान, तापक-वर्तनी, मेखलाएँ,
जंजीरें, और पुनीत रत्न की मालाएँ, सब मिलीं-जुलीं ।
इनसे मुड़कर समय, पुनः मैंने अपनी
दौड़ाई दृष्टि हर तरफ कोसों दूर-दूर गहराई पर ;
छत पर, जिस पर थे उभरे कढ़े बेल-बूटे, उत्तर, दक्षिण के स्तम्भों की
निस्तब्ध और भारी क़तार, होती समाप्त जो कुहरे में
सूनेपन के; तब पूर्व ओर, थे जहाँ द्वार काले हो गये सदा को ही
सूर्योदय के विपरीत बन्द ; तब पश्चिम ओर, नजर आई
एक सुदूर शिलाकृति, जिसके नक़्शा विराट मेघ जैसे,

जिसके पैरों के तले सुप्त वेदिका एक,
सीढ़ियाँ बनी दोनों ओरों से जाने को उस तक, 'मरमर—
पत्थर का बना हुआ सोपान-रक्ष, अनगिन क्रम को
गिनने का श्रम था घोर दुःखदउत पीड़ा, वेदी की
ओर बढ़ा मैं धीरे धीरे कदमों से, कर दमित त्वरा
को, क्योंकि त्वरितमय होना तो बड़ा अपावन होता।
औ' समीपतर आते, देखा निकट वेदिका के मठ का
परिचारक एक : वहाँ पर उठी लपट, ऐसी
जब दोपहरी में बोझ भरी पूरबी हवा,
मुड़ जाया करती दक्षिण को है अकस्मात,
तब लघु ऊष्मिल बरखा पिघलाया करती है,
सम्पूर्ण सुमन दल से हिममय सौरभ, भरती
है समीर में ऐसा स्वास्थ्य मनोहारी, कि जिसे छूकर
मृण्मय मनुष्य भी अपना कफ़न भुला देता—
प्रत्युत, वह ऊँची होम-शिखा, जिसने 'मेयन' का अगुरुधूम
बिखराया चारों ओर, सिवा' सुख के, प्रत्येक वस्तु होती
विस्मृत, समस्त वेदी को उसके मृदुल धूम्र ने किया शीघ्र
मेघावृत; जिसके सफेद सुरभित परदों से मैंने सुनी उच्चरित
होती यह भाषा, "तू अगर नहीं चढ़ सकता इन सोपानों पर,
तो प्राण त्याग दे वहीं संगमरमर पर, जहाँ खड़ा तू अब!
मिट्टी का भाई, तेरा माँस, सूख जायेगा निराहार
होकर; कुछ बरसों में तेरी अस्थियाँ यहाँ मुरझायेंगी,
बच पायेगा उनका न एक भी कण, कोई
द्रुत-दृष्टा अच्छे से अच्छा न जान पायेगा यह कि यहाँ
इस ठण्डे मरमर पत्थर पर था तुझ जैसा प्राणी आया।
तव लघु जीवन की रेणु-राशि चुक गई इसी घटिका पर,
इस निखिल विश्व ब्रह्माण्ड बीच कोई भी कर,
तेरी बालुका-घड़ी को मोड़ नहीं सकता,
यदि इन अमर्त्य सोपानों पर तेरे चढ़ जाने के पहले,
ये गोंदीले पल्लव जो जलकर खाक बने।"
सुना इसे मैंने, अवलोका : दो चेतनाओं ने
जो इतनी उत्कृष्ट, निगूढ़, साथ ही साथ किया था अनुभव

तो वह इसी फर्श के ऊपर सड़ जायेंगे, जहाँ अभी तू
आधा सड़ा हुआ था," "क्या दुनियाँ में ऐसे
हैं सहस्त्र भी", मैं बोला उत्साहित होकर
छाया की सांत्वनाप्रदायक वाणी से तब, "जो करते हैं
प्यार साथियों से अपने आमरण, और करते हैं अनुभव
जग के दैन्य दुखों का, और मनुजता के गुलाम से,
करते मर्त्यजनों की सेवा ! निश्चय ऐसे अन्य जनों को
मुझे देखना यहाँ चाहिये, लेकिन मैं तो यहाँ अकेला !"
"वे जिनके बारे में तू कहता, न स्वप्न द्रष्टा हैं,"
जोड़ा उस वाणी ने, "वे तो नहीं अलस सपनाते;
वे न खोजते कोई विस्मय, किन्तु मानवी आनन,
कोई गायन नहीं सिर्फ उल्लसित ध्वनित वाणी ही;
वे न यहाँ आते, न यहाँ आने का उनका निश्चय;
और यहाँ तू है, तू उनसे क्योंकि हीन है।
तू या तेरी जाति समूची इस महान जगती का
क्या कर सकते हैं मंगल ? तू तो स्वप्निल पदार्थ है,
अपने का आवेश; सोच पृथ्वी की :
कैसा सुख, आशा में भी है तेरे लिये यहाँ पर ?
कैसा आश्रय ? होता है घर हर प्राणी का,
प्रत्येक अकेले जन के होते हैं सुख के, दुख के दिन,
चाहे उसके श्रम-कार्य उच्च हों या नीचे—
अलग अलग होते हैं उसको पीड़ा, और हर्ष सब;
सिर्फ स्वप्नद्रष्टा ही करता है अपने सब दिन विषमय,
अपने पापकर्म से अधिक वहन कर बोझ दुःखों का।
अस्तु, मिले कुछ सुख का भी परिमाण, इसलिये
तुझ जैसे पदार्थों का प्रवेश होता है प्रायः ऐसे
उद्यानों में, जिससे अभी निकलकर आया है तू,
और सहा ऐसे मंदिर में : इस ही कारण हेतु सुरक्षित
खड़ा हुआ तू नीचे इस मूर्ति की जानु के।"
"कि मेरे अयोग्य होने पर भी, मुझ पर की गई कृपा है,
ऐसी मंगलमय वार्ता की औषधि देकर,
मुझको प्रसन्नता है अतीव, अह, काश कहीं

मैं रो सकता ऐसे प्रेम के दान पर जो !"
यों मैंने उत्तर दिया, बात जारी रखते, 'हे, गरिमामय
छाया ! यदि तुझको भावे, तो यह बता कि मैं
हूँ कहाँ, वेदिका है किसकी, यह अगुरुधूम
है किसके लिये ले रहा अँगड़ाई; किसकी यह मूर्ति, नहीं जिसका
मैं देख पा रहा आनन, क्योंकि विशाल जानु है इसके
मरमर पत्थर के; औ' तू है कौन नारिवत-कण्ठोच्चारण वाली,
इतनी शिष्ट, सुजन ?"

तब वह लम्बी छाया
जो रेशमी वसन से थी अवगुण्ठित, बोली,
इतनी अत्यधिक त्वरामय हो कि श्वास उसकी
से चंचल हुई परत झीनी जो लटक रही थी,
स्वर्णिम अगरु-पान्त के चारों ओर जिसे थामे वह
थी अपने कर में; और स्वरों से उसके मैंने
जाना यह कि गिराई उसने अपनी चिर-संचित आँसू-निधि ।
"यह मंदिर, उदास, एकाकी, बचा हुआ सब
एक युद्ध-गर्जन से, जो कि गया था लड़ा बहुत दिन
पहले देवों के शासन के द्वारा बाग़ी दल के
विरुद्ध; यहाँ यह मूर्ति पुरानी जिसके हैं मुख के
उत्कीर्णित नक़्श हुए निष्प्रभ, जब हुआ पराजित वह,
'शनि' की है : मैं, 'मोनेटा'[1] हूँ, बची अकेली,
देवि उच्चतम, इस उजाड़ की," पास न मेरे
उत्तर को थे शब्द, क्योंकि तब मेरी जिह्वा, व्यर्थ हो गई,
पा न सकी अनुकूल शब्द वह गरिमामय जो
'मोनेटा' की शोकाकुल वाणी में जुड़ते संवेदन बन :
वहाँ शान्ति छाई थी, जब कि अग्नि वहाँ वेदी की
मधुर खाद्य के लिये हो रही मूर्च्छित, मैंने देखा
पटे फर्श पर, निकट संकुलित दारुसितों के चैले
और सुगंधित लकड़ी के अनेक संकुल : फिर मैंने

१. रोम की लक्ष्मी देवी ।

एक दृष्टि डाल वेदी पर, और शृंग इसके थे
हुए भस्म से श्वेत, और इसकी पीली ज्वाला से,
और पुनः अवलोकी मैंने अर्घ्य-वस्तुएँ; रहा देखता,
यों ही, एक एक कभी इसे या कभी उसे, जब तलक नहीं
चिल्लाई मोनेटा, "पूर्ण हो गई बलि, मैं तेरे प्रति
हूँ बड़ी कृतज्ञ कि तूने शुभ-कामना दिखाई।
मेरी सत्ता, जो मुझको है अब भी अभिशाप, रहेगी ही
तुझको विस्मय, है क्योंकि अभी तक मेरे गोलाकृत मानस से
होकर वे दृश्य मूर्च्छना भरते हैं, एक नियोजित
परिवर्तित दैन्य के साथ, तू देखेगा इन धूमिल
नश्वर आँखों से, सब पीड़ा से हो विमुक्त,
यदि हो विस्मय से तुझे नहीं पीड़ा," इतने
समीप जितने कि किसी अविनश्वर के वृत्तमय शब्द
हो सकते हों जननी के से साँत्वनापूर्ण, ऐसे थे ये :
तो भी उसके वस्त्रों से मुझे लगा भय ही,
विशेषतः उसका अवगुण्ठन था भयकारी,
जो उसकी भ्रू से लटक रहा, उसको करता
था रहस्यमय, लख जिसको मेरा हृदय हो चला उत्तेजित।
देवि ने इसे देखा, औ' निज पुनीत कर से
अवगुण्ठन अलग किया, तब मैंने देखा वह
मुरझाया चेहरा, जो न मानवी अवसादों से ओतप्रोत,
प्रत्युत, चमकीला—श्वेत किसी अमर्त्य वेदना से, जिससे
मृत्यु तो नहीं होती; करती अविराम किन्तु परिवर्तन,
जिसका न अंत कर सकती मुदित मृत्यु; मृत्युवर्ती
हो रहा विकासमान वह आनन, तो भी नहीं मृत्यु को;
यह छोड़ चुका पीछे नलिनी को, हिम को भी;
औ' इनके परे न मुझे सोचना है अब, यद्यपि देखा
था मैंने वह मुख, लेकिन न उसकी आँखें थीं ऐसी
कि मुझे तो उड़ जाना सुदूर था उनसे,
लेकिन रहे रोकते मुझको एक समय द्युति से जो
थी कोमल, दुखहर्त्ता अर्द्धनिमीलित उन
दैविकतम पलकों से, सभी बाहरी पदार्थों की

स्वप्नहीन सम्पूर्ण रूप दिखलाई देते थे वह;
देखा नहीं उन्होंने मुझको, लेकिन एक रिक्त आभा में
चमक उठे वे, नरम चाँद की तरह, दिया करता सुख
जिसको देख नहीं पाता है, नहीं जानता
कौन चक्षु उसको तकते हैं, जैसे मैंने पाया गिरि पर
एक स्वर्णकरण, और लोभ के वशीभूत हो,
आँखें फाड़-फाड़कर देखा, शायद इसकी धातुमिश्रिता
मिट्टी पाऊँ, ऐसे ही उदास मोनेटा की भ्रू के
दृश्य पर, देखने पूछा, खाली पेशानी के
पीछे हैं कौन व्यथाएँ बंदिनि : है वह उच्च वेदना
क्या, जो उसके कपाल के अँधियारे रहस्यमय कक्षों में,
सक्रिय थी, जो उसके शीतल अधरों पर ऐसी भीषण
स्पर्श गई थी छोड़, और उसकी उन ग्रहमय आँखों में
भर दी थी ऐसी ज्योति, और कर दी थी वाणी ओत-प्रोत
ऐसे विषाद से ? "हे, स्मृति की परछाईं !' मैं चिल्लाया,
उसके चरणों की ओर झुकाता हुआ शीश,
"है शपथ समस्त वेदना की, जो तेरे गिरे हुए गृह के
चारों ओर घुमड़ती, शपथ आखिरी इस मंदिर की,
शपथ अपोलो की, जो तेरा प्यारा दत्तक सुत है,
शपथ तुम्हारी ही, ओ परित्यक्त दैविकता,
एक परास्त जाति की, ओ पाण्डुर 'ओमेगा ?
मुझको दे विलोकने, जैसा तू कहती है,
उसे जो कि तेरे मानस को यत्र-तत्र खौलाता।"
शपथ वचन न अभी समाप्त ही हो पाये थे,
मेरे भक्तिसिक्त अधरों से कि हम खड़े थे अगल-बगल ही
(जैसे शान्त सनोवर के समीप बोना गोखरू खड़ा हो)
दूर एक घाटी की छायामय करुणा के तल में
डूबा पड़ा सुदूर स्वास्थ्यमय प्रातः के समीर से,
दूर भयद चन्द्रमा, और एक संध्या-तारा से।
आगे बढ़ मैंने देखा नीचे उदास शाखों के
औ' अवलोका, जिसे विराट मूर्त्ति मैं पहले समझा,
उस मूर्त्ति के समान जो कि उच्चस्थित शनि-मन्दिर में;

तब मोनेटा के स्वर सूक्ष्म, कान में मेरे आये ।
"यों शनि बैठा जब उसने खोये प्रदेश निज;"
जिस पर मेरे मन में तब एक शक्ति थी जागृत
जिसकी दृष्टि-परिधि इतनी विराट, देवता की-सी,
और माप सकती पदार्थों की गहराई, इतनी
चंचलता से जितनी वाह्य दृष्टि फैला सकती है
आकार और रूप, उन थोड़े से शब्दों की ऊँची
अंतर्वस्तु विशद झूलती रही सामने मेरे
मानस के अध-सुलझे जाले-सी, मैं बैठा
गृद्ध-दृष्ट हो, ताकि देख पाऊँ, न भूल पाऊँ जिसको ।
कफ़न ओढ़ती इस उपत्यका में न कहीं था रत्ती भर
जीवन का स्पन्दन—इतना भी न अनिल का कम्पन,
जैसे ग्रीष्म-दिवस के मण्डल में, न लूट पाता है
पंखिल दूर्वा से हल्का-सा बीज;
पर मृत पल्लव जहाँ झरा रह गया वहीं चुपचाप
निकट बहा निर्झर निस्वन, तो भी था मृतमय, और
पतित दिव्यता के कारण से फैलाते छाया :
वनदेवी ने अपने काँसों में अपनी शीतल
अंगुलि दाबी और निकट अधरों के ले जाकर ।

सैकत तट पर बने हुए थे दीर्घ-चरण के चिन्ह
उससे दूर न, जहाँ तलक पग बूढ़े शनि के
विश्रान्त हुए, सो गए वहीं कितनी लम्बी निद्रा में !
निपतित शीतल, भीगी धरती पर निश्चेतन
क्लान्त, मृत्त, और राज्यदण्ड से हीन,
पड़ी हुई थी उसकी बूढ़ी शीर्ण दक्षिणी बाहु;
और प्रदेश-हीन लोचन थे उसके बन्द;
जबकि शीशनत उसका सुनता-सा पृथ्वी की बात,
जो उसकी प्राचीन जननि, पाने किंचित विश्राम ।

लगता कोई शक्ति वहाँ से उसे न जगा सकेगी,
लेकिन आई एक वहाँ जिसने निज बांधव-कर से
उसके चौड़े स्कन्ध छुए, सादर नति के उपरांत
यद्यपि उसके प्रति, जिसको यह हुआ न ज्ञात
तब आई देवी 'निमोशिने' की शोकित वाणी
जिसको सुना व्यथित हो मैंने, "वह दैविकता जिसको
देख रहा तू आती है उन समक्ष के त्यक्त वनों से,
और हमारे पराभूत राजा की दिशि में
हौले-हौले पग धरती वह जाती है, है 'देवि'
जो हम सबमें है सबसे कोमल स्वभाव वाली।
बड़े ध्यान से मैंने देखी देवि,
उसका सिर, सुघड़ाकृत था मोनेटा से बढ़कर,
स्त्री के आँसू के था समीपतर उसका शोक,
चिन्ताकुल भय से पूरित था उसका दृष्टि-निक्षेप
मानो विपदा का तो केवल हुआ अभी आरम्भ;
ज्यों कुसमय की अग्रगामिनी मेघमालिका
रोष कर चुकी शेष,विपद इसकी अनुवर्तिनि
निज संचय के स्फोट हेतु हो रही प्रवर्तित।
उसने एक हाथ से थामा वह पीड़ा का ठौर,
जहाँ धड़कता है मानव उर, यद्यपि थी अमर्त्य,
तो भी ठीक वहीं पर जानी उसने तीखी पीर :
अपना हाथ दूसरा उसने शनि की नत ग्रीवा पर
रक्खा; उसने कर्णमूल की ओर
अपने खुले अधर ले जाकर, उच्चारे कुछ शब्द,
ओजपूर्ण, गम्भीर, मधुर झंकृत वाणी में उसने :
कुछ शोकाकुल शब्द, जो कि हम मर्त्यों की भाषा में
ऐसे उच्चारण से लगते; ओ, कितने कृशकाय !
आदिम देवों की विशाल अभिव्यक्ति समक्ष !
"शनि, देखो ऊपर, यद्यपि क्यों, है प्राचीन सुरेश ?
पास न मेरे तुझे सांत्वना, तुझे न कोई सुख है :
मैं कह सकती, आह ! किसलिए यहाँ सोता है ?
क्योंकि स्वर्ग भी छीन लिया है तुझसे, पृथ्वी भी

नहीं जानती तुझे, व्यर्थ है एक देव को,
और सिन्धु भी अपने सब गम्भीर नाद से,
तेरे राज-दण्ड से है अब मुक्त; पवन सब
रिक्त हो गए तेरे धवल कीर्ति गौरव से
तेरा विद्युत घोष, नये शासन से चेतित
कड़कन भरता सकुच, हमारे निपतित गृह पर;
और तीव्र दामिनि तव अनभ्यस्त हाथों से चमक जलाती
उसे कभी था जो प्रशान्तिमय देश हमारा :
ऐसी पश्चात्ताप भरी गति से आते हैं नव दुःख अब भी,
अविश्वास वह साँस न लेने भर को पाता ठौर।
शनि तू सोता रहा, ओ भावहीन क्यों कर दूँ तुझको !"
तेरे शयनिल, एकाकी सुख से मैं वंचित ?
क्यों तव करुणामय नयनों को करूँ विनिद्रित,
शनि, तू सोता रह ! जब तेरे चरण तले मैं रोदूँ ?"

जैसे, जब सम्मोहित ग्रीष्म-यामिनी पर
दीर्घ ओक, जो प्रबल वनों में हरित वसन युत 'सीनेटर' से
प्रखर तारकों से शाखा-विमुग्ध, सपनाते,
औ' यों सपनाते भर रजनी, नहीं एक भी होता स्पन्दन,
केवल एक कम्प जो उठता एकाकी मद्धिम झकोर से,
जो प्रशान्ति पर आता, और मृत्त हो जाता,
ज्यों मृण्मय समीर में केवल एक लहर ही शेष रही हो,
त्यों आये यह शब्द गये भी, उसने आँसू से भर-भरकर,
अपने शुभ्र विशाल भाल से छुआ भूमि को,
ठीक जहाँ उसकी निपतित केशावलि प्रसरित,
एक मृदुल रेशमी चटाई बनी वहाँ शनि के चरणों को !
दीर्घ, दीर्घ, काल तक वे रहे मूक बने ही,
मानो उनकी अपनी सत्ता की मज़ार पर
बने समाधि-स्तूप, एक लम्बे दमघोट समय तक
मैं उन्हें रहा देखता, खड़े अब भी वैसे ही दोनों :
हिमावृत्त देवता झुका अब भी पृथ्वी की ओर,
और उदास देवि उसके चरणों पर रोती :

मोनेटा थी स्तब्ध, बिना किसी ठहराव या कि आश्रय के
सहन किया मैंने अपनी ही दुर्बल मरणशीलता पर
इस शाश्वत प्रशान्ति का भार, उदासीनता स्थायी, एवं
तीन स्थिर आकृतियाँ, मेरी चेतनता को भारिल करतीं
रहीं पूर्ण चन्द्र तक ; क्योंकि अपने दहते मानस से
निश्चय मैंने मापी उसकी चाँदी की ऋतुएँ रजनी
गिरती हुईं, और दिन प्रति दिन सोचा मैंने
मैं हो चला और भी कृशतर, प्रेत सदृशमय ।
प्रायः कर उठता प्रार्थना हार्दिक; मुझको मृत्यु उठा ले
इस घाटी से, औ' इसकी सब बोझिलता से;
परिवर्तन से हो निराश, घंटे-घंटे के बाद स्वयं को
रहा कोसता, जब तक आखिरकार वृद्ध शनि ने न उठाये
अपने निष्प्रभ नयन, और देखा अपने खोये प्रदेश को,
और उस जगह की सब करुणा और व्यथा को
और उस विनत सुघर देवि को;

जैसे कुसुम, दूब, पल्लव
भर देती वन-उपत्यकाओं को समीर के तर झोंकों से,
ज्ञात जो कि वन-प्रान्तों के नासिका-रंध्र को,
ऐसे ही शनि के शब्दों ने भरा चतुर्दिक
काई भरे अँधेरे को, समय-क्षत ओकों की कोटर तक,
और लोमड़ी के छिद्रों की भूलभुलैयों तक, भर डाला
मंद, विषादपूर्ण लय से, वह जबकि इस तरह
बोला, और अजीब सिसकियाँ भेजी उस एकान्त 'पैन' को ।
"सिसको, बंधु ! सिसक लो ! क्योंकि गये हम निगले,
और दफ़न हो गये सकल दैविक कार्यों को,
पीत ग्रहों पर निज प्रभावमय शासन करना,
और मनुज की कृषि का शान्तिपूर्ण संचालन,
वे सब कार्य जिन्हें करने से देवराज का
हृदय-भार हल्का होता; अब सिसको, आहें भरो बंधुओ !
सिसको, अश्रु बहाओ, भाई ! घिरे बाग़ियों के दल
चारों ओर; सितारे हैं प्राचीन पथों पर ही आरोही;

बादल अभी तलक निज छायामय आर्द्रता सहित पृथ्वी पर
भटक रहे हैं, अब भी सूरज, और चाँद से हरते अपनी
प्यास; फूल खिलते वृक्षों पर अभी, सिंधु के तट करते हैं
अब भी मरमर; मृत्यु नहीं है कहीं निखिल ब्रह्मांड सृष्टि में,
नहीं मृत्यु की गंध कहीं भी—किन्तु मृत्यु को होना होगा।
सिसको, सिसको; सिसक 'सिबेले', क्योंकि तुम्हारे
अपकारी बच्चों ने परिणत किया देव पीड़क लकवे में।
सिसको, भाई, सिसको ! मुझमें शक्ति नहीं अब;
शिथिल बाँस-पोरे से, दुर्बल, कृश हूँ मैं अपनी वाणी-सा;
आह, आह ! दुर्बलता का यह दर्द भयानक;
सिसको, सिसको, क्योंकि अभी तक मैं घुलता हूँ : वर्ना मुझको
दो सहायता, उलट फेंक दो उन दुष्टों को,
विजय मुझे दो, सुनूँ दूसरों को कराहता,
शान्त विजय की तुरही बजती, और प्रार्थनाएँ उत्सव की
स्वर्गिक उच्च संकुलित मेघों के स्वर्णिम शिखरों से;
कोमल ध्वनियाँ गुँजित होगीं, और खोखले
सीपवाद्य के तारों में से रौप्य विकम्पन : सभी रूपमय
वस्तु बनेंगी नूतनमय ही, जिन्हें देखकर व्योम-पुत्र सब
विस्मित होंगे," ऐसा कहकर शिथिल हुआ चुप,
वह ऐसे निरीह औ' रुग्ण ध्वनित विराम से,
मैं समझा, शायद सुनता मैं किसी भूमि के
बूढ़े का कोई शिकवा अपनी पार्थिव हानि के ऊपर;
और न मेरे कर्ण, चक्षु ही कार्य कर सके, चेतनता की
उस संगति से जो मृदु ध्वनि का परिणय करती
है आकृति की गरिमा से, औ' दुःखदायी वीणा के
शोकाकुल व्यंजन का दीर्घ-अवयवित सपनों से ही।
और ध्यान से देखा उसको, वह अब भी अविचल बैठा था,
नीचे काले शोकमना वृक्षों के, जिनकी
शाखाएँ फैली थीं वन्य सर्प आकृतियों में, थे जिनके
पल्लव सभी स्तब्ध; उपस्थिति उसकी करुण वहाँ पर,
(अब था पूर्ण शान्त सब ओर), भर रही एक मृत्युवत मिथ्या
जिसको मैं पहले सुन चुका; अधर केवल

उसके कम्पित हो उठते थे, उसकी घूँघरवाली
सफेद डाढ़ी के मध्य : सत्य वे कहते थे, यद्यपि
हिममय श्मश्रु के गुच्छ लटकते आस-पास भव्यता लिये,
जैसे कि व्योम के आनन पर, दोपहरी का बादल छाये।
उठ पड़ी देवि, फैलाई अपनी श्वेत बाहु,
उस शून्य तिमिर में किसी ओर इंगति करते :
जिस पर कि उठा वह भी उठ चला, कि ज्यों
हो एक दीर्घकाय दैत्य, जिसको देखा लोगों ने
सागर पर धूमिल निशीथ लहरों से पीला पड़ता।
द्रवित हुए मेरी दृष्टि से वनों भीतर,
इससे पहले कि मुड़ूँ मैं, मोनेटा ने मुझे पुकारा,
"यह युग्म चला द्रुत दुःखियों के परिवारों से है मिलने,
जहाँ श्याम चट्टानों की छत के नीचे, पीड़ा में,
औ' तम में अपना क्षय करते, बिना किसी आशा से।"
औ' वह कहती रही, जिसे तुम पढ़ सकते हो,
इस सपने की ड्योढ़ी से आगे विश्रान्त गुजर कर,
जहाँ खुले द्वारों पर भी, मैं तनिक विलम्ब करूँगा,
और करूँगा संचित, उसके ऊँचे उपवाक्यों की
अपनी स्मृति—शायद और नहीं है आगे साहस।

खण्ड २

"नश्वर, ताकि समझ पाये तू ठीक ठीक ही,
मानवीय कर कहती मैं अपने कहने को, तेरे
कानों में, पार्थिव पदार्थों से तुलनाएँ करते;
अन्यथा तुझे बेहतर था सुनना पवन, कि जिसकी भाषा
तेरे लिये खोखला रोर मात्र है, यद्यपि
यह बहती है कथा-भरी वृक्षों से होकर।
करुणा के प्रान्तों में ढुलके बड़े-बड़े आँसू हैं,
इससे भी अत्यधिक वेदना, उत्कटतर पीड़ाएँ
जिसे पार्थिव जिह्वा या लेखनि कह नहीं सकेगी।
टाइटनगण जो भयद, स्वयं-गोपी, अथवा कारा के बंदी,
तड़प उठे फिर एक बार सम्बन्ध पुरातन को वे,
सुनते हुए नाश अपना शनि की वाणी में।
किन्तु समूचे गरुड़-वंश में एक अभी भी
रखता अपनी सत्ता, शासन, गरिमा अक्षुण्ण;
दीप्त हाइपैरियन अभी तक अपने ज्वलित वृत्त पर
बैठा है, औ' सूँघ रहा है अगुरू धूम जो आता
मानव से आदित्य देव को—तो भी रहा अरक्षित।
जैसे हम मर्त्यों को असगुन भय से बाँधा करते,
चिन्ता से भर उठते, त्यों ही वह भी कम्पित होता;
श्वान-भूँक से नहीं, न घुग्घू की चीखों से,
या न सुपरिचित प्रेत-दरश से जो आता निज
बंधु-महायात्रा घंटी के प्रथम नाद पर,
या निशीथ के दीपक के भविष्यवक्ता-स्वर,
पर भय, जो राक्षसी शक्ति के ही समकक्षी
हाइपैरियन महान को भी करते पीड़ित
उसका उज्ज्वल महल चमकते स्वर्ण-स्तूपों से जो आवृत्त
औ' जिसके सहस्त्र प्रांगण में स्पर्शित हैं,
काँसे के शंकुल स्तम्भों की छायाएँ, औ' महराबों

गुम्बज, गैलरियों की लाल दमक से जगर-मगर करती हैं—
और सभी ऊषा के मेघावरण रोष से लाल झलकते;
जब वह चखता, अगुरु धूम्र की स्वादमयी मालायें
जो पवित्र शैलों से चढ़कर आती हैं, तो मधुराई के
बदले, उसकी विपुल स्वाद इंद्रिय पाती है,
मलिन धातु का स्वाद कसैला, और विषैला
जबकि हुआ शयनिल पश्चिम में वह पत्तनगत,
रम्य दिवस के पूर्ण परिक्रम के तदनंतर,
पाने सुख-विश्रान्ति दिव्य, ऊँची शैया पर,
और गीतिका की बाँहों में नींद सुहानी,
खूंद रहा वह श्रांतहारिणी मनभावन घटिकाएँ अपनी
भीम पग-ध्वनियों से, बृहत कक्ष से, बृहत कक्ष तक;
जबकि दूर प्रत्येक कक्ष, अंतर-प्रकोष्ठ में,
उसके नभचारी अनुचर-दल सिकुड़े-सिमटे खड़े हुए हैं,
आश्चर्यान्वित, भयाक्रान्त हैं; जैसे चिन्ताग्रस्त मनुज जो
होते हैं संकुलित खुले मैदानों में उदास दल के दल,
जब उनकी गुम्बज, प्राचीरें भूमिकम्प से डगमग करतीं।
अब भी जब कि जागरित शनि हो हिम-निद्रा से
होता है अनुसरित देवि पग का समक्ष के वन-प्रान्तर में,
हाइपैरियन तज पीछे आलोक-प्रभा को,
सरक रहा है पश्चिम के प्रवेश-स्थल पर,
वहीं चलें हम, "खड़ा हुआ मैं स्वच्छ ज्योति में,
घाटी की धूमिलता से विमुक्त, स्वच्छ आलोक-दिशा में।
निमोशिने बैठी हुई एक वर्गाकृत चिकने शिल पर,
जिसकी चमकीली गहराई झलकाती थी देवी के सब
पूजा के परिधान, त्वरित लोचन से मैं तब देख रहा,
भव्य-रूप अभ्र से अभ्र, गुम्बज-गुम्बज,
सुरभित, अनगुँथी कुँजिकाओं से हो-होकर,
औ' रत्न-जटित चमकीले लम्बे पुष्प-वनों में से होकर
धावित हो रही दृष्टि मेरी, सामने दौड़ता प्रभावान
देवता हाइपैरियन तभी : उसकी जलती
पोशाक एड़ियों से बाहर हो लहराती,

वह गरज उठा, मानो कि हो उठा अग्निकोप
धरती के ऊपर कहीं, कि जिससे भय-मर्दित
हो गईं व्योम की घटिकाएँ विनम्र सब ही,
भर गया विकम्पन उनके कपोत-पंखों में, वह हहराया—

कीट्स के जीवन की प्रमुख घटनाएँ

१७९५	अक्टूबर ३१	फिन्सबरी में जन्म
	दिसम्बर १८	बिशपगेट के चर्च में बपतिस्मा
१७९७	फरवरी २८	जार्ज कीट्स का जन्म
१७९९	नवम्बर १८	टॉम कीट्स का जन्म
१८०१	अप्रैल २८	ऐडवर्ड कीट्स का जन्म (अल्पावस्था में मृत्यु)
१८०३	जून ३	फेनी कीट्स का जन्म
१८०४	अप्रैल १६	पिता की मृत्यु
१८१०	मार्च २०	माँ की मृत्यु
१८०३-११		ऐन्फील्ड में शिक्षा
१८११		चिकित्सक हेमण्ड के निर्देशन में
१८१२		'स्पेन्सर के अनुकरण पर' पद लिखे
१८१३		सेवर्न से परिचित
१८१५	फरवरी २	हण्ट की गिरफ्तारी पर सॉनेट रचा
१८१५	नवम्बर	'जार्ज मैथ्यू' के ऊपर पत्र-काव्य
१८१६	मई ५	'ओ, एकान्त' सॉनेट छपा
	जुलाई २५	चैपमैन का सॉनेट रचा
	अगस्त	जार्ज कीट्स को पत्र-काव्य
	सितम्बर	कोडन क्लार्क को पत्र-काव्य
	नवम्बर	हेडन से परिचय : उस पर सॉनेट
	दिसम्बर	'मैं पंजे के बल' कविता की रचना, शेली से भेंट
१८१७	मार्च	'एण्डिमियन' का आरम्भ
	अप्रैल	आइल ऑफ वाइट के द्वीप में
१८१८		'नील' नदी पर सॉनेट
	अप्रैल २६	एण्डिमियन प्रकाशित
	सितम्बर	ब्लैकवुड और क्वार्टरली में आलोचना
		फेनी ब्राउन से भेंट
		हाइपैरियन (आरंभ)
	दिसम्बर	टॉम कीट्स की मृत्यु

१८१९	जनवरी		'देवि एग्निस की संध्या' की रचना
	फरवरी		'ईव ऑफ सैन्ट मार्क'
	अप्रैल		निर्मम सुन्दरी, साइकी, कथांकित कलश की
	मई		'बुलबुल' के प्रति
१८१९	जुलाई		लेमिया (प्रथम भाग)
	सितम्बर		हाइपैरियन (जारी)
			लेमिया (समाप्त)
			'शरद' के प्रति की रचना
	अक्टूबर		'कैप एण्ड वैल्स' की रचना
१८२०	फरवरी	३	गम्भीर रोग का आरंभ
	मई	१०	'निर्मम सुन्दरी' का प्रकाशन
	जून	२२	रक्त-वमन
	जुलाई		लेमिया, इज़ावेला इत्यादि का प्रकाशन
	सितम्बर	१७	'मेरिया क्रॉउथर' से विदेश रवाना
	अक्टूबर	२१	नैपल्स में रुकना। क्वेरन्टाइन
	नवम्बर	३०	अंतिम पत्र लिखा
	दिसम्बर	१०	रोग का भीषण आक्रमण
१८२१	फरवरी	२३	मृत्यु
	फरवरी	२५	समाधि

आधार ग्रंथ-सूची

(BIBLIOGRAPHY)

1. **Poetical Works of John Keats.**—W.T. Arnold.
2. **Poetical Works of John Keats.**—W.M. Rossetti.
3. **Life of John Keats.**—Sydney Colvin.
4. **Life of John Keats.**—W.M. Rossetti.
5. **John Keats : A Bibliography.**—Amy Lowell.
6. **Mind of John Keats.**—Thorpe.
7. **Keats & Shakespeare.**—M. Murry.
8. **Keats.**—H.W. Garrod.
9. **Keat's Craftmanship.**—M.R. Ridley.
10. **Keats.**—Takaishi Saito.
11. **Illusion & Reality.**—Christopher Cowdwell.
12. **Oxford Lectures on Poetry.**—E. De Selincourt.
13. **Essays in Criticism.**—Mathew Arnold.
14. **Studies in Poetry.**—Stapford A. Brook.
15. **Cambridge History of English Literature Vol. XII.**—C.H. Herford.
16. **Romantic Poetry.**—Dr. R.B. Sharma.
17. **History of English Literature.**—Comton & Wricket.
18. **History of English Literature.**—Ligue & Czamian.
19. **Keats Letters.**—M.B. Forman.
20. **Life and Letters of John Keats.**—Lord Houghton.
21. **Surney of English Literature.**—Oliver Elton.
22. **Keats' Hyperion.**—R.S. Aiyar.
23. **The Greek Way.**—Edited by Hamilton.
24. **Greek Civilization and Character.**—Arnold J. Toyanbee.